Tulsi Ramayana ajodhya ka.

श्री

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत

रामायण

Tulsi Dass.

अयोध्याकाण्ड

(सटीक)





टीकाकार—

पं० बाबूराम मिश्र 'विशारद'



प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड

कलकत्ता

संवत् १९९२]

[मूल्य ॥≈)



— प्रकाशक —
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
२०३ हरिसन रोड, कलकत्ता

ब्राञ्च—
ज्ञानवापी, काशी
दरीबा कलां, दिल्ली
बांकीपुर, पटना

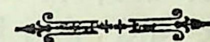
— मुद्रक —
कृष्णगोपाल केडिया
= वणिक प्रेस =
१, सरकार लेन, कलकत्ता

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

❀ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ❀

❀ रामचरितमानस ❀

द्वितीय सोपान



(अयोध्याकांड)



श्लोकाः

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥१॥

जिसके बाम अंकमें पार्वती, मस्तकपर गंगा, ललाटपर द्वितीयाका चंद्रमा, कण्ठमें विष, हृदयमें सर्पराज सुशोभित हैं वही भस्मसे विभूषित, देवताओंमें श्रेष्ठ, सबके स्वामी, अविनाशी, संहार करनेवाले, सर्वव्यापी, कल्याण रूप, चंद्रमा जैसे शुक्ल वर्णवाले और कल्याण करनेवाले महादेव मेरी रक्षा करें।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

श्रीरामचंद्रजीके मुखकमलकी जो शोभा न तो राज्याभिषेकसे दास हुई और न बनवासके दुःखसे मलिन हुई वही सदा मेरे लिये सुन्दर मंगल देनेवाली हो।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितबामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

नीलकमलके समान श्याम और कोमल जिनका शरीर है, जिनके बायें भागमें सीताजी सुशोभित हैं, जिनके दोनों हाथोंमें विशाल धनुष और सुन्दर बाण हैं उन रघुवंशियोंके स्वामी श्रीरामचंद्रजीको मैं नमस्कार करता हूं।

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज निज-मनु-मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जसु जो दायकु फलचारि ॥१॥

श्रीगुरुके चरणकमलोंकी रजसे अपने मनरूपी दर्पणको साफ करके मैं श्रीरामचन्द्रजीका निर्मल यश वर्णन करता हूं जो चारों फल देनेवाला है।

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नवमंगल मोद बधाये ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुखबारी ॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी विवाह कर घर आये तबसे नित्य नये मंगल, आनंद और बधाइयां रहने लगीं। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतोंपर पुण्यरूपी बादल सुखरूपी जल बरसाने लगे।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सबभांती ॥

ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिकी सुन्दर नदी उमड़कर अयोध्यारूपी समुद्रमें आकर मिल गयी। नगरके कुलीन स्त्री और पुरुष समुद्रकी मणियों-के समूहके समान हैं जो सब प्रकार पवित्र, अनमोल और सुन्दर हैं।

कहि न जाइ कछु नगरबिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ॥
सबबिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचन्द-मुख-चंदु निहारी ॥

नगरके ऐश्वर्यका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता मानों ब्रह्माकी करतूत इतनी ही है। श्रीरामचन्द्रजीका चन्द्रमुख देखकर नगरके सब लोग सब प्रकार सुखी हो गये।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥
राम-रूप-गुन-सीलु-सुभाऊ । प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ ॥

अपनी मनोरथरूपी बेलको फलती देखकर सब माताएँ और सखियां सहेलियां प्रसन्न हुईं। श्रीरामचन्द्रजीका रूप, गुण, शील और स्वभाव देख और सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न होते हैं।

दो०—सबके उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु ।
आपु अछत जुबराजु पदु रामहिं देउ नरेसु ॥ २ ॥

सबके हृदयमें यही अभिलाषा है और सब शिवजीको मनाकर यही कहते हैं कि अपने रहते हुए ही राजा श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद दे दें।

एक समय सब सहित समाजा । राजसभा रघुराजु बिराजा ॥
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू । रामसुजसु सुनि अतिहि उछाहू ॥

एक बार राजा दशरथ सब समाजसमेत राजसभामें विराजमान थे। समस्त पुण्योंकी मूर्ति राजा वहां श्रीरामचन्द्रजीका सुयश सुनकर बड़े ही आनंदित हुए।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें । लोकपु करहिं प्रीतिरुख राखें ॥
त्रिभुवन तीनिकाल जगमाहीं । भूरि भाग दसरथसम नाहीं ॥

सब राजा लोग राजा दशरथकी कृपाके अभिलाषी रहते थे और लोकपाल भी उनका रुख देखकर प्रेम करते थे। संसारमें तीनों लोकों और तीनों कालोंमें राजा दशरथके समान बड़भागी कोई नहीं था।

मंगलमूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिय थोर सब तासू ॥
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा । बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥

मंगलोंके मूल श्रीरामचन्द्रजी जिसके पुत्र हैं उसके लिये जो कुछ कहा जाय, सब थोड़ा है। स्वभावसे ही राजाने दर्पण हाथमें लिया और मुख देख कर मुकुटको ठीक किया।

स्रवनसमीप भये सितकेसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुबराज राम कहुँ देहू । जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

कानोंके पास बाल सफेद हो गये हैं मानों बुढ़ापा यह उपदेश दे रहा हो कि हे राजा, श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद देकर अपने जन्म और जीवनका लाभ क्यों नहीं उठा लेते।

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवँसरु पाइ ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरुहि सुनायेउ जाइ ॥ ३ ॥

हृदयमें यह विचार लाकर राजा दशरथने शुभ दिन और सुअवसर पाकर प्रेमसे पुलकित शरीर हो प्रसन्न मनसे जाकर गुरुको सुनाया।

कहइ भुआलु सुनिय मुनिनायक । भये रामु सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥

राजा कहने लगे कि हे मुनिराज, सुनिये। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार सब योग्य हो गये। सेवक, मंत्री, सब नगरवासी हमारे शत्रु, मित्र तथा उदासीन लोग,—

सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही।
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रउरेहि नाईं॥

सबको श्रीरामचन्द्रजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे; मानों आपका आशीर्वाद शरीर रखकर शोभित हो। हे स्वामी, उन्हें परिवारसमेत सब ब्राह्मण आपके ही भांति प्यार करते हैं।

जे गुरु-चरन-रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे। सबु पायेउँ रज पावनि पूजे॥

जो लोग गुरुके चरणोंकी रजको शिरपर धारण करते हैं वे मानों सब ऐश्वर्य वशमें कर लेते हैं। यह अनुभव मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं हुआ। आपके चरणोंकी पवित्र रजकी पूजा कर मैंने सब कुछ पाया है।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥

मेरे मनमें अब एक अभिलाषा है। हे नाथ, वह आपकी दयासे पूर्ण होगी। राजाने मुनिको प्रसन्न देखकर और अपनेपर उनका स्वाभाविक प्रेम पाकर कहा कि आज्ञा दीजिये।

दो०—राजन राउर नामु जसु सब अभिमतदातार।
फलअनुगामी महिपमनि मन अभिलाषु तुम्हार॥ ४॥

गुरु वशिष्ठजीने कहा कि हे राजा, आपका नाम और यश सब मनोरथोंको पूरा करनेवाला है। हे राजाओंमें मणिके समान राजा दशरथ, सब फल आपके मनकी अभिलाषाके पीछे पीछे चलते हैं।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी॥
नाथ रामु करियहि जुबराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू॥

हृदयमें गुरुको सब प्रकार प्रसन्न जानकर राजा आनंदमें भरकर मीठी वाणीसे बोले कि हे नाथ, श्रीरामचन्द्रजीको युवराजका पद देना चाहिये। यदि आप कृपापूर्वक कहें तो सामान जुटाया जाय।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभुप्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥

मेरे रहते यह उत्सव हो जावे और सब लोग नेत्रोंका लाभ उठा लें। आपकी कृपासे शिवजीने और तो सब बातें पूरी कीं। यही एक अभिलाषा मनमें और है।

पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये। मंगल-मोद-मूल मन भाये॥

फिर चाहे शरीर रहे या छूट जावे, सोच नहीं। जिससे पीछे पछतावा न होवे। मुनिके मनको राजा दशरथके छहावने और आनंद मंगलमय वचन बहुत अच्छे लगे।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत-प्रेम-अनुगामी॥

उन्होंने कहा कि हे राजा, सुनो। जिसके विमुख होनेसे लोग पछताते हैं और जिसके भजन बिना दाह नहीं मिटता, वही प्रभु तुम्हारे पुत्र हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजी पवित्र प्रेमके पीछे चलनेवाले हैं।

दो०—बेगि बिलंबु न करिय नृप साजिय सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥ ५॥

हे राजा, देर न करो; शीघ्रतासे सभी समाजको सजाओ। जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायँ तभी शुभ दिन और सुन्दर मंगल है।

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाये॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल बचन सुनाये॥

प्रसन्नतापूर्वक राजा महलमें आये और सेवकों तथा सुमन्त नामक मंत्रीको बुलाया। उन्होंने 'जय जीव' कहकर शिर नवाया। फिर राजाने उत्तम मंगलकारक वचन सुनाये।

प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु जुबराजू॥
जौं पांचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

आज गुरुने प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहा है कि हे राजा, तुम श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद दे दो। यदि यह मत पंचोंको भला लगे तो हृदयमें प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीको राजतिलक करो।

मंत्री मुदित सुनत प्रियबानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जियहु जगतपति बरिस करोरी॥

यह प्यारी बात सुनते ही मंत्री प्रसन्न हुए मानों मनोरथरूपी वृक्षमें पानी

पड़ गया हो। मंत्री लोग हाथ जोड़कर विनती करने और कहने लगे कि हे संसारके स्वामी, करोड़ बरस जीओ।

जगमंगल भल काजु बिचारा। बेगिय नाथ न लाइय बारा॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाखा। बढ़त बौँड़ जनु लही सुसाखा॥

संसारका कल्याण करनेवालेने अच्छे कामको करनेका विचार किया है। हे नाथ, शीघ्रता कीजिये। देर मत लगाइये। मंत्रियोंके मीठे वचन सुनकर राजाको आनन्द हुआ मानों बढ़ते हुए बौरमें सुन्दर शाखा निकल आयी हो।

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम-राज-अभिषेक-हित बेगि करहु सोइ सोइ॥ ६॥

राजाने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीका राजतिलक होनेके लिये मुनिराजकी जो जो आज्ञा हो वही वही शीघ्र करो।

हरषि मुनीस कहेउ मृदुबानी। आनहु सकल सु-तीरथ-पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥

प्रसन्न होकर मुनीश्वर वशिष्ठजीने मीठी वाणीसे कहा कि सब सुन्दर तीर्थोंका पानी ले आओ। ओषधियां, मूल, फूल, फल और पान—अनेक मांगलिक वस्तुओंके नाम गिनकर बतलाये।

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगलबस्तु अनेका। जो जग जोगु भूपअभिषेका॥

चँवर, मृगचर्म, अनेक प्रकारके कपड़े, अनेक जातियोंके ऊनी और रेशमी कपड़े, मणियां और अनेक मांगलिक वस्तुएँ, जो संसारमें राजतिलकके योग्य थीं, सबको बतलाया।

बेदबिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिधबिताना॥
सकल रसाल पूँगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥

वेदमें लिखी हुई सब विधि बतलाकर उन्होंने कहा कि नगरमें अनेक मण्डपोंकी रचना करो। फलोंसमेत आम, सुपारी और केलेके वृक्षोंको गलियों और नगरके चारों ओर लगाओ।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिध करहु भूमि-सुर-सेवा॥

सुन्दर मणियोंके मनोहर चौक पुराओ और बाजारको शीघ्रतासे सजानेके लिये कहो। गणेशजी, गुरु और कुलदेवताओंकी पूजा करो और सब प्रकार ब्राह्मणोंकी सेवा करो।

दो०—ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज-निज-काजहिं लाग ॥७॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, हाथी, घोड़ा और रथ, सबको सजाओ। मुनिवरकी आज्ञाओंको शिरोधार्य कर सब अपने अपने काममें लग गये।

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत रामहित मंगलकाजा॥

मुनीश्वरने जिसको जो आज्ञा दी वह कार्य मानों उसने पहिले ही कर रखा हो। राजा दशरथ ब्राह्मणों, साधुओं और देवताओंको पूजते हैं और श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण करनेवाले मंगल कार्यों को करते हैं।

सुनत रामअभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम-सीय-तन सगुन जनाये। फरकहिं मंगल अंग सुहाये॥

श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर राजतिलक होनेकी बात सुनकर अयोध्यामें खूब जोरसे बधाइयां बजने लगीं। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके शरीरमें शकुन प्रकट होने लगे और मंगलसूचक शुभ अंग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत-आगमनु-सूचक अहहीं॥
भये बहुत दिन अतिअवसेरी। सगुन प्रतीति भेँट प्रिय केरी॥

पुलकायमान होकर प्रेमके साथ वे परस्पर कहते हैं कि ये शकुन भरतजीके आनेकी सूचना देनेवाले हैं। बहुत दिन हो गये। बड़ी प्रतीक्षा की। अब इन शकुनोंसे किसी प्यारेकी भेंट होनेका विश्वास होता है।

भरतसरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुनफलु दूसर नाहीं॥
रामहिं बंधुसोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

भरतके समान संसारमें और कौन प्यारा है? शकुनोंका फल यही है, दूसरा नहीं। कछुएके जीमें जिस प्रकार अण्डोंका सोच रहता है उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको रात दिन भाई भरतका सोच रहता है।

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचिबिलासु ॥८॥

इसी अवसरपर परम मंगल संवाद सुनकर सारा रनवास आनंदमें मग्न हो गया और ऐसा शोभित हुआ मानों चंद्रमाको देखकर समुद्रमें लहरोंका वेग बढ़ रहा हो।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाये॥
प्रेम पुलकि तन मनु अनुरागीं। मंगलकलस सजन सब लागीं॥

पहिले जाकर जिन्होंने संवाद सुनाया उन्होंने बहुतसे गहने और कपड़े पाये। प्रेमसे शरीर पुलकायमान हो गया और मन भर गया और सब मंगल कलश सजाने लगीं।

चौकइ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिधभाँति अतिरूरी॥
आनँद मगन राममहतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी॥

सुमित्राने अत्यंत सुन्दर मणियोंसे अनेक प्रकारके सुन्दर चौक पूरे। श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्याजी आनंदमें मग्न हो गयी और ब्राह्मणोंको बुलाकर बहुत तरहका दान दिया।

पूजी ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥
गावहिं मंगल कोकिलबयनी। बिधुबदनी मृग-सावक-नयनी॥

उन्होंने ग्रामदेवी, देवताओं और नागोंकी पूजा की और फिर बलि भेंट देनेको भी कहा। उन्होंने विनती की कि जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण हो, वही वरदान दया करके दीजिये। कोयल जैसे स्वर, चंद्रमा जैसे मुख और हिरनके बच्चे जैसे नेत्रोंवाली स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं।

दो०—राम-राज-अभिषेकु सुनि हिय हरषे नरनारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥ ६॥

श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलककी बात सुनकर सब स्त्रीपुरुष हृदयमें प्रसन्न हुए और ब्रह्माको अपने अनुकूल समझकर सब सुन्दर मंगल सजाने लगे।

तब नरनाह बसिष्ठ बोलाये। रामधाम सिख देन पठाये॥
गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा॥

तब राजाने वशिष्ठजीको बुलाया और सीख देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके भवनमें भेजा। गुरुका आगमन सुनते ही श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपर आकर चरणोंमें शिर नवाया।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरहभाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सियसहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥

आदरपूर्वक अर्घ्य देकर घरमें ले आये और षोड़शोपचार पूजा करके

सम्मान किया, फिर सीताजीसमेत चरण पकड़ लिये और कमलके समान हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी बोले।

सेवकसदन स्वामिआगमनू। मंगलमूल अमंगलदमनू॥
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइय काज नाथ असि नीती॥

सेवकके घर स्वामीका आगमन मंगलोंका मूल और अमंगलोंको नष्ट करनेवाला होता है। तो भी हे नाथ, ऐसी नीति है कि यदि कार्य हो तो किसी योग्य मनुष्यको भेजकर प्रेमपूर्वक बुला लेना था।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यह गेहू॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामिसेवकाई॥

हे प्रभो, आपने अपनी प्रभुताको छोड़कर प्रेम किया इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे स्वामी, जो आज्ञा हो वही करूं। यह सेवक स्वामीकी सेवाका कार्य पा जावे।

दो०—सुनि सनेहसाने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस-बंस-अवतंस॥ १०॥

प्रेमसे सने हुए वचन सुनकर मुनिने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा की और कहा कि हे राम, तुम सूर्यवंशके भूषण हो। तुम भला ऐसा क्यों न कहो।

बरनि राम गुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेकसमाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू॥

श्रीरामचंद्रजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णन कर प्रेमसे पुलकायमान होकर मुनिराज बोले कि राजाने राजतिलकका सामान सजाया है और वे तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ॥

हे राम, तुम आज सब संयम करो जिससे ब्रह्मा कुशलपूर्वक सब काम निबाह दे। सीख देकर गुरु राजाके पास गये और श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें ऐसा आश्चर्य हुआ कि—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपवीत बियाहा। संग संग सब भयउ उछाहा॥

हम सब भाइयोंने एक साथ जन्म लिया, लड़कपनमें भोजन और शयन किया तथा खेले। कर्णवेध, यज्ञोपवीत और विवाह—सब उत्सव भी साथ ही साथ हुए।

बिमलबंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगतमन कै कुटिलाई॥

निर्मल वंशमें यही एक अनुचित है कि और भाइयोंको छोड़कर बड़ेको ही राजतिलक हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रेम-सहित सुन्दर पछतावा भक्तोंके मनकी कुटिलताको दूर करे।

दो०—तेहि अवसर आये लषन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघु-कुल-कैरव-चंद॥ ११॥

उसी समय प्रेम और आनंदमें मग्न लक्ष्मणजी वहां आये। रघुकुलरूपी कुमुदके लिये चँद्रमाके समान श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुरप्रमोद नहिं जाइ बखाना॥
भरतआगमनु सकल मनावहिं। आवहिं बेगि नयनफलु पावहिं॥

अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। नगरके आनन्दका वर्णन नहीं किया जा सकता। सब भरतजीका आना मनाते हैं और कहते हैं कि वे जल्दी ही आवें और नेत्रोंका फल पावें।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥

बाजार, रास्ता, घर, गली और बैठक, सर्वत्र पुरुष और स्त्रियां कह रही हैं कि वह शुभ लग्न कल किस समय है कि जब ब्रह्मा हमारे मनकी अभिलाषा पूरी करेगा।

कनकसिंहासन सीयसमेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥

श्रीरामचन्द्रजी जब सीतासमेत सोनेके सिंहासनपर बैठ जावें तब मन-चाही हो जावे। सब कह रहे हैं कि कल कब हो परन्तु खोटी चालवाले देवता विघ्न मना रहे हैं।

तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिंबार पांय लै परहीं॥

अयोध्याकी बधाइयां उन्हें नहीं अच्छी लगतीं जैसे चोरको चांदनी रात नहीं भाती। सरस्वतीको बुलाकर देवता विनती कर रहे हैं और बारंबार पावोंमें गिरते हैं।

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिय सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥१२॥

हमारी बड़ी विपत्ति देखकर हे मां, आज वही करो जिससे श्रीरामचन्द्रजी राज छोड़कर वनको चले जावें और देवताओंके सब काम पूरे हों।

सुनि सुरबिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोजबिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥

देवताओंकी विनती सुनकर सरस्वती खड़ी खड़ी पछता रही हैं कि हाय! मैं कमलके वनके लिये पालेकी रात हुई हूं। देखकर देवता फिर दीनता दिखलाकर कहने लगे कि हे माता, तुम्हें थोड़ा भी दोष नहीं लगेगा।

बिसमय-हरष-रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करमबस सुख-दुख-भागी। जाइय अवध देवहित लागी॥

श्रीरामचन्द्रजी विस्मय और हर्षसे रहित हैं। तुम तो श्रीरामचन्द्रजीका सब प्रभाव जानती हो। कर्मके वशमें होकर जीव सुख और दुःख भोगता है। देवताओंका हितसाधन करनेके लिये तुम अयोध्या जाओ।

बारबार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुधमति पोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

बार बार चरण पकड़कर देवताओंने सरस्वतीको संकोचमें डाल दिया। सरस्वतीजी यह विचारकर विदा हुईं कि देवताओंकी बुद्धि नीच है। इनका निवास तो ऊँचा है परन्तु इनके कर्म नीच हैं। ये दूसरेका ऐश्वर्य देख नहीं सकते।

आगिलु काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई॥

परन्तु मेरे अगले कामको विचारकर कुशल कवि मेरी फिर चाह करेंगे। हृदयमें प्रसन्न होकर सरस्वती अयोध्यापुरीमें आयीं मानों दुःसह दुःख देनेवाली कोई ग्रहदशा वहां आयी हो।

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥१३॥

कैकेयीकी एक मंद बुद्धिवाली दासी थी जिसका नाम मंथरा था। उसे अपयशकी पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धिको पलट गयीं।

(कुबरीकी कुटिलाई)

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। रामतिलक सुनि भा उरदाहू॥

मंथराने नगरकी सजावट देखी। सुन्दर मंगलाचार हो रहे थे और बधाइयां बज रही थीं। उसने लोगोंसे पूछा कि कौनसा उत्सव है? श्रीरामचन्द्रजीके तिलककी बात सुनकर हृदयमें जलन हुई।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकहि लेउँ केहि भांती॥

वह खोटी बुद्धि और नीच जातिवाली मंथरा विचार करने लगी कि रातहीमें यह काम किस प्रकार बिगड़ जाय। जैसे दुष्ट भीलनी शहदके छत्तेको लगा हुआ देखकर यह मौका ताके कि मैं उसे किस प्रकार ले लूं।

भरतमातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ नहिं लेइ उसासू। नारिचरित करि ढारइ आंसू॥

बिलखती हुई वह भरतजीकी माता कैकेयीके पास गयी। रानीने हँसकर कहा कि तू उदास क्यों है? मंथरा उत्तर नहीं देती, लंबी सांस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आंसू बहाती है।

हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लषन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु सांपिनि॥

रानीने हँसकर कहा कि तेरे बड़े गाल हैं। मेरे मनमें ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मणजीने सीख दी है। दासी मंथरा तब भी नहीं बोली। वह बड़ी पापिनी है। वह ऐसी लंबी सांस छोड़ने लगी मानों काली नागिन हो।

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लषनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥१४॥

रानीने कुछ डरकर कहा कि कहती क्यों नहीं? श्रीरामचन्द्रजी, राजा दशरथ, लक्ष्मणजी, भरतजी और शत्रुघ्न, सब कुशलसे तो हैं? यह सुनते ही कुबरी मंथराके हृदयमें छेद हो गया।

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बलु पाई॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू। जिनहिं जनेसु देइ जुबराजू॥

हे माता, मुझे कोई क्या सीख देगा? किसका बल पाकर गाल बजाऊंगी?

आज श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और किसका कुशल है जिन्हें राजा युवराज पद दे रहे हैं?

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥

कौशल्याको ब्रह्मा बड़ा दाहिना हुआ है जिसे देखकर उनके हृदयमें घमंड ही नहीं समाता। जाकर वह सब शोभा क्यों न देखो जिसे देखकर मेरा मन क्षुब्ध हुआ है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥

पुत्र विदेशमें है और तुम्हें कुछ भी सोच नहीं है। जानती हो कि पति राजा दशरथ हमारे वशमें हैं। तुम्हें नींद बहुत है और तोशक तकियेसे सजी हुई सेज प्यारी है। तुम राजाकी चतुरता और कपट नहीं देखती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

मंथराके प्रिय वचन सुनकर और उसका मन मैला जानकर रानी कैकेयीने झुककर कहा कि अब अलग हो और चुप रह! घर फोड़नेवाली ऐसी बात यदि फिर कभी कहेगी तो पकड़कर तेरी जीभ कढ़ा लूंगी।

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥१५॥

काने, लंगड़े और कुबरे, सबको दुष्ट और खोटी चालवाला जानना चाहिये। उसपर भी तू स्त्री और फिर दासी है, ऐसा कहकर भरतजीकी माता कैकेयी मुस्कुराने लगीं।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही॥
सुदिन सु-मंगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥

हे प्रिय बोलनेवाली, मैंने तुझे सीख दी है। स्वप्नमें भी मुझे तुझपर क्रोध नहीं है। सुन्दर मंगलप्रद शुभ दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा।

जेठ स्वामि सेवकु लघु भाई। यह दिन-कर-कुल-रीति सुहाई॥
रामतिलकु जौं साचेउ काली। देउँ मांगु मन भावत आली॥

बड़ा भाई स्वामी और छोटा सेवक होता है, यह सूर्यवंशकी उत्तम रीति

है। श्रीरामचन्द्रजीका राजतिलक यदि सत्य ही कल हो तो हे सखी, जो तेरे मनको भावे, मांग ले। मैं दूंगी।

कौसल्यासम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय पियारी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥

श्रीरामचन्द्रजीको सहज स्वभावसे सब माताएँ कौशल्याके समान ही प्यारी हैं। मुझसे वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी प्रीतिकी परीक्षा कर देखी है।

जौं विधि जनमु देइ करि छोहू। होहिं रामसिय पूतपतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरे॥

यदि दया करके ब्रह्मा फिर जन्म देवे तो श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी मेरे पुत्र और बहू होवें। मुझे श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। उनको राजतिलक होनेसे तुझे क्षोभ क्यों हुआ है?

दो०—भरतसपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि कारन मोहि सुनाउ॥१६॥

तुझे भरतकी सौगंद है, छल और छिपाव छोड़कर सत्य कह। आनंदके समय शोक करती है, इसका क्या कारण है, मुझे सुना।

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरइ जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा॥

मंथराने कहा कि एक ही बारमें सब आशा पूरी हो गयी। अब दूसरी जीभ लगाकर फिर कुछ कहूंगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने ही योग्य है। भला कहनेपर भी तुमको दुःख हुआ।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती॥

जो बातको बनाकर झूठा सच्चा कहते हैं, हे माता, वे तुम्हें प्यारे लगते हैं और मैं कड़वी। मैं भी अब मालिकको सोहानेवाली बात कहा करूंगी नहीं तो दिनरात चुप ही रहूंगी।

करि कुरूप विधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छांड़ि अब होब कि रानी॥

ब्रह्माने मुझे कुरूप बनाकर पराये वशमें किया है। जो बोया है वही

काटना है और जो दिया है वही मिलेगा। कोई राजा हो, हमारी क्या हानि है? दासी छोड़कर क्या अब रानी होऊंगी?

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिय देबि बड़ि चूक हमारी॥

हमारा स्वभाव जलानेके लायक है, इससे तुम्हारा बुरा नहीं देखा जाता। इसीलिये कुछ उचित बातें कहीं। हे देवि! क्षमा करो, हमारी बड़ी भूल हुई।

दो०—गूढ़-कपट-प्रिय-वचन सुनि तीय अधरबुधिरानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतियानि॥१७॥

स्त्रियोंकी बुद्धि होठोंमें होती है, कहने सुननेसे डिग जाया करती है; गूढ़, छलसे भरे हुए और प्रिय वचन सुनकर रानीने देवताओंकी मायाके वशमें होने के कारण अपनी बैरिनको अपना मित्र जानकर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरीगान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥

रानी आदरके साथ बार बार उसीको पूछती है मानों किसी भीलनीके गीतसे हिरनी मोहित हो गयी हो। जैसी होनहार है उसीके अनुसार बुद्धि पलट गयी। यह देखकर दासी प्रसन्न हुई मानों उसकी घात लग गयी हो।

तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥

तुम पूछती हो पर मैं कहते डरती हूं। तुमने मेरा नाम घरफोड़ी रखा है इस प्रकार बहुत तरहसे छील छालकर विश्वास उत्पन्न कर फिर अयोध्याके लिये शनिकी ७॥ वर्षकी दशाके समान मंथरा बोली।

प्रिय सियरामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

हे रानी, तुमने कहा कि मुझे सीता और रामचन्द्रजी प्यारे हैं और श्रीरामचन्द्रजीको तुम प्यारी हो, यह बात सत्य है। परन्तु यह सब पहिले था। वे दिन अब बीत गये। समय पलट जानेपर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल-कुल-पोषनि-हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूधहु करि उपाउ बरबारी॥

सूर्य कमलोंके समूहका पालनेवाला है परन्तु जलके बिना वही जलाकर छार

कर डालता है। सौत, कौशल्या, तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। उपायरूपी श्रेष्ठ जलसे उसे रोको।

दो०—तुम्हहिं न सोचु सोहागबल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ॥१८॥

तुम्हें अपने सुहागके घमण्डमें सोच नहीं है और जानती हो कि राजा अपने वशमें हैं। तुम्हारा स्वभाव सीधा है। राजा मुँहके मीठे हैं पर मनके मैले हैं।

चतुर गँभीर राममहतारी। बीचु पाइ निजबात सवाँरी ॥
पठये भरतु भूप ननिअउरें। राम-मातु-मत जानब रउरें ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता चतुर और गंभीर हैं। मौका पाकर उन्होंने अपनी बात संभाल ली है। राजाने भरतको ननिहाल भेज दिया है। तुम जान लो कि यह सब श्रीरामचन्द्रजीकी माताकी सलाहसे हुआ है।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरतमातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥

कौशल्या जानती हैं कि सब सौतें भलीभांति मेरी सेवा करती हैं परन्तु पतिके बलसे भरतकी माताको घमण्ड है। हे माता, कौशल्याको तुम्हारा ही दुःख है परन्तु वे कपट करनेमें चतुर हैं, इससे मालूम नहीं होता।

राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम-तिलक-हित लगन धराई ॥

राजाको तुमपर विशेष प्रेम है। सौत उसे स्वभावसे ही देख नहीं सकती प्रपंच रचकर राजाको अपना करके कौशल्याने श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलकके लिये लग्नको रखाया है।

यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैव फिरि सो फलु ओही ॥

श्रीरामचन्द्रजीको राजतिलक देना—यह कुलकी रीतिके अनुसार उचित ही हुआ है। सभीको यह अच्छा लगता है और मुझे यह और भी अच्छा है। परन्तु आगेकी बात सोचकर मुझे डर लगता है। फिर, दैव जो फल देगा वह भोगना पड़ेगा।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपटप्रबोधु।
कहेसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१९॥

दुष्टतासे भरी हुई करोड़ों बातें बनाकर मंथराने कैकेयीको कपट-ज्ञान सिखलाया। सौतोंकी सैकड़ों बातें सुनायीं जिनसे विरोध बढ़े।

भावीबस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना

होनहारके वशमें होनेसे हृदयमें विश्वास हो गया और फिर रानीने सौगंद दिलाकर पूछा। मंथराने कहा कि क्या पूछती हो? तुमने अभीतक नहीं जाना। अपना भला और बुरा तो पशु भी पहचानते हैं।

भयउ पाखु दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोषु हमारे॥

सब समाज सजते एक पखवारा हो गया और तुमने आज मुझसे उसकी खबर पायी है। तुम्हारे राजमें मैं खाती और पहनती हूं, इससे सत्य कहनेमें हमारा दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधिबयऊ

यदि मैं कुछ बनाकर असत्य कहूं तो ब्रह्मा हमें उसकी सजा देगा। यदि कल श्रीरामचन्द्रजीको राजतिलक हो गया तो ब्रह्माने तुम्हारे लिये विपत्तिका बीज बो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

मैं लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूं। हे रानी, तुम तो दूधकी मक्खी हो गयी। यदि पुत्रसमेत सेवा करोगी तो घरमें रह सकोगी, और कोई उपाय नहीं है।

दो०—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहिं कौसिला देव।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं लषनु रामके नेव॥ २०॥

सर्पोंकी माता कद्रू ने पक्षियोंकी माता विनताको दुःख दिया था, तुम्हें कौशल्या देंगी। भरतजी बंदीघरमें रखे जायेंगे और लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके नायब होंगे।

कैकयसुता सुनत कटुबानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी
तन पसेव कदली जिमि कांपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥

यह कठोर वाणी सुनकर कैकेयी कुछ कह नहीं सकी। वह डरकर सूख

गयी। उसके शरीरमें पसीना आ गया और वह केलेकी भांति कांपने लगी। कैकेयीकी यह दशा देखकर कुबरीने अपनी जीभको दांतोंसे दबाया।

कहि कहि कोटिक कपटकहानी। धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी ॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। फिरि न नवइ जिमि उकठ कुकाठू ॥

कपट भरी हुई करोड़ों कहानियां कह कहकर मंथराने रानीको समझाया कि धीरज धरो। बुरी सीख देकर मंथराने रानीको बहुत कठोर बना दिया। जैसे गँठीली और टेढ़ी लकड़ी फिर नहीं झुकती वैसे ही कैकेयी भी नहीं झुकी।

फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥

भाग्य पलट गया और कुचाल प्यारी लगी। कैकेयी बगलीके समान मंथराको हंसिनी मानकर प्रशंसा करने लगी। उसने कहा कि हे मंथरा, सुन। तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आंख नित्य फड़कती है।

दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोहबस अपने ॥
काह करउँ सखि सूधसुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥

प्रतिदिन रातको बुरे स्वप्न देखा करती हूं। मोहके वशमें होनेके कारण तुझे नहीं सुनाती। क्या करूं? सखी, मेरा स्वभाव सीधा है, शत्रु और मित्र मैं किसीको भी नहीं जानती।

दो०—अपने चलत न आजु लगि अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि दैव दुसह दुखु दीन्ह ॥२१॥

अपना वश चलते आजतक किसीका बुरा नहीं किया फिर ब्रह्माने किस पापसे एक साथ ही मुझे कठोर दुःख दिया?

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई ॥
अरिबस दैव जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही ॥

मैं जीते जी सौतकी सेवा न करूंगी चाहे अपने मातापिताके घर जाकर जीवन बिताऊं। शत्रुके वशमें करके जिसे दैव जीवित रखता है उसका मरना-ही अच्छा! उसे जीना नहीं चाहिये।

दीनबचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना ॥

रानी बहुत तरहके दीन वचन कहने लगी जिन्हें सुनकर कुबरीने स्त्रीचरित्रा की माया फैलायी। मंथराने कहा कि मनको छोटा करके ऐसा क्यों कहती हो? तुम्हारा सुख और सौभाग्य दिन दूना बढ़े।

जेहि राउर अतिअनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥

जिसने तुम्हारा बहुत बुरा करना सोचा है उसीको इसका पूरा फल मिलेगा। हे रानी, जबसे मैंने यह खोटी सलाह सुनी है तबसे न दिनको भूख लगती है और न रातको नींद आती है।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खांची। भरत भुआल होहिं यहु सांची॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हैं तुम्हरी सेवाबस राऊ॥

मैंने गुणियोंसे पूछा, उन्होंने रेखा खींचकर कहा है कि भरतजी राजा होंगे, यह सत्य है। हे रानी, यदि करो तो उपाय बतलाऊं। राजा दशरथ तुम्हारी सेवाके वशमें हैं।

दो०—परउँ कूप तव बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़ कस न करब हित लागि॥२२॥

कैकेयीने कहा कि तेरे कहनेपर मैं कुएँमें भी गिर सकती हूं, पुत्र और पतिको भी मैं त्याग सकती हूं। तू मेरा भारी दुःख देखकर कहती है। मैं अपने भलेके लिये उसे क्यों न करूंगी?

कुबरी करि कबूलि कैकेई। कपटछुरी उरपाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित त्रिन बलिपसु जैसे॥

कुबरी मंथराने कैकेयीको राजी करके अपनी कपट रूपी छुरीको उसके हृदयरूपी पत्थरपर रगड़कर तेज कर लिया। रानी अपने पासका दुःख भी वैसे ही नहीं देखती जैसे वलि किया जानेवाला पशु हरे तिनके खाता है।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥

मंथराकी बात सुननेमें मीठी है पर उसका परिणाम कठोर है, मानों वह विष मिलाकर शहद दे रही हो। दासी मंथरा कहने लगी कि हे रानी, तुमको वह कथा याद है कि नहीं जिसे तुमने मुझसे कहा था?

दुइ बरदान भूप सन थाती। मांगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहिं बनबासू। देहु लेहु सब सवतिहुलासू॥

राजाके पास दो वरदानोंकी धरोहर रखी हुई है। आज मांगकर छाती ठंढी कर लो। पुत्र भरतको राज और श्रीरामचन्द्रजीको वनबास दो और सौतका सब आनंद छीन लो।

भूपति रामसपथ जब करई । तब माँगेहु जेहि बचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते । बचनु मोर फुर मानहु जी ते ॥

राजा जब श्रीरामचन्द्रजीकी सौगन्द खा जावें तब मांगना जिसमें वे अपने बचनसे न टलें। आजकी रात बीत जानेपर काम बिगड़ जायगा। मेरी इस बातको प्राणसे भी प्यारी मानो।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु ।
काज सवाँरेहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु ॥ २३ ॥

पापिनीने बड़ा बुरा आघात कर कहा कि कोपभवनमें जाओ। सावधान रहकर सब काम बनाना और सहसा विश्वास मत कर लेना।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा । बहे जात कइ भइसि अधारा ॥

रानीने कुबरीको प्राणोंके समान प्यारी समझा और उसकी बड़ी बुद्धिकी बार बार प्रशंसा की। रानीने कहा कि तेरे समान मेरा हितकारी संसारमें दूसरा नहीं। तू बहकर जाते हुएका आधार हो गयी है।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली । करउँ तोहि चषपूतरि आली ॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ॥

यदि ब्रह्माने कल मेरा मनोरथ पूरा कर दिया तो हे सखी, मैं तुझे आंखकी पुतली बना लूंगी। बहुत प्रकारसे दासीका आदर करके कैकेयी कोपभवनको चली गयी।

बिपति बीजु बरसारितु चेरी । भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपटजलु अंकुर जामा । बर दोउ दल दुखफल परिनामा ॥

विपत्तिरूपी बीजके लिये कैकेयीकी दुष्ट बुद्धिरूपी जमीन तैयार हो गयी जिसमें मंथरारूपी वर्षाऋतुका कपटरूपी जल पाकर अंकुर उगा, जिसके पत्ते दोनों वरदान और जिसका फल अंतमें मिलनेवाला दुःख है।

कोप समाजु साजि सब सोई । राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई । यह कुचालि कछु जान न कोई ॥

कैकेयी क्रोधका सब सामान सजाकर सो गयी। अपनी दुष्ट बुद्धिसे उसमें राज करते नाश कर लिया। राजाके नगरमें कोलाहल हो रहा था परन्तु इस कुचालको कोई कुछ न जानता था।

दो०—प्रमुदित पुर नरनारि सब सजहिं सुमंगल चार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूपदरबार॥ २४॥

नगरके स्त्री और पुरुष, सब प्रसन्न हो रहे हैं। शुभ मंगलाचारके साज सज रहे हैं। राजाके दरबारमें भारी भीड़ लगी हुई है। एक आदमी आता और एक जाता है।

बालसखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पांच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूछहिं कुसल षेम मृदुबानी॥

श्रीरामचन्द्रजीके बचपनके मित्र सुनकर हृदयमें प्रसन्न हो रहे हैं और दस दस, पांच पांच इकट्ठे होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते हैं। प्रेमको पहिचानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उनका आदर करते और मीठी वाणीसे कुशल क्षेम पूछते हैं।

फिरहिं भवन प्रियआयसु पाई। करत परसपर रामबड़ाई॥
को रघुबीरसरिस संसारा। सील सनेहु निबाहनिहारा॥

वे प्यारी आज्ञा पाकर घर लौटते और परस्पर श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करते जाते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके समान शील और स्नेहको निबाहनेवाला संसारमें और कौन है?

जेहि जेहि जोनि करमबस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

हे ईश्वर, कर्मके वश होकर जिस जिस योनिमें हमें जन्म लेना पड़े उसमें वहां वहां हमें यह देना कि हम सेवक हों और सीतापति श्रीरामचन्द्रजी स्वामी और यह संबंध अन्ततक निभ जावे।

अस अभिलाषु हृदय सब काहू। कैकयसुता हृदय अतिदाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीचमते चतुराई॥

सबके हृदयमें ऐसी अभिलाषा हो रही है परन्तु कैकेयीके हृदयमें बड़ी जलन है। बुरा साथ पाकर कौन नहीं नष्ट होता? नीचकी सलाहसे चतुराई नहीं रहती।

(कैकेयीकी कुचाल)

दो०—सांझ समय सानंद नृप गयउ कैकई गेह।
गवनु निठुरतानिकट किय जनु धरि देह सनेह॥ २५॥

संध्यासमय राजा दशरथ आनंदपूर्वक कैकेयीके महलमें गये मानों प्रेमके देह रखकर निष्ठुरताके समीप गमन किया हो।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके॥

कैकेयीका कोपभवनमें होना सुनकर राजा सहम गये। डरके कारण उनका पैर आगे न पड़ने लगा। जिसके बाहुबलसे देवताओंके स्वामी इन्द्र बसते हैं और सब राजा जिसका रुख ताकते रहते हैं।

सो सुनि तियरिसि गयउ सुखाई। देखहु कामप्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमनसर मारे॥

वह स्त्रीका क्रोधित होना सुनकर सूख गया, यह कामदेवका प्रताप और बड़ाई देखिये। जो त्रिशूल, वज्र और तलवारके वारको अपने अंगपर ओढ़नेवाले, सह लेनेवाले हैं उन्हें भी रतिनाथ कामदेवने फूलोंके वाणसे मार दिया।

सभय नरेसु प्रिया पहिँ गयऊ। देखि दसा दुख दारुन भयऊ॥
भूमिसयन पट मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥

राजा दशरथ डरते डरते प्यारी कैकेयीके पास गये। वहां जानेपर उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। कैकेयी पृथिवीपर पड़ी हुई है, मोटा और पुराना कपड़ा पहन रखा है और शरीरके अनेक प्रकारके भूषण उतारकर फेंक दिये हैं।

कुमतिहि कसि कुबेसता फाबी। अन-अहिवातु-सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृप कह मृदुबानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥

यह बुरा भेष दुष्ट बुद्धिवाली कैकेयीको ऐसा फब गया मानों होनहारने विधवापनकी सूचना दी हो। पास जाकर राजाने मीठी वाणीसे कहा कि हे प्राणप्यारी, तुम क्यों क्रोधित हुई हो?

छंद—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि विषम भांति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरमु ठाहरु देखई।
तुलसी नृपतिभवितव्यता बस काम कौतुक लेखई॥

हे रानी, तुम किस लिये क्रोधित हुई हो—यह कहकर राजा हाथसे छूते हैं और कैकेयी अपने पतिके उस हाथको हटा देती है और ऐसी टेढ़ी निगाहसे देखती है मानों क्रोधमें भरी हुई नागिन हो, जिसकी दो वासनाएँ जीभ और

जिसके दोनों वरदान दांतके समान हैं और जो काटनेके लिये मर्मस्थान देख रही हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहारके वशमें हो रहे हैं और कामदेव अपना कौतुक दिखला रहा है।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥ २६ ॥

राजा बार बार कहने लगे कि हे सुन्दर मुख और नेत्रोंवाली, कोयल जैसे वचन बोलनेवाली और हे हाथी जैसी मंद गतिसे चलनेवाली, अपने क्रोधका कारण तो मुझे बतलाओ!

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥

हे प्रिये, तेरा बुरा किसने किया? दो शिर किसके हैं और यमराज किसे लेना चाहते हैं? कहो, किस कंगालको राजा बनाऊँ और किस राजाको देश-निकाला दूँ?

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नरनारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तव आनन चंद चकोरू॥

तेरा शत्रु अमर हो, तो भी उसे मार सकता हूँ, फिर कीड़ोंके समान बेचारे साधारण स्त्री और पुरुष क्या हैं? हे सुन्दर जंघोंवाली, तू मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखरूपी चन्द्रमाके लिये चकोरके समान है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे॥
जौं कछु कहउं कपट करि तोही। भामिनि राम-सपथ-सत मोही॥

हे प्यारी, मेरे प्राण, पुत्र और सर्वस्व तथा प्रजा और कुटुम्बी, सब तेरे वशमें हैं। यदि तुझसे कपट करके मैं कुछ कहता होऊँ तो हे रानी, मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी सौ सौगंद है।

बिहँसि मांगु मनभावति बाता। भूषनु सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू॥

जो बात तेरे मनको भाती हो वह हँसकर मांग और मनको हरण करनेवाले अपने शरीरमें गहनोंकी सजा। समय और कुसमयको अपने हृदयमें समझ देखो और हे प्यारी, यह बुरा भेष जल्दी दूर करो।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनिफंद ॥२७॥

यह सुनकर मनमें श्रीरामचन्द्रजीकी सौगंदको बड़ा समझकर मंद बुद्धि-वाली कंकेयी मुस्कुराने लगी और गहने सजाने लग गयी मानों हिरनको देखकर भीलनी फंदा सँभाल रही हो।

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घरघर नगरु अनंदबधावा॥

हृदयमें उसे अपना मित्र जानकर फिर राजा प्रेमसे पुलकायमान होकर सुन्दर मीठी वाणीसे कहने लगे कि हे रानी, तेरी मनचाही हो गयी। नगरमें घर घर आनंद बधाइयां हो रही हैं।

रामहिं देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगलसाजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥

कल मैं श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद दूंगा। हे सुन्दर नेत्रोंवाली, मंगल साज सजो। यह सुनकर कैकेयीका कठोर हृदय तमक उठा मानों पका हुआ बलतोड़ छू गया हो।

ऐसेउ पीर बिहँसि तेइ गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई॥
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि-कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई॥

ऐसी पीड़ा भी कैकेयीने हँसकर छिपा ली जैसे चोरकी स्त्री सबके सामने नहीं रोती। राजाने इस कपट भरी हुई चतुराईको नहीं देखा क्योंकि उसे करोड़ों दुष्टोंके शिरोमणि गुरु मंथराने पढ़ाया था।

जद्यपि नीतिनिपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू॥
कपटसनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी॥

यद्यपि राजा दशरथ नीतिमें निपुण थे तथापि स्त्रीचरित्रका समुद्र अथाह है। फिर कैकेयी कपटसे स्नेह बढ़ाकर नेत्र और मुख मटकाकर हँसकर बोली।

दो०—मांगु मांगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥ २८॥

हे प्यारे, मांगो मांगो तो कहते हो पर कभी न देते हो और न लेते हो। दो वरदान देने कहे थे उनके भी पानेमें संदेह है।

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न मांगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥

राजा हँसकर कहने लगे कि मैंने मर्म जान लिया। तुम्हें क्रोधित होना

बहुत प्यारा है। तुमने वरदानोंकी धरोहर रखकर उन्हें कभी नहीं मांगा और अपने भोले स्वभावके कारण मुझे उनकी याद ही भूल गयी।

झूठेहु हमहिं दोष जनि देहू। दुइकै चारि मांगि किन लेहू॥
रघु-कुल-रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई॥

झूठा ही हमें दोष मत दो; दोके बदलेमें चार वरदान क्यों नहीं मांग लेती? रघुवंशमें सदासे ही यह रीति चली आ रही है कि चाहे प्राण चले जावें पर वचन नहीं जाय।

नहिं असत्यसम पातकपुंजा। गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुरान बिदित मुनि गाये॥

झूठके समान पापका समूह नहीं है। करोड़ों घुंघची क्या एक पहाड़के समान हो सकती हैं? वेदों और पुराणोंसे विदित है और मुनियोंने बतलाया है कि सब सुन्दर सत्कर्मोंका मूल सत्य ही है।

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत-सनेह-अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत-कुबिहँग-कुलहजनु खोली॥

उसपर मैं श्रीरामचन्द्रजीकी सौगंध खा चुका हूं। श्रीरामचन्द्रजी मेरे पुण्यों और प्रेमकी सीमा हैं। बातको पक्की करके वह दुष्ट बुद्धिवाली कैकेयी हँसकर बोली मानों दुर्बुद्धिरूपी अशुभ पक्षीने अपने डैनोंको फैलाया हो।

दो०—भूप मनोरथ सुभग बन सुख सु-बिहंग-समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचन भयंकर बाजु॥२१॥

राजाका मनोरथ सुन्दर वन है और उनका सुख ही सुन्दर पक्षियोंका समूह है। कैकेयी भीलनीके समान अपने भयंकर वचनोंका बाज छोड़ना ही चाहती है।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

हे प्राणप्रिय, जो मेरे मनको अच्छा लगता है उसे सुनो। एक वर तो यह दो कि भरतको राजतिलक हो। हाथ जोड़कर दूसरा वर मांगती हूं। हे नाथ, मेरा मनोरथ पूरा करो।

तापसबेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी॥
सुनि मृदुबचन भूपहिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

तपस्वीका भेष रखकर राज विलासादिसे विशेष उदासीन होकर श्रीराम-

चन्द्रजी १४ वर्षतक बनवासी रहें। यह कोमल वचन सुनकर राजाके हृदयको बड़ा शोक हुआ जैसे चन्द्रमाकी किरण छूते ही चकवा व्याकुल हो जाता है।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते नहीं बना; मानों बटेरके बनमें बाज झपटा हो। राजाका रंग बिलकुल उतर गया, मानों ताड़के वृक्षपर बिजली गिर पड़ी हो।

माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथ सुर-तरु-फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई॥

मस्तकपर हाथ रखकर राजाने दोनों नेत्र बंद कर लिये मानों सोच शरीर धारण कर सोच रहा हो। वे सोचने लगे कि मेरे मनोरथरूपी फूले हुए कल्पवृक्षके फलते ही मानों कैकेयीरूपी हथिनीने उसे समूल नष्ट कर डाला हो। कैकेयीने अयोध्याको उजाड़ दिया। उसने अटल विपत्तिकी नींव दे दी।

दो०—कवने अवसर का भयउ गयउँ नारिबिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि जतिहि अबिद्यानास॥३०॥

किस समय क्या हो गया? स्त्रीका विश्वास उठ गया, जैसे योगकी सिद्धिका फल प्राप्त होनेके समय यतीकी अविद्या नष्ट हो जाती है।

एहि बिधि राउ मनहिं मन झांखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा॥
भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं॥

इस प्रकार जब राजा मन ही मन झोख रहे थे तब कुभांति देखकर दुष्टबुद्धि (कैकेयी) कहने लगी मानों वह क्रोधकी मूर्ति हो। भरत क्या आपके पुत्र नहीं होते? क्या मुझे मोल खरीदकर लाये हो?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचनु सँभारे॥
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥

जो मेरे वचन सुनते ही तुम्हारे बाण जैसे लगे! बातको संभालकर क्यों नहीं निकालते? उत्तर दो या इनकार कर दो। रघुवंशमें तुम सत्य प्रतिज्ञावाले हो।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू॥
सत्य सराहि कहेउ बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥

वरदान देने कहे थे, अब चाहे मत दो और सत्यको छोड़कर संसारमें अपयश लो। सत्यकी प्रशंसा करके वरदान देनेको कहा था। जाना होगा कि यह चबेना मांग लेगी!

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनुधनु तजेउ बचनुपनु राखा॥
अति-कटु-बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥

शिवि, दधीचि और बलिने जो कुछ भी कहा हो, परन्तु उन्होंने अपना शरीर और धन छोड़ दिया किन्तु अपनी बात और प्रतिज्ञाको रखा। कैकेयी अत्यंत कड़वे वचन कहने लगी मानों जलेपर नमक छिड़कती हो।

दो०—धरम-धुरं-धर धीर धरि नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय॥ ३१॥

धर्मधुरंधर राजाने धीरज रखकर नेत्र खोले। उन्होंने अपना शिर धुनकर एक लंबी साँस ली और कहा कि बड़े कुठाँवमें मुझे तलवारसे मारा।

आगे दीखि जरति रिसि भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई॥

राजाने सामने देखा कि कैकेयी भारी क्रोधसे जल रही है, मानों उसने अपनी क्रोधरूपी तलवारको म्यानसे बाहर निकाल लिया हो। केकयीकी दुर्बुद्धि ही उसकी मूँठ है, निष्ठुरता ही धार है जिसपर कुबरीरूपी सान खूब अच्छी तरह रखी है।

लखीं महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥

राजाने उसे बड़ी ही डरावनी और कठोर देखा और सोचा कि यह क्या सचमुच ही मेरा जीवन ले लेगी? अपना हृदय कड़ा करके राजा विनयपूर्वक उसे भले लगनेवाले वचन बोले।

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकर साखी॥

हे प्यारी, डर, भरोसा और प्रेम नष्ट करके ऐसी बुरी तरह वचन कैसे कहती हो? मैं शिवजीको साक्षी कर सत्य कहता हूं कि भरत और रामचन्द्र, मेरे दोनों नेत्र हैं।

अवसि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु बजाई॥

मैं सवेरे अवश्य ही दूत भेजूंगा और दोनों भाई सुनते ही शीघ्र आ

जायेंगे। फिर शुभ दिन विचारकर और सब साज सजाकर मैं बड़ी धूमधामसे भरतको राज्य दे दूँगा।

दो०—लोभु न रामहिं राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति॥ ३२॥

श्रीरामचन्द्रजीको राज्यका लोभ नहीं है और उन्हें भरतजीपर बड़ा प्रेम भी है। मैं हृदयमें बड़े और छोटेका विचार कर राजनीतिके अनुसार कार्य करता था।

राम-सपथ-सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेऊ न काऊ॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे॥

मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी सौ सौगन्द है। मैं स्वभावसे ही कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीकी माताने कभी कुछ भी नहीं कहा। मैंने तुझे पूछे बिना ही सब कुछ किया इसीसे मनोरथ निष्फल हुआ।

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गये भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस मांगा॥

क्रोध छोड़ दो और अब मंगल सजो। कुछ दिनके बाद भरतजीको ही युवराज पद दिया जायगा। परन्तु एक ही बातका मुझे दुःख हो रहा है कि तुमने दूसरा वर ठीक नहीं मांगा।

अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोषु रामअपराधू। सबकोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

उसकी आंचसे मेरा हृदय अब भी जल रहा है। यह क्या क्रोध है कि हँसी है या सचमुच ही ठीक है? क्रोध दूर कर श्रीरामचन्द्रजीका अपराध बतलाओ। सब कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी अच्छे साधु हैं।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातुप्रतिकूला॥

तू भी उनकी प्रशंसा और प्रेम करती है परन्तु अब सुनकर मुझे संदेह हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रुके लिये भी अनुकूल हो वह माताके प्रतिकूल कोई काम कैसे कर सकता है?

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखउं अब नयन भरि भरत राजु अभिषेकु॥ ३३॥

हे प्यारी, हँसी और क्रोधको छोड़ दो और विचारकर बुद्धिमानीके साथ वर मांगो जिससे मैं अब भरतजीका राजतिलक नेत्र भरकर देखूं।

जिअइ मीन बरु बारिबिहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना ॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥

चाहे जल बिना मछली जीती रहे, मणिको खोकर चाहे सांप दुःखी और दीन होकर जीता रहे; परन्तु मैं स्वभावसे ही कहता हूं, मेरे मनमें छल नहीं है, कि श्रीरामचन्द्रजीके बिना मेरा जीना नहीं हो सकता।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम-दरस-आधीना ॥
सुनि मृदुबचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥

हे प्यारी, तू स्वयं चतुर है, हृदयमें समझ देख, मेरा जीना श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंके अधीन है। कोमल वचन सुनकर वह दुष्ट बुद्धिवाली कैकेयी और भी अधिक जलने लगी, मानों आगमें घीकी आहुति पड़ रही हो।

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥

कैकेयी कहने लगी—तुम करोड़ उपाय क्यों न करो, तुम्हारी माया यहां नहीं लग सकती। वरदान दो या इनकार करके अपयश लो। मुझे बहुत प्रपंच नहीं अच्छे लगते।

राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहिं देउँ करि साका ॥

श्रीरामचन्द्रजी साधु हैं, तुम चतुर साधु हो और श्रीरामचन्द्रजीकी माता भी भली हैं। मैंने सबको पहिचान लिया है। कौशल्याने जैसा मेरा भला सोचा है वैसा फल मैं उन्हें साका करके दूँगी।

दो०—होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न रामु बनु जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिय मनु मांहिं ॥ ३४ ॥

सवेरा होते ही मुनिका भेष धारण कर यदि श्रीरामचन्द्रजी वनको नहीं जायेंगे तो हे राजा, मेरा मरण और अपना अपयश मनमें समझ लीजिये।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥

ऐसा कहकर वह दुष्ट कैकेयी उठकर खड़ी हो गयी। मानों क्रोधकी नदीमें बाढ़ आ गयी हो। यह नदी पापरूपी पहाड़से प्रगट हुई है और क्रोधरूपी जलसे भरी हुई है जिसे देखा नहीं जाता।

दोउ बर कूल कठिनहठ धारा। भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरुमूला। चली बिपतिबारिधि अनुकूला॥

दोनों वरदान ही दोनों किनारे और कठोर हठ ही भयंकर धारा है जिसमें कुबरी मंथराके वचनोंका प्रचार ही भँवर है। यह नदी राजारूपी वृक्षको समूल नष्ट करती हुई विपत्तिरूपी समुद्रकी ओर चली जाती है।

लखी नरेस बात सब साँची। तियमिसु मीचु सीस पर नाँची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिन-कर-कुल होसि कुठारी॥

राजाने देखा कि सब बात सत्य है और स्त्रीके बहानेसे मृत्यु शिरपर नाच रही है। उन्होंने कैकेयीके चरण पकड़, बैठालकर विनती की और कहा कि सूर्यवंशको काटनेके लिये कुल्हाड़ी मत बन।

मांगु माथ अबहीं देउँ तोही। रामबिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भांती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

मेरा शिर मांग, मैं तुझे अभी दूँगा, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके वियोगमें मुझे मत मार। जिस तरह हो श्रीरामचन्द्रजीको रख, नहीं तो जन्मभर छाती जलेगी।

दो०—देखि ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरतबचन राम राम रघुनाथ॥ ३५॥

राजाने ब्याधिको असाध्य देखा। वे माथा ठोककर पृथ्वीपर गिर पड़े। वे अत्यंत दीन वचनसे राम राम और रघुनाथ पुकार उठे।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी॥

राजा ब्याकुल हुए जिससे उनका सारा शरीर शिथिल हो गया, मानों हथिनीने कल्पतरुको नष्ट कर दिया हो। कंठ सूख गया और मुंहसे वाणी नहीं निकली, मानों पानी बिना मछली दुखी हो।

पुनि कह कटु कठोरु कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुरु देई॥
जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ। मांगु मांगु तुम्ह केहि बलु कहेऊ॥

फिर कड़वे और कठोर वचनसे कैकेयी कहने लगी मानों घावमें जहर भर रही हो। यदि अन्तमें यही करना था तो मांगो मांगो, ऐसा तुमने किस बल-पर कहा था?

1006

हुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि षेम कुसल रउताई॥

हे राजा, ठट्ठा मारकर हँसना और गालोंका फुलाना, ये दोनों काम क्या एक ही समयमें हो सकते हैं ? दानी भी कहलाना चाहते हो और कंजूसी भी करते हो ? सरदारी रखकर भी क्या कुशल क्षेम होती है ?

छाड़हु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसंध कहँ तृनसम बरनी॥

वचन छोड़ दो या धीरज रखो। स्त्रियोंके समान विलाप मत करो। सत्य प्रतिज्ञावालेके लिये यह कहा गया है कि शरीर, स्त्री, पुत्र, महल, धन और पृथिवी, सब तिनकेके समान हैं।

दो०—मरमबचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥ ३६॥

ऐसी चुभनेवाली बातें सुनकर राजा कहने लगे कि तू कह। इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है। पिशाचके समान तुझे लगा हुआ मेरा काल यह सब कहलाता है।

चहत न भरतु भूपतहि भोरे। बिधिबस कुमति बसी जिय तोरे॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥

भरत तो भूलकर भी राजा नहीं होना चाहते। दैववश तेरे हृदयमें दुर्बुद्धि बसी हुई है। यह सब मेरे पापका फल है जिसके कारण कुसमयमें ब्रह्मा प्रतिकूल हो गया।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर रामबड़ाई॥

सुन्दर अयोध्यापुरी सुन्दर निवासोंसे फिर बस जायगी, सब गुणोंके स्थान श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुता भी हो जायगी, सब भाई सेवा करेंगे और तीनों लोकोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई होगी।

तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहुँ गोई॥

परन्तु तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरनेपर भी न मिटेगा—कभी न दूर होगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर आंखसे ओझल होकर बैठ।

जब लगि जिअउँ कहउँ करजोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारुहि लागी॥

हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जबतक मैं जीता रहूं तबतक तू फिर कुछ मत कहना। अरी अभागिनी, अन्तमें तू फिर पछतायगी! बाजके लिये तू गायको मारती है?

दो०—परेउ राउ कहि कोटिबिधि काहे करसि निदानु।
कपटसयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥ ३७॥

करोड़ तरहसे यह कहकर कि तू नाश क्यों कर रही है, राजा गिर पड़े। कपट करनेमें चतुर कंकेयी कुछ कहती नहीं, मानों श्मशान जगा रही है।

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदय मनाव भोरु जनि होई। रामहिं जाइ कहइ जनि कोई॥

राजा व्याकुल होकर राम रामकी रट लगा गये, मानों पंख बिना पक्षी व्याकुल हो। वे अपने मनमें मनाने लगे कि सवेरा ही न हो। कोई जाकर श्रीरामचन्द्रजीको यह बात न सुनावे।

उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूपप्रीति कैकइकठिनाई उभयअवधि बिधि रची बनाई॥

हे रघुवंशके गुरु सूर्य, अपना उदय मत करो क्योंकि अयोध्याको देखकर तुम्हारे हृदयमें पीड़ा होगी। ब्रह्माने राजाकी प्रीति और कंकेयीकी कठोरता, दोनोंको अपनी सीमातक भलीभांति बना दिया।

बिलपत नृपहिँ भयउ भिनुसारा। बीना—बेनु—संख—धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक॥

राजाको इस प्रकार विलाप करते हुए सवेरा हुआ और द्वारपर वीणा, बांसुरी और शंखकी ध्वनि होने लगी। भाट लोग गुणोंका बखान करने लगे और गवैये गाने लगे। सुनते ही ये सब राजाको बाणके समान चुभने लगे।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहिं बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। रामदरस लालसा उछाहू॥

सती होनेको जानेवाली स्त्रीको जैसे गहने नहीं सुहाते वैसे ही ये सब मांगलिक कार्य राजाको नहीं अच्छे लगते। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेकी अभिलाषाके उत्साहके कारण उस रातको किसीको भी नींद नहीं आयी।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेखि॥ ३८॥

ड्योढ़ीपर सेवकों और मंत्रियोंकी भीड़ लग गयी। ये सब सूर्यको उदय हुआ देखकर कहने लगे कि अयोध्यापति राजा दशरथ अबतक नहीं जगे! इसका विशेष कारण क्या है?

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्रु जगावहु जाई। कीजिय काजु रजायसु पाई॥

राजा नित्य रात्रिके अन्तिम पहरमें जागा करते थे परन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य लग रहा है। हे सुमंत्र, जाओ और जाकर जगाओ, फिर आज्ञा पाकर कार्य करें।

गये सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति—बिषाद—बसेरा॥

तब सुमंत्र राजाके पास गये। चारों ओर भयावना देखकर वे डरते जाते थे। देखा न जाता था, मानों दौड़कर काटता हो और मानों वहां दुःख और विपत्तिका निवास हो।

पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठ सिरु नाई। देखि भूपगति गयउ सुखाई॥

पूछनेपर कोई उत्तर न देता था। जिस भवनमें राजा और कैकेयी, दोनों थे, वहां सुमंत्र पहुँच गये। 'जय जीव' कहकर और शिर नवाकर सुमंत्र बैठ गये। राजाकी दशा देखकर वे मुरझा गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमलमूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभभरी सुभछूछी॥

राजाका रंग उतरा हुआ था और शोकमें व्याकुल वे पृथिवीपर पड़े हुए थे, मानों जड़से उखड़ा हुआ कमल हो। भयभीत होनेसे मंत्री सुमंत्र कुछ पूछ नहीं सकते।. फिर अशुभसे भरी हुई और शुभसे शून्य कैकेयी बोली।

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जानु जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥ ३९॥

कारण तो ईश्वर ही जाने, परन्तु रातभर राजाको नींद नहीं आयी। राजा कुछ भेद नहीं बतलाते, परन्तु उन्होंने राम राम रटकर सबेरा किया है।

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्रु रायरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

जाकर श्रीरामचन्द्रजीको जल्दी ही बुला लाओ, तब आकर समाचार पूछना। राजाका रुख जानकर सुमंत चले। उन्होंने यह जान लिया कि रानीने कुछ कुचाल की है।

सोच विकल मग परइ न पाऊ। रामहिं बोलि कहिहिं का राऊ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे। पूछहिं सकल देखि मनुमारे॥

इस शोकसे व्याकुल होनेके कारण मार्गमें पैर नहीं पड़ता कि श्रीरामचन्द्र-जीको बुलाकर राजा क्या कहेंगे? हृदयमें धीरज रखकर वे द्वारपर गये। उनको मन मारे हुए देखकर सब पूछने लगे।

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पितासम लेखा॥

सबका समाधान कर वे वहां गये जहां सूर्यवंशके तिलक श्रीरामचन्द्रजी थे। श्रीरामचन्द्रजीने जब सुमंत्रको आते देखा तब पिताके समान समझकर उनका आदर किया।

निरखि बदनु कहि भूपरजाई। रघु–कुल–दीपहिं चलेउ लेवाई॥
राम कुभांति सचिवसँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुख देखकर उन्होंने राजाकी आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलमें दीपकके समान श्रीरामचन्द्रजीको लिवा ले चले। श्रीरामचन्द्रजी मंत्रीके संग बुरी तरह जा रहे हैं और उन्हें देखकर जहां तहां लोग व्याकुल हो रहे हैं।

दो०—जाइ दीख रघु–बंस–मनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु॥ ४०॥

रघुवंशमें मणिके समान श्रीरामचन्द्रजीने जाकर राजाको बिलकुल बुरे भेषमें देखा, मानों सिंहिनीको देखकर हाथियोंका बूढ़ा राजा डरकर गिर पड़ा हो।

सूखहिं अधर जरहिं सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुष समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥

होंठ सूख रहे हैं और सब अङ्ग जल रहे हैं, मानों मणिहीन सांप दीन हो रहा हो। क्रोधमें भरी हुई कैकेयीको पासमें देखा, मानों मृत्यु घड़ियां गिन रही हो।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूछी मधुरबचन महतारी॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव करुणासे भरा हुआ और कोमल है। उन्होंने पहिले ही यह दुःख देखा। इसके पहिले कभी सुना भी न था। फिर भी धीरज रखकर और समय विचारकर उन्होंने मीठे वचनोंसे माता कैकेयीसे पूछा।

मोहि कहु मातु तात-दुखु-कारनु। करिय जतनु जेहि होइ निवारनु॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू॥

हे माता, पिताजीके दुःखी होनेका कारण मुझसे कहिये जिससे वही उपाय किया जाय जिसमें वह दूर होवे। कैकेयीने कहा कि हे राम, सुनो। सब कारण यही है कि राजाको तुमपर बड़ा प्रेम है।

देन कहेन्हि मोहिं दुइ बरदाना। मांगेउँ जो कछु मोहिं सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

मुझे दो वरदान देने कहा था। जो कुछ मुझे अच्छा लगा वह मैंने मांग लिया। उसे सुनकर राजाके हृदयमें शोक हो गया है। वे तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते।

दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥ ४१॥

इधर पुत्रका प्रेम और उधर वचन, इसी संकटमें राजा पड़े हुए हैं। यदि कर सको तो आज्ञा शिरोधार्य करो और इस कठिन दुःखको मिटा दो।

निधरक बैठि कहइ कटुबानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु-लच्छ-समाना॥

बेखटके बैठकर कैकेयी कठोर वचन कहने लगी जिन्हें सुनते ही कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हुई। कैकेयीकी जीभ मानों कमानके समान, उसके वचन अनेक बाणोंके समान और राजा कोमल लक्ष्यके समान हैं।

जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुर्षविद्या बरबीरू॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई॥

मानों कठोरता शरीर रखे हुए किसी श्रेष्ठ वीरको धनुष-विद्या सिखला रही हो। कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीको सब प्रसंग सुनाया, मानों शरीर धारण किये हुए निठुरता बैठी हो।

मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू। राम सहज-आनंद-निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बागबिभूषन॥

स्वभावसे ही आनंदके भण्डार, सूर्यकुलके सूर्य, श्रीरामचन्द्रजी मनमें

मुस्कुराकर सब दोषोंसे रहित, सुन्दर और मीठे वचन बोले, मानों, वे सरस्वतीको विभूषित करते हों।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी॥
तनय मातु-पितु-तोषनि-हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

हे माता, सुनो। वही पुत्र बड़ा भाग्यवान् है जो अपने पिता और माताके वचनोंका भक्त हो। माता और पिताको संतोष देनेवाला पुत्र, हे माता, सारे संसारमें दुर्लभ है।

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर।
तेहि महँ पितुआयसु बहुरि संमत जननी तोर॥४२॥

बनमें मुनियोंसे बहुत मिलना होता है, उसमें भी पिताजीकी आज्ञा है और फिर तुम्हारी भी सम्मति है। हे माता, वहां मेरा सब प्रकार कल्याण होगा।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सबबिधि मोहिं सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़समाजा॥

मेरे प्राणप्रिय भरत राज्य पावेंगे, आज ब्रह्मा मेरे सब प्रकार अनुकूल है। यदि ऐसे कार्यके लिये भी मैं बनमें न जाऊँ तो मुझे मूर्ख-मंडलीमें पहिले गिना जाना चाहिये।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृतु लेहिं बिषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मनमाहीं॥

हे माता, मनमें विचारकर देखो। जो कल्पवृक्षको छोड़कर अंडीके पेड़की सेवा करते हैं और जो अमृत छोड़कर विष मांग लेते हैं वे भी ऐसा समय पाकर नहीं चूकते।

अंब एक दुखु मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायक देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

हे माता, राजाको बहुत व्याकुल देखकर मुझे एक बड़ा दुःख है कि थोड़ी बातके लिये ही पिताजीको भारी दुःख हुआ है। इससे हे माता, मुझे विश्वास नहीं होता।

राउ धीरु गुन-उदधि-अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
ता तें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

राजा बड़े धीर और गुणोंके अथाह समुद्र हैं। मुझसे कुछ बड़ा अपराध हुआ है, इसी कारण राजा मुझसे कुछ नहीं कह रहे हैं। तुझे मेरी सौगंद है, सच्चे भावसे बतला दे।

दो०—सहज सरल रघुबरबचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जिमि बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥ ४३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावसे ही सरल वचनोंको उस दुष्ट बुद्धिवाली कैकेयीने कुटिल समझा, जैसे यद्यपि जल समान होता है तथापि जोंक उसमें टेढ़ी चालसे चलती है।

रहँसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर रानी प्रसन्न हुई और कपटसे स्नेह दिखलाकर बोली। मुझे तुम्हारी और भरतकी सौगंद है, मैं दूसरा कुछ कारण नहीं जानती।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु-बचन-रत अहहू ॥

हे पुत्र, तुम अपराध करनेयोग्य नहीं, माता पिता और भाई, सबको सुख देनेवाले हो। हे राम, तुम जो कुछ कहते हो, वह सब सत्य है। तुम पिता और माताके वचनोंमें अनुरक्त हो।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥

हे पुत्र, मैं बलि जाऊँ, तुम पिताजीको समझाकर वही कहो जिससे चौथेपनमें उन्हें अपयश न हो। जिस सत्कर्मने तुम्हारे जैसे पुत्र दिये, उसका निरादर करना उचित नहीं।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातुबचन सब भाये। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये ॥

उस बुरे मुखवाली कैकेयीके शुभ वचन वैसे ही लगते हैं जैसे मगध देशमें गया आदि तीर्थ। श्रीरामचन्द्रजीको माताके सब वचन बहुत अच्छे लगे, जैसे गंगाजीमें मिल जानेपर सब तरहका जल अच्छा हो जाता है।

दो०—गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्हि।
सचिव रामआगमनु कहि बिनय समयसम कीन्हि ॥ ४४ ॥

राजाकी मूर्च्छा दूर हुई और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण कर फिर करवट ली। मंत्री सुमंत्रने श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी बात कहकर समयानुसार विनती की।

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥

राजाने जब यह सुना कि श्रीरामचन्द्रजी आ गये तब धीरज रखकर उन्होंने नेत्र खोले। मंत्रीने संभालकर राजाको बिठलाया और राजाने श्रीरामचन्द्रजीको चरणोंमें पड़ते हुए देखा।

लिये सनेहबिकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारिप्रबाहू॥

प्रेमसे व्याकुल होकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगा लिया, मानों सांपने अपनी खोयी हुई मणिको फिर पा लिया हो। राजा श्रीरामचन्द्रजीको देखते ही रह गये। उनके नेत्रोंसे जलकी धारा बह चली।

सोकबिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिंबारा॥
बिधिहि मनाव राउ मनमाहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥

शोकसे बेवश होनेसे राजा दशरथ कुछ कह न सकते थे। वे बारंबार श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाते थे। राजा मनमें ब्रह्माको मनाते थे कि ऐसा हो जिसमें श्रीरामचन्द्रजी बनको न जावें।

सुमिरि महेसहि कहई निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीनजनु जानी॥

शिवजीको स्मरण कर राजा विनती करके कहने लगे कि हे सदाशिव, आप मेरी विनती सुनिये। आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जानेवाले और बिना विचारे ही दया करके दान देने वाले हो। मुझे अपना दीन भक्त जानकर दुःख दूर कीजिये।

दो०—तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहिं देहु।
बचन मोर तजि रहहिं घर परिहरि सील सनेहु॥ ४५॥

आप सबके हृदयकी प्रेरणा करनेवाली शक्ति हैं, इसलिये श्रीरामचन्द्रजीको ऐसी बुद्धि दीजिये जिससे वे शील और स्नेह छोड़कर और मेरी आज्ञा भंग कर घरपर ही रहें।

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचनओट राम जनि होहीं॥

चाहे संसारमें अपयश हो और सारा सुयश नष्ट हो जावें, मैं चाहे नरकमें पड़ूं या वैकुण्ठको जाऊँ। मुझे सब कठिन दुःखोंको सहवाओ, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी आंखसे ओझल न होवें।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर-पात-सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहहिं मातु अनुमानी॥

राजा अपने मनमें इस तरह सोच रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपलके पत्तेके समान डोल रहा है। पिताको प्रेमके वशमें जानकर श्रीरामचन्द्रजीने यह अनुमान किया कि माता कैकेयी कुछ फिर कहेगी।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥

देश, काल और समयके अनुसार ये विचारकर नम्र वचन कहने लगे कि हे पिताजी, मैं ढिठाई कर कुछ कहता हूं। लड़कपन समझकर, यदि वह अनुचित हो तो क्षमा कीजियेगा।

अति-लघु-बात लागि दुखुपावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइहिं पूछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता॥

आप बहुत छोटी बातके लिये दुःखी हो रहे हैं। पहिले कहकर मुझे किसीने भी नहीं बतलाया। आपको देखकर जब मैंने मातासे पूछा तब सारा प्रसंग सुनकर शरीर शीतल हो गया।

दो०—मंगलसमय सनेहुबसु सोचु परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात॥ ४५॥

हे पिताजी, मंगलके समय प्रेमवश होकर शोक नहीं कीजिये और हृदयमें प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। ऐसा कहकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका शरीर पुलकायमान हो गया।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ता के। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके॥

इस पृथिवीतलपर उसका जन्म धन्य है जिसका चरित्र सुनकर पिताको आनंद मिले। चारों पदार्थ उसकी मुट्ठीमें हैं जिसको अपने मातापिता प्राणोंके समान प्यारे हों।

आयसु पालि जनमफलु पाई। ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ माँगी। चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी॥

मुझे आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञाका पालन कर और अपने जन्मका फल पाकर मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा। मातासे बिदा मांग आऊँ, फिर आपके चरणोंसे लगकर बनको चला जाऊँगा।

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तनु बीछी॥

तब, ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी चले गये। शोकके वशमें होनेके कारण राजाने कुछ उत्तर नहीं दिया। यह बड़ी तीखी बात नगरभरमें फैल गयी, मानों छूते ही सारे शरीरमें बिच्छू चढ़ गया हो।

सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई॥

सुनकर सब स्त्रीपुरुष व्याकुल हो गये जैसे लताएँ और वृक्ष बनकी आगको देखकर हो जाते हैं। जहां जो सुनता वही अपना शिर धुनने लग जाता। सबको बड़ा दुःख हुआ। किसीको धीरज नहीं होता।

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ॥ ४७॥

मुख सूखते हैं, नेत्रोंसे आंसू बहते हैं और हृदयमें शोक नहीं समाता, मानों करुणारसकी सेना डंका बजाकर अयोध्यामें आ उतरी हो।

मिलेहि मांझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहिं गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥

मिलकर जहां तहां लोग कैकेयीको गालियां देने लगे और कहने लगे कि ब्रह्माने बातको बीचमें ही बिगाड़ दिया। इस पापिनीको क्या समझ पड़ा जो छाये हुए घरपर अग्नि रख दी।

निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु-बंस-बेनु-बन आगी॥

अपने हाथसे नेत्रोंको निकालकर देखना चाहती है, अमृतको गिराकर विषको चखना चाहती है! यह दुष्ट, कठोर, दुर्बुद्धि रखनेवाली और अभागिन कैकेयी रघुकुलरूपी बांसके बनके लिये अग्नि हो गयी।

पालव बैठि पेड़ु एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा राम एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥

इसने डालपर बैठकर उसी पेड़को काटा है और सुखके समयमें शोकका ठाठ बना डाला है। श्रीरामचन्द्रजी इसको सदा प्राणोंके समान थे, फिर क्या कारण है कि इसने ऐसा दुष्टपन ठान रखा है?

सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सबबिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निजप्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई॥

कविजन सत्य कहते हैं कि स्त्रीका स्वभाव सब प्रकार अगम्य, अथाह और गुप्त होता है। अपनी परछाहीं चाहे भले ही पकड़ ली जाय परन्तु हे भाई, स्त्रीकी गति नहीं जानी जा सकती।

दो०—काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥ ४८ ॥

अग्नि किसे नहीं जला सकती? समुद्रमें क्या नहीं समा सकता? प्रबला स्त्री क्या नहीं कर सकती और काल संसारमें किसे नहीं खाता?

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥

ब्रह्माने क्या सुनाकर क्या सुनाया और क्या दिखलाकर किसे दिखलाना चाहता है! कोई कहने लगे कि राजाने अच्छा नहीं किया। उस दुष्ट बुद्धि-वालीको विचार करके दोनों वरदान नहीं दिये।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबलाबिबस ग्यानु गुनु गा जनु॥
एक धरमपरमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने॥

जो वे दोनों बरदान जबर्दस्ती सब दुःखोंके पात्र हो गये, मानों स्त्रीके बशमें होनेसे राजाका सब ज्ञान और गुण जाता रहा हो। दूसरे लोग, जो धर्मकी मर्यादाको पहिचानते हैं, और चतुर हैं, राजाको दोष नहीं देते।

सिबि-दधीचि-हरिचंद-कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं॥

वे परस्पर एक दूसरेसे राजा शिवि, दधीचि ऋषि और हरिश्चंद्रकी कथा बर्णन कर कहने लगे। कोई कहने लगे कि इसमें भरतकी भी सम्मति है। इसे सुनकर कोई तो उदासीन भावसे चुप रह जाते हैं—

कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरतु कहुँ प्रानपियारे॥

परन्तु कोई कानोंपर हाथ रखकर और दातोंतले जीभ दबाकर यह कहने लगते हैं कि यह बात असत्य है। ऐसा कहनेसे तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायँगे। भरतजीको श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंके समान प्यारे हैं।

दो०—चंदु चवइ बरु अनलकन सुधा होइ बिष तूल।
सपनेहुँ कबहु न करहिं कछु भरतु रामप्रतिकूल ॥ ४९ ॥

चाहे चंद्रमा आगके कण बरसाने लगे और अमृत विषके समान हो जावे, परन्तु भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके प्रतिकूल कभी स्वप्नमें भी कुछ न करेंगे।

एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥

कोई ब्रह्माको ही दोष दे रहे हैं जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया। नगरमें खलबली पड़ी हुई है, सब किसीको शोक हो रहा है। सबके हृदयका उत्साह मिट गया और उसमें कठोर पीड़ा होने लगी।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥

ब्राह्मणोंकी स्त्रियां और कुलकी पूज्य तथा बड़ी स्त्रियां, जो कैकेयीको बहुत प्यारी थीं, स्वभावकी प्रशंसा कर सीख देने लगीं। परन्तु कैकेयीको उनके वचन वाणके समान लगने लगे।

भरत न मोहि प्रिय रामुसमाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहजसनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू ॥

सब संसार जानता है और तुम यह सदा कहा करती थी कि भरत मुझे श्रीरामचन्द्रजीके समान प्यारे नहीं हैं। तुम स्वभावसे ही श्रीरामचन्द्रजी पर प्रेम किया करती थी परन्तु आज किस अपराधके कारण उन्हें बनवास दे रही हो?

कबहुँ न कियहु सवतिआरेसू। प्रीतिप्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥

तुमने कभी सौतिया डाह नहीं किया, सारा देश तुम्हारी प्रीति और विश्वासको जानता है। अब कौशल्याने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जिसके लिये तुमने नगरपर वज्रपात किया है।

दो०—सीय कि पिय संग परिहरिहि लषनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूंजब भरत पुर नृपु कि जियहि बिनु राम ॥ ५० ॥

सीताजी क्या पतिका साथ छोड़ देंगी? लक्ष्मणजी क्या घर रहेंगे? भरतजी क्या अयोध्यामें राज्य भोगेंगे और श्रीरामचन्द्रजीके बिना क्या राजा जीवित रहेंगे?

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोटि जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥

ऐसा विचारकर हृदयसे क्रोध दूर करो और शोक और कलंकका द्वार मत बनो। अवश्य ही भरतजीको युवराज पद दो परन्तु बनमें श्रीरामचन्द्रजीका क्या काम है?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरमधुरीन बिषयरस रूखे॥
गुरुगृह बसहिं राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥

श्रीरामचन्द्रजी राजके भूखे नहीं हैं क्योंकि वे धर्मधुरंधर और भोग-विलासके स्वादसे उदासीन हैं। श्रीरामचन्द्रजी राजमहल छोड़कर गुरुके घरमें जाकर रहें—ऐसा दूसरा वरदान तुम राजासे लो।

जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥

यदि तुम हमारा कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। यदि कुछ हँसी ही की हो तो उसे स्पष्ट कहकर बतला दो।

रामसरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोक कलंक नसाई॥

श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र क्या वनके योग्य है? सुनकर लोग तुमको क्या कहेंगे? उठो और जिस तरह यह शोक और कलंक दूर हो, शीघ्रतापूर्वक वही उपाय करो।

छं०—जेहि भांति सोक कलंक जाइ उपाइ करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी

जिस तरह शोक और कलंक जावे, वही उपाय करके कुलकी रक्षा करो। वन जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीको जबर्दस्ती लौटाल लो, दूसरी बात मत चलाओ जैसे सूर्य बिना दिन, प्राण बिना शरीर और चन्द्रमा बिना रात्रि होती है वैसे ही तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्या हो जायगी। हे रानी, यह अपने मनमें खूब समझ लो।

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५१॥

सखियोंने सीख दी जो सुननेमें मधुर और परिणाममें हित करनेवाली थी, परन्तु कुटिलद्वारा पढ़ायी हुई होनेके कारण उसने कुछ भी नहीं सुना।

उतरु न देई दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥

वह रूखी कैकेयी कठिनतासे सहन किये जानेयोग्य क्रोधमें भर रही है और उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देती। उन सबको वह ऐसे देखती है जैसे भूखी

सिंहिनी हिरनियोंको। उन सखियोंने असाध्य व्याधि समझकर छोड़ दिया और वे कैकेयीको मंद बुद्धिवाली और अभागिनी कहती हुई चलीं।

राज करत यहि दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहि पुर-नर-नारी। देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी॥

राज करते हुए इसे दैवने बरबाद किया। जैसा इसने किया वैसा कोई न करेगा। नगरके स्त्री और पुरुष, सब इस प्रकार विलाप करने और बुरी चालवाली कैकेयीको करोड़ों गालियां देने लगे।

जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जल-चर-गन सूखत पानी॥

सब विषम ज्वरसे जल रहे और लंबी सांस ले रहे हैं क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीनेकी क्या आशा? श्रीरामचन्द्रजीके भारी वियोगसे प्रजा व्याकुल हो गयी जैसे पानी सूखते ही जलके जीव व्याकुल हो जाते हैं।

अतिबिषादबस लोग लोगाई। गये मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुखप्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥

पुरुष और स्त्री, सब अत्यंत शोकके वशमें हो गये। समर्थ श्रीरामचन्द्रजी माताके पास गये। उनका मुख प्रसन्न था। उनके मनमें चौगुना उल्लास था। उनका यह सोच मिट चुका था कि राजा कहीं रोक न दें।

दो०—नवगयंदु रघुबीरमनु राजु अलानसमान।
छूट जानि बनगवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥५२॥

श्रीरामचन्द्रजीका मन नये हाथीके और अयोध्याका राज उसे बांधनेकी रस्सीके समान है। बन जाना सुनकर अपनेको छूटा हुआ जानकर उनके हृदयमें बहुत अधिक आनंद बढ़ा।

(कौसल्याकी आज्ञा)

रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायेउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषनबसन निछावरि कीन्हे॥

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीने दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक माताके चरणोंमें शिर नवाया। माताने आशीर्वाद दिया और अपने हृदयसे लगा लिया तथा गहने और कपड़े न्योछावर किये।

बारबार मुख चूमति माता। नयन नेहजलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये॥

माता बार बार श्रीरामचन्द्रजीका मुख चूमने लगी, प्रेमसे नेत्रोंमें जल

छा गया और शरीर पुलकायमान हो गया। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको गोदमें बैठाकर फिर हृदयसे लगा लिया। अत्यन्त प्रेमके वेगसे उनके स्तनोंसे सुन्दर दूध बहने लगा।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनदपदवी जनु पाई॥
सादर सुंदर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥

उनका प्रेम और आनन्द कुछ वर्णन नहीं किया जाता, मानों किसी कंगालने कुबेरकी पदवी पा ली हो। बड़े आदरके साथ सुन्दर मुख देखकर माता कौशल्या ये मीठे वचन बोलीं।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनमलाभ कइ अवधि अघाई॥

हे पुत्र, कहो। माता बलैयां लेती है। आनन्द मंगल करनेवाली वह लग्न किस समय है जो पुण्य, शील, और सुखकी सुन्दर सीमा है और जो जन्म लेनेके लाभकी पूर्ण अवधि है।

दो०—जेहि चाहत नरनारि सब अतिआरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि त्रिषित वृष्टि सरद रितु स्वाति॥५३॥

जिस लग्नको सब नरनारी अत्यन्त उत्कंठित होकर उसी भांति चाहते हैं जैसे प्यासे पपीहा पपीही शरदऋतुमें स्वातीके नक्षत्रकी वर्षा चाहते हैं।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितुसमीप तब जायेहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥

हे पुत्र, बलैयां लूं। जाओ, जल्दी स्नान करो और जो मनको भावे वह मिठाई कुछ खाओ। भैया, तब पिताके पास जाना। बहुत समय हो गया है। माता बलैयां लेती है।

मातुबचन सुनि अतिअनुकूला। जनु सनेह-सुर-तरु के फूला॥
सुखमकरंद भरे स्रियमूला। निरखि राम-मन-भवँरु न भूला॥

श्रीरामचन्द्रजीने माताके अत्यन्त अनुकूल वचन सुने, मानों वे प्रेमरूपी कल्पवृक्षके, जिसका मूल राज्यश्री है, फूल हों जो सुखरूपी परागसे भरे हुए हैं। इन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजीका मनरूपी भौंरा भूल नहीं गया।

धरम धुरीन धरमगति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहं सब भांति मोर बड़ काजू॥

धर्मकी गतिको जानकर धर्मधुरंधर श्रीरामचन्द्रजीने मातासे अत्यन्त

मीठी वाणीसे कहा कि पिताजीने मुझे बनका राज्य दिया है जहां सब प्रकार मेरा बड़ा काम बनेगा।

आयसु देहि मुदितमन माता। जेहि मुदमंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे॥

हे माता, प्रसन्न मनसे आज्ञा दो जिसमें बन जाते हुए आनन्दमंगल हों। हे माता, प्रेमके वश होकर भूलकर भी मत डरना, क्योंकि तुम्हारी कृपासे वहां आनन्द ही होगा।

दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु-बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥५४॥

चौदह वर्ष बनमें रहकर पिताके बचनोंका पालन करके मैं लौटूंगा और आपके चरणोंके फिर दर्शन करूंगा। मनको मैला मत करो।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सरसम लगे मातुउर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥

श्रीरामचन्द्रजीके मीठे कोमल वचन माताके हृदयमें बाणकी भांति चुभ गये और पीड़ा करने लगे। शीतल वाणी सुनकर वे भयभीत हुईं और सूख गयीं, जैसे वर्षाऋतुका पानी पड़नेसे जवास।

कहि न जाइ कछु हृदय-बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू॥
नयन सजल तन थरथर कांपी। मांजहि खाइ मीन जनु मांपी॥

हृदयका दुःख कुछ कहा नहीं जाता मानों हिरनने सिंहकी गर्जना सुनी हो। उनके नेत्रोंमें जल छा गया और शरीर थर थर कांपने लगा मानों मांजा खाकर मछली व्याकुल हुई हो।

धरि धीरज सुतबदन निहारी। गदगदबचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

धीरज रखकर माताने पुत्रका मुख देखा और गद्गद होकर ये वचन कहने लगी कि हे पुत्र, पिताको तुम प्राणोंके समान प्यारे हो। तुम्हारे चरित्र देखकर वे नित्य प्रसन्न होते हैं।

राजु देन कहुँ सुभदिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिन-कर-कुल भयउ कृसानू॥

राज देनेके लिये शुभ दिन नियत किया था फिर किस अपराधके कारण बन जानेको कह दिया। हे पुत्र, मुझे इसका मूल कारण सुनाओ कि सूर्यवंशके लिये अग्नि कौन हो गया?

दो०—निरखि रामरुख सचिवसुत कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ ॥५५॥

श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर मंत्रीके पुत्रने सब कारण समझाकर कहा। प्रसङ्ग सुनकर कौशल्या गूंगेकी भांति रह गयीं। उनकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू॥

वे न तो रख सकती हैं और न यह कह सकती हैं कि जाओ। दोनों ही भांति उनके हृदयमें कठोर दाह हो रहा है। दैवगति सबके लिये सदा टेढ़ी है कि चन्द्रमा लिखते हुए राहु लिख गया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछुँदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधुबिरोधू॥

धर्म और स्नेह, दोनोंने कौशल्याकी बुद्धिको घेर लिया। उस समय उनकी गति सांप और छछून्दर जैसी हो गयी। यदि मैं अनुरोध करके पुत्रको रखूं तो धर्म जाता है और भाइयोंसे विरोध होता है।

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच-बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तियधरमु सयानी। रामुभरतु दोउ सुत सम जानी॥

यदि बन जानेके लिये कहती हूं तो बड़ी हानि होती है। रानी कौशल्या संकट और सोचके वशमें हो गयीं। फिर चतुर रानी स्त्रीधर्म समझकर और श्रीरामचन्द्रजी और भरतजी दोनों पुत्रोंको समान जानकर ;

सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता सीधे स्वभावसे भारी धीरज रखकर ये वचन कहने लगीं कि हे पुत्र मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूं। तुमने अच्छा किया। पिताकी आज्ञा सबसे बड़ा धर्म है।

दो०—राज देन कहि दीन्ह बन मोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥ ५६॥

राज देनेको कहकर बन दिया, मुझे इसका कुछ भी दुःख नहीं है वरन्तु तुम्हारे बिना भरत, राजा और प्रजा, सबको घोर क्लेश होगा।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत-अवध-समाना॥

हे पुत्र यदि केवल पिताकी ही आज्ञा हो तो माताको बड़ा समझकर मत जाओ। यदि पिता और माता, दोनोंने बन जानेको कहा हो तो बन ही सौ अयोध्याओंके समान है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरनसरोरुह सेवी॥
अंतहु उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू॥

बनके देवता तुम्हारे पिता और बनकी देवी तुम्हारी माता हैं। पशु और पक्षी तुम्हारे चरणकमलोंके सेवक हैं। राजाके लिये बनमें बास करना अंतमें उचित ही है परन्तु तुम्हारी अवस्था देखकर जीमें घबड़ाहट होती है।

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघु-बंस-तिलकु तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहउँ सँग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू॥

हे रघुवंशके तिलक, बन बड़ा भाग्यवान है परन्तु अयोध्यापुरी बड़ी अभागिनी है जिसे तुम छोड़ दोगे। हे पुत्र, यदि मैं यह कहूं कि मुझे सङ्ग ले चलो तो तुम्हारे मनमें संदेह होगा।

पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछताऊँ॥

हे पुत्र, तुम सभीको अत्यन्त प्यारे हो। तुम प्राणके प्राण और जीवके भी जीवन हो। वही तुम कहते हो कि हे माता मैं बनको जाता हूं। तुम्हारी यह बात सुन मैं बैठकर पछताती हूं।

दो०—यह बिचारि नहिँ करउँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥५७॥

यही विचारकर झूठा सनेह बढ़ाकर हठ नहीं करती हूं। हे पुत्र, मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूं। माताका नाता मानकर मेरी याद मत भुलादेना।

देव पितर सबु तुम्हहिं गोसाँई। राखहु नयन पलककी नाईं॥
अवधि अँबु प्रियपरिजनु मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना॥

हे पुत्र, देव और पितर सब तुम्हारी रक्षा करें, जैसे पलकें नेत्रोंकी रक्षा करती हैं। बनवासके १४ वर्षकी अवधि जल है और प्यारे कुटुम्बी लोग मछली हैं और तुम धर्मधुरंधर और दयाके भण्डार हो।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ॥

ऐसा विचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीवित रहते हुए ही आकर मिल सको। मैं बलिहारी जाती हूं। प्रजाजनों, कुटुम्बियों और अयोध्याको अनाथ करके सुखपूर्वक बनको जाओ।

सब कर आजु सुकृतफल बीता। भयउ करालुकालु बिपरीता॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परमअभागिनि आपुहि जानी॥

सबके पुण्योंका फल आज समाप्त हुआ और करालकाल प्रतिकूल हो गया। बहुत तरहसे विलाप करके कौशल्याजी अपनेको बड़ी मन्द भाग्यवाली समझकर चरणोंसे लपट गयीं।

दारुन-दुसह-दाह उर ब्यापा। बरनि न जाइ बिलापकलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई॥

उनका हृदय अत्यन्त कठोर दाहसे जलने लगा। उनके अनेक प्रकारके विलापका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामचन्द्रजीने उठाकर माताको हृदयसे लगा लिया और फिर मीठे वचन कहकर समझाया।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग बंदि बैठि सिरुनाइ॥ ५८॥

उस समय सब समाचार सुनकर सीताजी व्याकुल हो उठीं और जाकर सासके दोनों चरणकमलोंको वंदनाकर शिर झुकाये हुए बैठ गयीं।

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता॥

सासने मीठी वाणीसे आशीष दी और उन्हें अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हुईं। रूपका भण्डार और पतिके प्रेममें पवित्र सीताजी नीचे मुख किये बैठी हुई सोचने लगीं।

चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥

मेरे प्राणनाथ, बनको विदा होना चाहते हैं। किस पुण्यके प्रभावसे मैं इनके साथ जा सकूंगी? या तो शरीर और प्राण, दोनों ही उनके साथी होंगे या केवल प्राण! दैवको क्या करना है, कुछ जाना नहीं जाता।

चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुरमुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥

सुन्दर चरणोंके नखसे सीताजी पृथिवी खोदने लगीं। उस समय नूपुरोंका

जो मधर शब्द हुआ, उसे कविने वर्णन किया है कि मानों वे नूपुर प्रमके वश होकर विनती कर रहे हैं कि सीताजीके चरण हमें त्याग न दें।

मँजुबिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी ॥
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

सीताजी सुन्दर नेत्रोंसे आंसू गिरा रही हैं, यह देखकर श्रीरामचंद्रजी-की माता बोली कि हे पुत्र, सुनो। सीताजी अत्यन्त सुकुमारी और सास ससुर और कुटुम्बियोंको प्यारी हैं।

दो०—पिता जनक भूपालमनि ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रवि-कुल-कैरव-बिपिन-बिधु गुन-रूप-निधानु ॥५६॥

राजाओंमें मणिके समान राजा जनक सीताजीके पिता, सूर्यकुलके सूय राजा दशरथ ससुर और गुण एवं रूपके भण्डार तथा सूर्यकुलरूपी कुमुदके बनके लिये चंद्रमाके समान श्रीरामचंद्रजी पति हैं।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सील सुहाई ॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥

फिर मैंने रूपकी राशि, सुन्दर गुणवती और अच्छे स्वभाववाली प्यारी पुत्रबधूको पाया और उसे नेत्रोंकी पुतली बनाकर प्रेमको बढ़ाया। सीताजीको मैं प्राणोंसे लगाये रहती हूं।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥

कल्पवृक्षकी बेलके समान इसको मैंने बहुत तरहसे प्यार किया है और प्रेमरूपी जलसे सींचकर इसे पाला है। फूलने और फलनेके समय दैव प्रतिकूल हो गया। परिणाम क्या होगा, यह मालूम नहीं होता।

पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनिकठोरा ॥
जिवनमूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहेऊँ ॥

पलंग, पीढ़ा, गोद और हिंडोलेको छोड़कर सीताजीने कठोर पृथिवी-पर कभी पैर भी नहीं रखा। संजीवनी मूलके समान मैं इसे देखती रहती हूँ दीपककी बत्ती बढ़ानेके लिये भी मैं कभी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद-किरिन-रस-रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकइ किमि जोरी ॥

वही सीताजी तुम्हारे साथ बन जाना चाहती है। हे रामचंद्रजी, उसके

लिये क्या आज्ञा होती है ? चंद्रमाकी किरणोंके रससे प्रेम करनेवाली चकवी सूर्यकी ओर आंखें करके कैसे देख सकती है ?

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।
विषबाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि ॥ ६० ॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट प्राणी बनमें फिरा करते हैं । हे पुत्र, सुन्दर संजीवनी जड़ी क्या विषके बगीचोंमें शोभा देती है !

बनहित कोल किरात किसोरी । रची बिरंचि विषय-सुख-भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥

ब्रह्माने बनके लिये भोग विलासके सुखोंको न जाननेवाली कोल और भीलोंकी लड़कियोंको बनाया है। पत्थरके कीड़ेके समान जिनका कठोर स्वभाव है उन्हें बनमें किसी तरहका क्लेश नहीं होता है ।

कै तापसतिय काननजोगू । जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भांती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥

अथवा तपस्वियोंकी स्त्रियां बनमें रहनेके योग्य हैं जिन्होंने तपस्याके लिये सब भोग छोड़ दिये हों। हे पुत्र, सीताजी बनमें किस प्रकार बसेगी जो चित्रमें बना हुआ बंदर देखकर भी डरती है ?

सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी । डाबर जोग कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

देवताओंके सुन्दर सरोवरके कमलोंके बनमें विचरनेवाली हंसिनी क्या किसी गड़्ढेके योग्य है ? इन सब बातोंका विचार करनेके पश्चात् फिर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं सीताजीको वैसी ही शिक्षा दूं ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा । मोहि कह होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

कौशल्या माता कहने लगी कि यदि सीताजी घर रह जाय तो मुझको बड़ा सहारा हो जाय। शील और प्रेमकी अमृतसे सनी हुई होनेके समान माताकी प्यारी वाणी सुनकर श्रीरामचंद्रजीने—

दो०—कहि प्रियबचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥ ६१ ॥

ज्ञानसे भरे हुए प्यारे वचन कहकर माताको संतुष्ट किया और फिर बनके गुण और दोष बताकर सीताजीको समझाने लगे ।

मातुसमीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मनमाहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥

माताके पास कुछ कहते हुए श्रीरामचंद्रजीको संकोच लगता है परन्तु मनमें समय समझकर वे कहने लगे—हे राजकुमारी, मेरी सीख सुनो! हृदयमें किसी दूसरे प्रकार कुछ मत समझना।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासुसेवकाई। सबबिधि भामिनि भवन भलाई॥

यदि अपना और मेरा भला चाहती हो तो मेरी आज्ञा मानकर घर रहो। हे भामिनि, घर रहनेमें मेरी आज्ञाका पालन, सासकी सेवा और सब तरहकी भलाई है।

एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहिं प्रेमबिकल मतिभोरी॥

आदरपूर्वक सास और ससुरके चरणोंकी पूजा करना, इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। माता जब जब मेरी याद करेंगी और वे भोली बुद्धिवाली होनेके कारण प्रेमसे व्याकुल हो जायंगी,

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी॥
कहउं सुभाव सपथ सत मोही। सुमुखि मातुहित राखउँ तोही॥

तब तब तुम पुरानी कथाएँ कहकर, हे सुन्दरी, उन्हें मीठी वाणीसे समझाना। मैं स्वभावसे कहता हूँ, मुझे सौ सौगंद है। हे सुन्दर मुखवाली सीता, मैं तुम्हें माताकी भलाईके लिये ही छोड़ता हूँ।

दो०—गुरु स्रुति-संमत धरमफलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥ ६२॥

गुरु और वेदद्वारा कहे हुए धर्मके फलको बिना किसी प्रकारका क्लेश उठाये हुए ही पा जाओगी। गालव मुनि और नहुष राजाने हठके वशमें होकर सब संकट सहे थे।

मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥

हे सुमुखि, हे सयानी, सुनो। मैं पिताजीकी आज्ञाका पालन कर फिर जल्दी ही लौटूंगा। हे सुन्दरी, हमारी सीख सुनो, दिन जाते देर नहीं लगेगी।

जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥

हे वामा, यदि प्रेमके वशमें होकर हठ करोगी तो उसके परिणाममें तुम्हें दुःख ही मिलेगा। बन बड़ा कठोर और डरावना होता है। धूप, वर्षा, शीत और वायु, वहां बड़ी भयङ्कर होती है।

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

मार्गमें कुश, कांटे और तरह तरहके कंकड़ रहते हैं जिनपर जूते बिना पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे कमल जैसे चरण कोमल और सुन्दर हैं और मार्गमें अगम्य भारी पर्वत हैं।

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

गुफाएँ, खोह, नदियां, नद और नाले सब ऐसे अगम्य और अथाह हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िया, सिंह और हाथी, सब ऐसे शब्द करते हैं कि सुनकर धीरज भी भाग जाता है।

दो०—भूमिसयन बलकलबसन असन कंद-फलु-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥६३॥

पृथिवीपर सोना, पेड़की छालसे शरीर ढकना और कन्द मूल फल खाना—ये भी क्या सदा रोज रोज मिलते हैं? जैसा समय होता है उसीके अनुकूल मिलते हैं।

नरअहार रजनीचर चरहीं। कपटवेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥

वहां मनुष्यभक्षी राक्षस फिरते हैं जो कपटसे करोड़ों तरहके भेष रख लेते हैं। पहाड़का पानी बहुत लगता है। बनके दुःख वर्णन नहीं किये जाते।

ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसि-चर-निकर नारि-नर-चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये॥

घना बन, भयंकर सर्प और पक्षी, स्त्रियों और पुरुषोंको चुरा ले जानेवाले राक्षस—इन सबकी याद आनेपर अत्यन्त धीर मनुष्य भी डर जाते हैं, फिर हे हिरन जैसे नेत्रवाली सीताजी, तुम तो स्वभावसे ही डरपोक हो।

हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ किं लवन पयोधि मराली॥

हे हंसके समान मंद गतिसे चलनेवाली सीताजी, तुम बन जानेयोग्य

नहीं हो। सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवरके जलरूपी अमृतसे पली हुई हंसिनी क्या खारी समुद्रमें जीवित रह सकती है ?

नव-रसाल-बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥

नये आमोंके बनमें विहार करनेवाली कोयल क्या करीलके बनमें शोभा पा सकती है ? ऐसा हृदयमें विचारकर घरपर ही रहो। हे चन्द्रमुखी, बनमें बहुत दुःख हैं।

दो०—सहज सुहृद-गुर-स्वामि-सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि॥६४॥

जो अपने मित्र, गुरु और स्वामीकी सीखको स्वभावसे ही शिरोधार्य कर नहीं मानता वह पीछे मनमें खूब पछताता है। उसके हितकी हानि भी अवश्य ही होती है।

सुनि मृदुबचन मनोहर पियके। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतलसिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरदचंद निसि जैसे॥

पतिके मनोहर मीठे वचन सुनकर सीताजीके सुन्दर नेत्रोंमें आंसू भर आये। श्रीरामचन्द्रजीकी शीतल सीख उन्हें वैसी ही जलानेवाली हुई जैसी चकईको शरदऋतुकी पूर्ण चन्द्रमावाली रात।

उतर न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचनबारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥

सीताजीसे कुछ बोलते न बना। वे यह जानकर व्याकुल हो गयीं कि पवित्र प्रेमी मेरे स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रोंके आंसुओंको जबरदस्ती रोककर और अपने हृदयमें धीरज रखकर सीताजी—

लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अविनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई॥
मैं पुनि समुझि दीखि मनमाहीं। पिय-बियोग सम दुख जग नाहीं॥

सासके चरणोंसे लिपटकर और हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हे देवि, मेरी बड़ी भारी ढिठाईको क्षमा करना। प्राणनाथने मुझे वही सीख दी है जिससे मेरा परम कल्याण हो, परन्तु मैंने फिर मनमें समझ देखा है कि पतिके वियोगके समान दूसरा दुःख संसारमें नहीं है।

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरकसमान॥६५॥

हे प्राणनाथ, हे दयानिधान, हे सुजान, हे सुन्दर सुख देनेवाले, हे रघुवंश-रूपी कुमुदके लिये चन्द्रमाके समान श्रीरामचन्द्रजी, आपके बिना स्वर्ग भी नरकके समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रियपरिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

माता, पिता, बहिन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रोंका समूह, सासु, ससुर, गुरु, संबंधी, सहायक और सुन्दर, सुशील तथा सुख देनेवाले पुत्र,

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सब सोकसमाजू॥

हे नाथ, जहांतक स्नेह और संबंध हैं, वे सब स्त्रीको पतिके बिना सूर्यसे भी अधिक तपानेवाले हैं। तन, धन, घर, पृथिवी, नगर और राज्य, यह सब पति न होनेपर शोकका समाज है।

भोग रोगसम भूषन भारू। जम-जातना-सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

अनेक प्रकारके भोग रोगके समान और भूषण बोझके समान हैं। संसार यमराजकी यातनाके समान है। हे प्राणनाथ, आपके बिना संसारमें मुझे सुख देनेवाला कहीं कुछ भी नहीं है।

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकलसुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे॥

हे नाथ, पुरुषके बिना स्त्री वैसी ही है जैसी प्राणके बिना देह और जलके बिना नदी। हे नाथ, शरद ऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान आपका मुख देखकर आपके साथमें मुझे सब सुख मिलेंगे।

दो०—खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल।
नाथसाथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल॥६६॥

आपके साथमें वन नगर होगा, पशु और पक्षी कुटुम्बी होंगे, छाल ही उज्ज्वल वस्त्र होंगे और पत्तोंकी झोपड़ी देवताओंके भवनके समान सुखकी मूल होगी।

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभुसँग मंजु मनोजतुराई॥

वनके उदार देवता और देवियां सासु और ससुरके समान शुद्ध व्यवहार

करेंगी। स्वामीके साथ कुश और कोमल पत्तोंकी सुन्दर बिछौनी कामदेवकी तोशकके समान सुन्दर होगी।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध-सौध-सत-सरिस पहारू॥
छिनुछिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥

कंद, मूल और फलोंका भोजन अमृतके समान होगा। अयोध्याके सौ राजमहलोंके समान पहाड़ होंगे। स्वामीके चरणकमलोंको एक एक क्षण पीछे देख देखकर मैं चकईकी भांति दिनभर प्रसन्न रहूंगी।

बनदुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु–बियोग–लव–लेस–समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

हे नाथ, आपने बनके बहुतेरे दुःख और अगणित भय, शोक और सन्ताप बतलाये हैं; परन्तु हे कृपानिधान, ये सब मिलकर स्वामीके वियोगसे होनेवाले दुःखके लवलेशके बराबर भी नहीं हो सकते।

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छांड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर–अंतर–जामी॥

हे सुजान शिरोमणि, ऐसा जीमें जानकर मुझे संग ले चलिये, छोड़िये नहीं। हे स्वामी, अधिक विनती क्या करूं? हे दयामय, आप हृदयके भीतरकी बातोंको जाननेवाले हैं।

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील-सनेह–निधान॥६७॥

हे दीनबन्धु, हे शील और स्नेहके भण्डार, हे सुन्दर सुख देनेवाले, यदि आप यह समझें कि चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेतक इसके प्राण बने रहेंगे, तो अयोध्यामें छोड़ जाइये।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरनसरोज निहारी॥
सबहिं भांति पिय सेवा करिहउँ। मारगजनित सकल स्रम हरिहउँ॥

क्षण क्षणमें आपके चरणकमल देखकर मार्गमें चलनेसे मुझे थकावट न होगी। हे स्वामी, मैं सब प्रकार आपकी सेवा करूंगी और रास्ता चलनेसे जो थकावट होगी वह सब दूर कर दूंगी।

पाय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहउं बाउ मुदित मनमाहीं॥
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुखसमउ प्रानपति पेखे॥

वृक्षकी छायामें बैठकर आपके पैर धोऊंगी और मनमें प्रसन्न होकर हवा

करूंगी। पसीनेकी बूंद समेत आपके श्याम शरीरको देखूंगी। प्राणनाथको देख लेनेपर फिर दुःखका अवसर कहाँ?

सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बारबार मृदुमूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥

समान भूमिमें तिनकों और वृक्षोंके पत्तोंको बिछाकर यह दासी रातभर चरण दाबती रहेगी। बारंबार आपकी सुन्दर मूर्ति देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी।

को प्रभुसँग मोहि चितवनि हारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू। तुम्हहिं उचित तपु मो कहुँ भोगू॥

स्वामीके सङ्ग होनेपर मेरी ओर देखनेवाला है कौन? जैसे सिंहिनीको सियार और खरगोश नहीं देख सकते। हे स्वामी, मैं सुकुमारी हूं और आप वनके योग्य हैं! आपको तप करना और मुझे भोग भोगना उचित है!

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु-विषम-बियोग-दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥ ६८॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी यदि मेरा हृदय नहीं फटा तो स्वामीके वियोगका विषम दुःख भी ये नीच प्राण सह लेंगे।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचनबियोगु न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत व्याकुल हुईं। वियोग-संबंधी वचनोंको वे संभाल नहीं सकीं। उनकी दशा देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मनमें जान लिया कि हठपूर्वक रखनेसे यह प्राण नहीं रखेगी।

कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन-गवन-समाजू॥

सूर्यकुलके स्वामी कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि सोच छोड़कर हमारे साथ वनको चलो। आज शोक करनेका अवसर नहीं है। जल्दीसे वनको चलनेकी तैयारी करो।

कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई। लगे मातुपद आसिष पाई॥
बेगि प्रजादुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

प्रिय वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रिया सीताको समझाया। फिर वे माताके चरणोंमें पड़ गये और आशीर्वाद पाया। माताने कहा कि जल्दी लौटकर प्रजाका दुःख मिटाना। इस निठुर माताको भुला मत देना।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउं नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदनबिधु जोइहि॥

हे दैव, क्या फिर भी मेरी दशा फिरेगी कि मैं इस मनोहर जोड़ीको नेत्र भरकर देखूंगी? हे पुत्र वह शुभ दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब माता जीवित रहकर तुम्हारा चन्द्रमुख फिर देखेगी?

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरखिहउँ गात॥ ६१॥

हे पुत्र, वत्स, लाल, रघुपति और रघुवर कह कहकर फिर कब बुलाकर हृदयसे लगाऊंगी और आनंदित होकर तुम्हारा शरीर देखूंगी?

लखि सनेह कातरि महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥

श्रीरामचन्द्रजीने जब यह देखा कि स्नेहसे माता कातर हो रही हैं और इतनी अधिक व्याकुल हो गयी हैं कि मुखसे वचन नहीं निकलता, तब उन्होंने अनेक प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीको समझाया। उस समयका स्नेह कहनेमें नहीं आता।

तब जानकी सासुपग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बनु दीन्हा। मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा॥

तब सीताजी सासके पैरोंसे लग गयीं और कहा कि हे माता, सुनिये, मैं बड़ी अभागिनी हूं। दैवने सेवा करनेके समय वन दिया और मेरा मनोरथ सफल नहीं किया।

तजब छोभु जनि छांड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोषु न मोहू॥
सुनि सियबचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी॥

आप शोकको दूर कर दीजिये, परन्तु स्नेहको नहीं छोड़िये। कर्मकी गति बड़ी कठोर है। मेरा कुछ भी दोष नहीं है। सीताजीके वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उनकी दशाको मैं किस प्रकार वर्णन कर कहूं?

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा॥

उन्होंने सीताजीको बारंबार हृदयसे लगाया और धीरज रखकर सीख और आशिष दी। (बोलीं,) जबतक गङ्गा और जमुनामें जलकी धारा है तबतक तुम्हारा सौभाग्य अचल होवे।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पदपदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥ ७० ॥

सीताजीको सासुने अनेक प्रकारकी सीख और आशिष दी। बड़े प्रेमसे बारंबार चरणकमलोंको शिर नवाकर सीताजी चलीं।

[लक्ष्मणजीका सहगमन]

समाचार जब लछिमन पाये । ब्याकुल बिलष बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥

जब लक्ष्मणजीने ये सब समाचार पाये तब वे व्याकुल होकर उदास मुखसे उठकर दौड़े हुए आये। उनका पुलकायमान शरीर कांप रहा है और नेत्रोंमें जल छाया हुआ है, उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे अधीर होकर चरण पकड़ लिये।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल ते काढ़े ॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा । सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥

लक्ष्मणजी कुछ कह नहीं सकते, खड़े देख रहे हैं मानों जलसे निकाल लेनेपर मछली दीन हो रही हो। वे अपने हृदयमें सोचने लगे कि हे दैव, होनेवाला क्या है? हमारा सब सुख और पुण्य चुक गया।

मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु करजोरे । देह गेह सब सन तृनु तोरे ॥

श्रीरामचन्द्रजी मुझसे क्या कहेंगे—घर रखेंगे कि साथ ले चलेंगे? श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़े हुए भाईको देखा, जिसने शरीर और घर, सबसे नाता तोड़ दिया है।

बोले बचनु राम नयनागर । सील-सनेह-सरल-सुख-सागर ॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

तब नीतिकुशल और स्नेह, शील, सरलता और सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी यह वचन बोले कि हे भाई, तुम प्रेमके वशमें होकर और अपने हृदयमें परिणामके आनन्दको समझकर कातर मत बनो।

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर न तरु जनमु जग जाय ॥ ७१ ॥

माता, पिता गुरु और स्वामीकी सीखको स्वभावसे ही शिरोधार्य कर जो लोग मानते हैं उन्होंने अपने जन्म लेनेका लाभ पा लिया; नहीं तो संसारमें जन्म व्यर्थ ही जाता है।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥

हे भाई, ऐसा मनमें जानकर सीख सुनो और माता-पिताके चरणोंकी सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घरपर नहीं हैं, राजा वृद्ध हैं और उनके मनको मेरे बन जानेका दुःख है।

मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह-दुख-भारू॥

यदि तुम्हें साथ लेकर मैं वन जाऊँ तो अयोध्या सभी तरहसे अनाथ हो जायगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार, सबपर कठिन दुःखका भार आ पड़ेगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रियप्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरकअधिकारी॥

इसलिये तुम रहो और सबको संतुष्ट करो, नहीं तो हे भाई, बड़ा दोष होगा। जिसके राज्यमें प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक जानेका अधिकारी होता है।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषन भये ब्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसतु तुहिन तामरसु जैसे॥

ऐसी नीतिको विचारकर हे भाई, यहीं रहो। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत व्याकुल हुए। श्रीरामचन्द्रजीके शीतल वचनोंसे वे उसी प्रकार सूख गये जैसे पाला पड़ते ही कमल सूख जाते हैं।

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त कहा बसाइ॥ ७२॥

लक्ष्मणजीको उत्तर नहीं देते बनता। उन्होंने प्रेमके वश व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरण पकड़ लिये और कहा कि हे नाथ, मैं आपका दास हूँ और आप मेरे स्वामी हैं। यदि आप छोड़ें तो क्या वश चलता है?

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई॥
नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥

हे स्वामी, आपने मुझे सीख तो अच्छी दी है, पर अपनी कायरताके कारण वह मुझे अगम्य मालूम हो रही है। जो मनुष्य श्रेष्ठ, धीर और धर्म-धुरन्धर होते हैं वही शास्त्र और नीतिके अधिकारी होते हैं।

मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

मैं तो स्वामीके स्नेहसे पला हुआ बालक हूं। हंस क्या मंदराचल या मेरु पर्वतको उठा सकते हैं? हे नाथ, मैं स्वभावसे ही कह रहा हूं। आप विश्वास कीजिये कि मैं गुरु, पिता और माता, किसीको भी नहीं जानता।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबहि एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अंतर-जामी॥

जहांतक संसारमें प्रेम और सम्बन्ध हैं, शास्त्रने बतलाया है कि वे सब अपनी प्रीति और विश्वासपर हैं। हे स्वामी, हे दीनबन्धु, हे हृदयके भीतरके भावोंको जाननेवाले, मेरे सब कुछ एक आप हैं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति-प्रिय जाही॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

धर्म और नीतिका उपदेश उसे देना चाहिये जिसे कीर्ति, ऐश्वर्य और सद्गति प्यारी हो। हे कृपाके समुद्र! जो मन, वाणी और कर्मसे चरणोंमें अनुरक्त हो, उसे क्या चरणोंको छोड़ना चाहिये?

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदुबचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत॥ ७३॥

सुन्दर भाईके कोमल दीन वचन सुनकर और स्नेहसे डरा हुआ समझकर दयासागर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हृदयसे लगाकर समझाया।

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

हे भाई, जाकर मातासे विदा मांगो और जल्दी आकर वनको चलो। श्रीरामचन्द्रजीकी यह वाणी सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए। उन्हें बड़ा लाभ हुआ और भारी हानि दूर हो गई।

हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन-जानकि-साथा॥

हृदयमें प्रसन्न होकर वे माताके पास आये मानों अन्धेने फिर नेत्र पा लिये हों। जाकर उन्होंने माताके चरणोंमें मस्तक नवाया, परन्तु उनका मन श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके साथ था।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लषन कहा सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँओरा॥

मनमलीन देखकर जब माताने पूछा तब लक्ष्मणजीने सब कथाको विस्तारपूर्वक कह सुनाया। माता सुमित्रा लक्ष्मणजीके कठोर वचन सुनकर डर गयीं जैसे चारों ओर वनकी आग देखकर हिरनी डर जाती है।

लषन लखेउ भा अनरथु आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

लक्ष्मणजीने देखा कि आज अनर्थ हुआ। इस प्रेमके वशमें होकर ये काम बिगाड़ डालेंगी। लक्ष्मणजीको भय हो रहा है और बिदा मांगते हुए वे सकुचाते हैं कि हे देव, संग जानेको वे कह देंगी या नहीं।

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूप-सुसीलु-सुभाउ।
नृपसनेहु लखि धुनेउ सिर पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ ७४॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके रूप, सुन्दर शील और स्वभावको समझकर और राजाका प्रेम देखकर सुमित्राने अपना शिर धुन लिया और कहा कि पापिनी केकयीने बड़ा बुरा घात किया।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही॥

कुसमय समझकर उन्होंने धीरज रखा और स्वभावसे ही हित करनेवाली कोमल वाणीसे वे कहने लगीं कि हे पुत्र, तुम्हारी माता सीताजी हैं और पिता श्रीरामचन्द्रजी जो सब प्रकार तुमसे प्रेम करते हैं।

अवध तहाँ जहँ रामनिवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

अयोध्या वहीं है जहां श्रीरामचन्द्रजीका निवास हो। दिन वहीं है जहां सूर्यका प्रकाश हो। यदि कदाचित् सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी वनको जाते हैं तो अयोध्यामें रहनेका तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रानप्रिय जीवनु जी के। स्वारथरहित सखा सबही के॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, सबकी सेवा अपने प्राणोंकी भांति करनी चाहिये। श्रीरामचन्द्रजी सभीके प्राणप्यारे, स्वार्थरहित मित्र और प्राणोंके भी प्राण हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहां ते। सब मानिअहि राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बनु जाहू। लेहु तात जग जीवनलाहू॥

जहांतक पूज्य और अत्यन्त प्यारे हैं उन सबको श्रीरामचन्द्रजीके संबंध-

से मानना चाहिये। ऐसा अपने हृदयमें जानकर उनके साथ वनको जाओ और हे पुत्र, संसारमें जन्म लेनेका लाभ उठाओ।

दो०—भूरि भागभाजन भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मनु छांड़ि छलु कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ७५॥

मैं बलैया लेती हूँ। यदि तुम्हारे मनने छल छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें ठिकाना किया है तो तुम मुझ समेत बड़भागी हुए।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित हानी॥

संसारमें वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका भक्त हो, नहीं तो वह बांझ ही अच्छी; क्योंकि उसका प्रसव करना ही व्यर्थ है। श्रीरामचन्द्रजीके विमुख पुत्रसे हितकी हानि होती है।

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम-सीय-पद सहज सनेहू॥

हे पुत्र, तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामचन्द्रजी वनको जा रहे हैं और दूसरा कारण कुछ भी नहीं है। सब पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंमें स्वभावसे ही प्रेम हो।

राग रोष इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इनके बस होहू॥
सकलप्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

प्रेम, क्रोध, ईर्षा, मद और मोह, इनके वशमें स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंको दूर कर मन, वाणी और कर्मसे सेवा करना।

तुम्ह कहँ बन सब भाँतिसुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

सब प्रकारकी सुविधा वनमें तुम्हारे लिये है जिनके संगमें पिता, माता श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी हैं। हे पुत्र, मेरा यही उपदेश है कि तुम वही करना जिसमें श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें।

छंद—उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हरे रामसिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अविरल अमल सिय-रघु-बीर पद नितनित नई॥

यही उपदेश है जिससे तुम्हारे भरसक श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी सुख पावें, और वनमें पिता, माता, प्यारे परिवार, नगर और सुखकी याद भूल

जावें। तुलसीदासजी कहते हैं कि माता सुमित्राने पुत्र लक्ष्मणको सीख देकर आज्ञा दी और फिर आशीर्वाद दिया कि श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंमें तुम्हारा सघन पवित्र प्रेम नित्य नया होवे।

सो०—मातु चरन सिरु नाय चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहुं भाग मृगु भागबस॥ ७६॥

माताके चरणोंको शिर नवाकर, मनमें डरते हुए, लक्ष्मणजी तुरन्त चल दिये मानों कठिन जालको भाग्यवश तुड़ाकर हिरन भाग चला हो।

गये लषन जहँ जानकिनाथू। भे मनु मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम-सिय-चरन सुहाये। चले संग नृपमंदिर आये॥

अपना प्यारा साथ पाकर लक्ष्मणजी मनमें प्रसन्न हुए और वहाँ गये जहाँ सीताजीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी थे। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके सुन्दर चरणोंकी वन्दना कर वे साथ चले और राजा दशरथके महलमें आये।

कहहिं परसपर पुर-नर-नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस मनु दुखु बदन मलीने। बिकल मनहु माखी मधु छीने॥

नगरके स्त्री और पुरुष सब परस्पर कहते हैं कि दैवने अच्छी बातको बनाकर बिगाड़ दिया। सबके शरीर दुर्बल हो गये, मनमें दुःख और मुख मलीन हो गये। शहद छिन जानेपर जैसे मक्खी व्याकुल होती है वैसे ही सब व्याकुल हो गये।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषाद अपारा॥

सब हाथ मलते और शिर धुनकर पछताते हैं मानों पंखोंके बिना पक्षी व्याकुल हो रहे हों। राजाके दरबारमें बड़ी भारी भीड़ हो गयी। अपार दुःखका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रियबचन राम पगु धारे॥
सियसमेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

यह प्रिय वचन कहकर मंत्रीने राजाको उठाकर बतलाया कि श्रीरामचन्द्रजी आ गये। सीता समेत दोनों पुत्रोंको देखकर राजा अत्यन्त व्याकुल हुए।

दो०—सीयसहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेहबस राउ लेइ उर लाइ॥ ७७॥

सीता समेत दोनों सुन्दर पुत्रोंको देख देखकर व्याकुल हो राजा प्रेमवश उन्हें बारम्बार हृदयसे लगाने लगे।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोकजनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीस पद अतिअनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मांगा॥

राजा व्याकुल हो रहे हैं, शोकसे उनके हृदयमें कठोर दाह उत्पन्न हो गया है, वे बोल नहीं सकते। तब श्रीरामचन्द्रजीने उठकर बड़े प्रेमसे उनके चरणोंमें शिर नवाकर बिदा मांगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरषसमय बिसमउ कत कीजै॥
तात किये प्रिय प्रेमप्रमादू। जस जग जाइ होइ अपबादू॥

हे पिताजी, मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये। आनन्दके समय आप दुःख क्यों कर रहे हैं? हे पिता, इस समय अपने प्यारोंसे प्रेम करना प्रमाद ही होगा, क्योंकि उससे संसारमें यश नष्ट हो जायगा और निन्दा होगी।

सुनि सनेहबस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचरनायकु अहहीं॥

यह सुन प्रेमवश उठकर राजाने श्रीरामचन्द्रजीको बांह पकड़कर बिठलाया और कहा कि हे पुत्र, सुनो। तुम्हारे लिये मुनिजन कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी चराचरके स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी॥
करइ जो करमु पाव फलु सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार ईश्वर हृदयमें विचारकर फल देते हैं। जो कर्म करता है वही फल पाता है। यही शास्त्रकी नीति है और यही सब कोई कहता है।

दो०—औरु करइ अपराध कोउ और पाव फलु भोगु।
अतिबिचित्र भगवंतगति को जग जानइ जोगु॥ ७८॥

परन्तु कोई और तो अपराध करे और उसके फलका भोग कोई दूसरा ही भोगे। भगवान्‌की यह गति बड़ी विचित्र है। संसारमें इसे जाननेयोग्य कौन है?

राय रामराखन हित लागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी॥
लखी रामरुख रहत न जाने। धरम-धुरंधर धीर सयाने॥

श्रीरामचन्द्रजीको रख लेनेके लिये राजाने छल छोड़कर बहुतसे उपाय किये। परन्तु रुख देखकर उन्होंने जान लिया कि धर्मधुरन्धर, धीर और चतुर श्रीरामचन्द्रजी नहीं रहेंगे।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अतिहित बहुत भांति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाये । सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥

तब राजाने सीताजीको हृदयसे लगा लिया और बड़े प्रेमसे अनेक प्रकारकी सीख दी। उन्होंने सीताजीको वनके दुसह दुःख कह सुनाये और सास-ससुर और पिताके सुखोंको समझाया।

सियमन रामचरन अनुरागा । घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहि सीय समुझाई । कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥

मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम होनेसे सीताजीको न तो घरका रहना सहज मालूम हुआ और न वनवास कठिन। वनके कष्टोंको विस्तारपूर्वक कह कहकर और सब लोगोंने भी सीताजीको समझाया।

सचिवनारि गुरनारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदुबानी ॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू । करहु जो कहहिं ससुर-गुरु-सासू ॥

मंत्रीकी स्त्री और चतुर गुरुआनी प्रेमके साथ मीठी वाणीसे कहने लगीं, कि तुमको तो वनवास दिया नहीं है। तुम वही करो जो सास, ससुर और गुरु कहते हैं।

दो०—सिख सीतल हित मधुर मृदु सुनि सीतहि नसोहानि ।
सरद-चंद-चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥ ७६ ॥

यह कोमल, मीठी, हितकारी और शीतल सीख सुनकर सीताजीको अच्छी नहीं लगी। वे ऐसी व्याकुल हो गयीं जैसी शरद ऋतुके चन्द्रमाकी चांदनी छूते ही चकई।

सीय सकुचबस उतरु न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेयी ॥
मुनि-पट-भूषन भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ॥

संकोचके वश होकर सीताजी कुछ उत्तर नहीं देती हैं। यह सीख सुनकर कैकयी लाल हो उठी। मुनियोंके कपड़े, गहने और बर्तन लाकर उसने आगे रख दिये और कोमल वाणीसे कहने लगी।

नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छांड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ । तुम्हहिं जान बन कहिहिं न काऊ ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, राजाको तुम प्राणोंके समान प्यारे हो। वे तुम्हारा शील और स्नेह नहीं छोड़ना चाहते, इसीलिये वे संकटमें हैं। पुण्य, सुकीर्ति और परलोक भले ही नष्ट हो जावे, पर वे तुम्हें वन जानेके लिये कभी न कहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननिसिख सुनि सुखु पावा ॥
भूपहिं बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥

ऐसा विचारकर जो अच्छा लगे वही करो। माताकी सीख सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया। परन्तु राजाको ये वचन बाणके समान चुभे। उन्होंने कहा कि ये अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते।

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू ॥
राम तुरत मुनिबेष बनाई। चले जनक जननिहिं सिरु नाई ॥

लोग व्याकुल हो रहे हैं और राजा मूर्छित। किसीको कुछ नहीं सूझता कि क्या करना चाहिये। इसी समय तुरन्त मुनियों जैसा भेष बनाकर और पिता एवं माताको शिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी चल दिये।

दो०—सजि बन-साजु-समाजु सबु बनिता-बंधु-समेत।
बंदि बिप्र-गुर-चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥ ८० ॥

स्त्री और भाई समेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वनका सब सामान सजाकर, तैयार हो, ब्राह्मणों और गुरुजनोंके चरणोंकी वंदना कर और सभीको अचेत कर चल दिये।

[वन-यात्रा]

निकसि बसिष्ठद्वार भये ठाढ़े। देखे लोग बिरहदव दाढ़े ॥
कहि प्रियबचन सकल समुझाये। बिप्रबृंद रघुबीर बोलाये ॥

राजद्वारसे निकलकर वे वशिष्ठजीके द्वारपर खड़े हुए। उन्होंने देखा कि लोग विरहरूपी दावानलमें जल रहे हैं। प्यारे वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीने सबको समझाया और फिर ब्राह्मणोंको बुलाया।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनयबस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥

गुरुसे कहकर उन्हें वर्षभरके लिये भोजन दिया और आदर, दान एवं विनतीसे उन्हें प्रसन्न किया। मांगनेवालोंको दान और मानसे संतोष दिलाया और मित्रोंको पवित्र प्रेमसे सन्तुष्ट किया।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं ॥

फिर दास-दासियोंको बुलाकर और उन्हें गुरुको सौंपकर श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर बोले कि हे स्वामी, आप इन सबकी देखभाल माता-पिताकी भाँति करना।

बारहिंबार जोरि जुगपानी । कहत राम सब सन मृदुबानी ॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी । जेहिं तें रहइ भुआल सुखारी ॥

दोनों हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी मीठी वाणीसे सबसे बारंबार कहने लगे कि मेरा सब प्रकार हित करनेवाला वही है जिससे राजा सुखी रहें ।

दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहि न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन ॥ ८१ ॥

हे अत्यन्त चतुर नगरवासियो, तुम सब वही उपाय करना जिससे सब माताएँ मेरे विरहमें दीन और दुःखी न होवें ।

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा । गुरु-पद-पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीस मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने सबको समझाया और प्रसन्न होकर गुरुके चरणकमलोंको शिर नवाया । श्रीरामचन्द्रजी गणेश, गौरी और महादेवजीको मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर चल दिये ।

रामु चलत अति भयेउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरतनादू ॥
कुसगुन लंक अवध अतिसोकू । हरष-बिषाद-बिबस सुरलोकू ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चलते ही सबको बड़ा शोक हुआ । नगरका आर्त्तनाद (हाहाकार) सुना नहीं जाता था । उसी समय लंकामें अशुभ शकुन हुए, अयोध्यामें बड़ा शोक छा गया और देवलोकमें सब आनन्द और शोक, दोनोंके ही वशमें हो गये ।

गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥

जब मूर्छा दूर हुई तब राजा चैतन्य हुए और सुमंत्रको बुलाकर ऐसा कहने लगे कि रामचन्द्र तो वनको चल दिये, पर प्राण नहीं जाते । अब ये किस सुखके लिये शरीरमें रहते हैं ?

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू । लेइ रथ संग सखा तुम्ह जाहू ॥

इससे भी अधिक कठोर और कौन व्यथा होगी जिससे दुःख पाकर प्राण शरीरको छोड़ेंगे । फिर धीरज रखकर राजा कहने लगे कि हे सखा, तुम रथ लेकर संग जाओ ।

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गये दिन्ह चारि ॥ ८२ ॥

दोनों सुन्दर कुमार सुकुमार हैं और राजा जनककी पुत्री सीताजी भी सुकुमारी हैं। इन सबको रथपर चढ़ाकर और वन दिखलाकर चार दिन बीत जानेपर लौट आना।

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेसुकिसोरी॥

यदि दोनों धीर भाई न लौटें, क्योंकि रामचन्द्र सत्य प्रतिज्ञा और दृढ़व्रती हैं, तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभु, सीताजीको लौटा दीजिये।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवँसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेसू॥

जब सीताजी वन देखकर डरें तब अवसर पाकर मेरी सीख कहना कि सास और ससुरने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री, तुम अयोध्याको लौट चलो; क्योंकि वनमें बहुत कष्ट हैं।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाइ कदंबा। फिरइ त होइ प्रानअवलंबा॥

कभी अपने पिताके घरमें और कभी ससुरालमें, जहां तुम्हारी रुचि होवे, रहना। इसी तरहसे तुम बहुतसे उपाय करना। सीता यदि लौट आवे तो प्राणोंका सहारा हो जावे।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लषनु सिय आनि देखाऊ॥

नहीं तो अंतमें मेरा मरना निश्चित है। दैव प्रतिकूल हो गया। कुछ बस नहीं चलता। ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े कि श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको लाकर दिखलाओ।

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अतिबेग बनाइ।
गयेउ जहाँ बाहर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥ ८३॥

आज्ञा पाकर सुमंतने शिर नवाया और फिर बहुत जल्दीसे रथ सजाकर वे नगरके बाहर वहां गये जहां सीता समेत दोनों भाई थे।

तब सुमंत्र नृपबचन सुनाये। करि बिनती रथु रामु चढ़ाये॥
चढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिरु नाई॥

तब सुमंत्रने राजाके वचन कह सुनाये और विनती करके श्रीरामचंद्रजीको

रथपर बिठलाया। सीताजी समेत दोनों भाई रथपर चढ़कर अपने हृदयमें अयोध्याको शिर नवाकर चल दिये।

चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥

श्रीरामचंद्रजीके चलते ही अयोध्याको अनाथ हुआ देखकर सब लोग व्याकुल हो गये और साथ हो लिये। कृपासागर श्रीरामचंद्रजी बहुत प्रकारसे समझाते हैं। समझानेपर सब लोग लौटने लगते हैं, परन्तु प्रेमके वशमें होकर फिर लौट आते हैं।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥
घोर जंतुसम पुर-नर-नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

अयोध्या बड़ी भयावनी लगती है मानों अंधेरी काल-रात्रि हो, जिसमें नगरके पुरुष और स्त्री भयंकर जन्तुओंके समान हैं जो एक दूसरेको देखकर डरते हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीतु मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुँभिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

घर स्मशानके समान हैं। कुटुम्बी मानों भूत हैं और पुत्र, हितकारी और मित्र मानों यमके दूत हैं। बागोंमें वृक्ष और लताएँ मुरझा गयीं और नदियों और तालाबोंकी ओर देखा नहीं जाता।

दो०—हय गय कोटिन्ह केलिमृगु पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥ ८४॥

हाथी, घोड़े, क्रीड़ाके लिये पाले हुए हिरन, नगरके पशु, पपीहा, मोर, कोयल, चकवा, तोता, मैना, सारस, हंस और चकोर आदि करोड़ों जीव,

रामबियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुं चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सकल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नरनारी॥

सब श्रीरामचंद्रजीके वियोगमें जहां तहां व्याकुल खड़े हुए हैं मानों वे चित्रमें लिखकर बनाये गये हों। सारा नगर बड़ा घना वन है जिसमें सब स्त्री-पुरुष असंख्य पशु-पक्षियोंके समान हैं।

बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघु-बर-बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

ईश्वरने केकयीको भीलनी बना दिया जिसने दशों दिशाओंमें दुःसह दावा-

नल प्रज्वलित कर दिया। श्रीरामचंद्रजीकी विरहरूपी अग्निको सह नहीं सके, इसलिये सब लोग व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं बिचारु कीन्ह मनमाहीं। राम लषन सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहां रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥

सबने मनमें विचार किया कि श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके बिना सुख नहीं है। जहां श्रीरामचंद्रजी हैं वहीं सब कुछ है। श्रीरामचंद्रजीके बिना अयोध्यामें कोई काम नहीं है।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुरदुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम-चरन-पंकज प्रिय जिन्हहीं। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥

ऐसी सलाहको पक्की करके सब लोग देव-दुर्लभ सुख देनेवाले घरोंको छोड़कर श्रीरामचंद्रजीके साथ चल दिये। जिनको श्रीरामचंद्रजीके चरणकमल प्यारे हैं उन्हें विषय-भोग क्या वशमें कर सकते हैं?

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८५॥

बालक और वृद्ध, सब लोग घरवार छोड़कर साथ हो लिये। पहिले दिन श्रीरामचंद्रजी तमसा नदीके किनारे जाकर ठहरे।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराई॥

श्रीरामचंद्रजीने जब प्रजाको प्रेमवश देखा तब उनके दयालु हृदयको विशेष दुःख हुआ। प्रभु श्रीरामचंद्रजी दयानिधान हैं। पराये दुःखोंका उन्हें जल्दी ही पता चल जाता है।

कहि सप्रेम मृदुबचन सुहाये। बहुबिधि राम लोग समुझाये॥
किये धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥

प्रेमके साथ सुन्दर, मीठे वचन कहकर श्रीरामचंद्रजीने लोगोंको बहुत तरहसे समझाया। बहुतसे धर्म-संबंधी उपदेश दिये, परन्तु प्रेमके वशमें होनेसे लोग लौटाये नहीं लौटते थे।

सील सनेह छाँड़ि नहिं जाई। असमंजसबस भे रघुराई॥
लोग-सोग-स्रम-बस गये सोई। कछुक देवमाया मति मोई॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता, इसलिये श्रीरामचंद्रजी बड़ी दुविधामें पड़ गये। सब लोग शोक और परिश्रमसे थके होनेके कारण सो गये और कुछ देवताओंकी मायाने भी उनकी बुद्धिको मोह लिया।

जबहिं जामजुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोजु मारि रथ हांकहु ताता। आनु उपाय बनिहि नहिं बाता॥

जब दोपहर रात बीत गयी तब श्रीरामचंद्रजीने मंत्रीसे प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात, और किसी उपायसे बात न बनेगी। रथको ऐसा हांको कि उसका कोई चिन्ह न बनने पावे।

दो०—राम लषनु सिय जान चढ़ि संभुचरन सिरु नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ॥ ८६॥

शिवजीके चरणोंमें शिर नवाकर श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी, सब रथमें चढ़े। फिर तुरंत ही मंत्रीने रथको इधर उधर उसके चिन्होंको छिपाकर हांक दिया।

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥

सवेरा होनेपर जब सब लोग जागे तब इस बातसे बड़ा कोलाहल हुआ कि श्रीरामचंद्रजी चले गये। रथके चिन्होंका कहीं पता नहीं चलता। सब राम राम कहकर चारों दिशाओंमें दौड़ने लगे।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिकसमाजू॥
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥

मानों समुद्रमें जहाज डूब जानेसे वैश्योंका बड़ा समूह व्याकुल हुआ हो। वे एक दूसरेको उपदेश देने लगे कि श्रीरामचंद्रजीने हम लोगोंको दुःखदायी जानकर छोड़ दिया।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघु-बीर-बिहीना॥
जौं पै प्रियबियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मांगे दीन्हा॥

सब लोग अपनी निन्दा और मछलियोंकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि जलके बिना मछलियां मर जाया करती हैं। वे सब कहने लगे कि श्रीरामचंद्रजीके बिना हमारा जीना धिक्कार है। परन्तु यदि दैवने प्यारे श्रीरामचंद्रजीका वियोग ही किया है तो वह मांगनेपर मृत्यु क्यों नहीं देता?

एहि बिधि करत प्रलापकलापा। आये अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधिआस सब राखहिं प्राना॥

इस प्रकार बहुत विलाप करते और दुःखसे भरे हुए वे सब अयोध्यामें आये। कठोर वियोगका वर्णन नहीं किया जा सकता। चौदह वर्षकी अवधि समाप्त हो जानेपर श्रीरामचंद्रजीके लौटनेकी आशासे सबने प्राण रख छोड़े हैं।

दो०—राम-दरस-हित नेम व्रत लगे करन नरनारि।
मनहुं कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥ ८७॥

सब स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन पानेके लिये व्रत और नियम करने लगे मानों सूर्यके बिना चकवा, चकवी और कमल दीन हो गये हों।

[शृंगवेरपुर]

सीता सचिव सहित दोउ भाई। स्रृंगवेरपुर पहुंचे जाई॥
उतरे रामु देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरख बिसेखी॥

सीताजी और मंत्री समेत दोनों भाई शृङ्गवेरपुर जाकर पहुँचे। गङ्गाजी-को देखकर श्रीरामचंद्रजी रथसे उतरे और बड़ी प्रसन्नतासे दण्डवत की।

लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
गंग सकल-मुद-मंगल-मूला। सब सुखकरनि हरनि सब सूला॥

लक्ष्मणजी, सीताजी और मंत्रीने प्रणाम किया और सब समेत श्री-रामचन्द्रजीने सुख पाया। गंगाजी सब आनन्द और मङ्गलोंकी मूल हैं। वे सब सुखोंको देनेवाली और सब दुःखोंको दूर करनेवाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा। राम बिलोकहिँ गंगतरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध-नदी-महिमा अधिकाई॥

करोड़ों कथा-प्रसंग कह कहकर श्रीरामचन्द्रजी गंगाकी तरंगोंको देखने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने मंत्री, भाई और प्रिया सीताजीको गङ्गाजीकी बड़ी महिमा कह सुनाई।

मज्जनु कीन्ह पंथस्रमु गयेऊ। सुचि जलु पियत मुदित मन भयेऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमु भारू। तेहि स्रमु यहु लौकिक ब्यवहारू॥

सबने वहां स्नान किया जिससे मार्गकी थकावट दूर हो गयी, पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिन श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करनेसे सारे श्रम दूर हो जाते हैं उन्हें श्रम (थकावट) का होना और मिटना, यह लौकिक व्यवहार ही है।

दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नरअनुहरत संसृति-सागर-सेतु॥ ८८॥

क्योंकि सूर्यकुलकी पताकारूप श्रीरामचन्द्रजी शुद्ध, सत्, चित्, आनंद-कंद परमात्मा हैं। वे मनुष्योंके समान चरित्र करते हैं, परन्तु वे वास्तवमें संसार-रूपी समुद्रको पार करनेके लिये पुलके समान हैं।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई॥
लिये फल मूल भेट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा॥

गुह निषादने जब यह संवाद सुना तब अपने प्रियजनों और कुटुम्बियों-को आनन्दित होकर बुला लिया। भेंट देनेको बहुतसे फलमूल लेकर और उन्हें पात्रोंमें भर भरकर गुह निषाद हृदयमें अत्यन्त आनंदित होकर मिलने चला।

करि दंडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अतिअनुरागे॥
सहज-सनेह-बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥

उसने दण्डवत कर भेंटको आगे रखा और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको बड़े प्रेमसे देखने लगा। श्रीरामचंद्रजीने स्वाभाविक स्नेहके वशमें हो पास बिठलाकर उससे कुशलता पूछी।

नाथ कुसल पदपंकज देखे। भयउँ भागभाजनु जन लेखे॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥

गुह निषादने कहा—हे नाथ, आपके चरणकमल देखकर सब कुशल है। मैं भाग्यशाली हुआ और मनुष्योंमें गिने जानेयोग्य हो गया। हे देव, पृथिवी, धन और महल, सब आपके हैं और मैं भी परिवार समेत आपका नीच दास हूं।

कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

कृपा कीजिये और नगरमें पधारिये। मुझे अपना दास बना लीजिये जिसमें सब लाग बड़ाई करें। श्रीरामचन्द्रजीने कहा हे चतुर मित्र,तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है, परंतु पिताजीने मुझे और ही आज्ञा दी है।

दो०—बरष चारिदस बास बन मुनि-ब्रत-बेष-अहारु।
ग्रामबास नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखभारु॥८८॥

चौदह वर्षतक बनका निवास, मुनियोंका व्रत, भेष और भोजन मुझे करना है,अतः गाँवमें जाकर बसना उचित नहीं। यह सुनकर गुहको भारी दुःख हुआ।

राम लषन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥

श्रीरामचन्द्रजी,लक्ष्मणजी और सीताजीका रूप देखकर गांवके पुरुष और स्त्री सब प्रेमके साथ कहते हैं कि हे सखी, यह कहो कि वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकोंको वनमें भेज दिया।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयनलाहु हमहिं बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥

कोई कहने लगा कि राजाने अच्छा ही किया जिससे ब्रह्माने हम लोगोंको भी नेत्रोंका लाभ दे दिया। तब निषाद राजाने अपने हृदयमें विचार किया और एक शीशमके वृक्षको निवासयोग्य सुन्दर समझा।

लेइ रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये॥

श्रीरामचन्द्रजीको ले जाकर वह स्थान दिखलाया। श्रीरामचंद्रजीने कहा कि यह सब प्रकार सुन्दर है। ग्रामवासी लोग प्रणाम करके अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्रजी सन्ध्या करनेके लिये बिदा हुए।

गुह सवाँरि साथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

गुह निषादने कुश और कोमल पत्तोंका सुन्दर कोमल बिछौना संभालकर बिछा दिया और जिन पवित्र फल मूलोंको मीठा और कोमल समझा उन्हें दोनेमें भर भरकर लाकर रख दिया।

दो०—सिय-सुमंत्र-भ्राता-सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-बंस-मनि पाय पलोटत भाइ॥ ९०॥

सीताजी, सुमंत्र और भाई लक्ष्मण समेत कंद-मूल और फल खाकर रघुवंशमें मणिके समान श्रीरामचंद्रजीने शयन किया। भाई लक्ष्मणजी पैर दबाने लगे।

उठे लषनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी॥
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सोता हुआ जानकर लक्ष्मणजी मीठी वाणीसे मंत्रीको सोनेके लिये कहकर उठे और कुछ दूरीपर धनुषवाणको सजाकर और वीरासनसे बैठकर जागने लगे।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लषन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथा सरचाप चढ़ाई॥

गुह निषादने विश्वासपात्र पहरेदारोंको बुलाकर बड़े प्रेमसे जगह जगह नियत कर दिया और कमरमें तरकस बांध धनुषपर वाण चढ़ाकर स्वयं लक्ष्मणजीके पास जाकर बैठ गया।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेमबस हृदय बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई॥

प्रेमके वशमें होनेके कारण गुह निषादके हृदयमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सोते हुए देखकर बड़ा दुःख हुआ। शरीर पुलकायमान हो गया, नेत्रोंसे जल बहने लगा और वह प्रेमके साथ लक्ष्मणजीसे यह वचन कहने लगा।

भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निजहाथ सवाँरे॥

राजाका महल स्वभावसे ही ऐसा सुन्दर है कि देवताओंके स्वामी इन्द्रका महल भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसके मणियों जड़े चौबारे ऐसे सुन्दर है मानों कामदेवने उन्हें अपने हाथसे संभाला हो।

दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंधु सुबास।
पलँग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥९१॥

जो राजमहल पवित्र, बड़ा विचित्र, सुन्दर भोग्य वस्तुओंसे भरा हुआ है और जहां फूलों एवं सुगन्धित पदार्थोंकी सुगंध भरी हुई है, जहाँ सुन्दर पलंग और मणियोंके दीपक हैं और जहां सब प्रकारकी सारी सुविधाएँ हैं।

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सियराम सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥

जहां दूधके फेनके समान कोमल, स्वच्छ और सुन्दर तरह तरहके वस्त्र, गद्दी और तकिये हैं वहां रातको सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी सोते थे और अपनी शोभासे रति और कामदेवके अभिमानको चूर किया करते थे।

तेइ सिय रामु साथरी सोये। स्रमित बसन बिनु जाहिँ न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥

वही सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी आज थके हुए इस स्थानपर सोये हुए हैं जहां कपड़ा भी नहीं है। उन्हें देखा नहीं जाता। माता, पिता, कुटुम्बी, नगरनिवासी, सखा, सुन्दर स्वभाववाले दास और दासियां।

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेससखा रघुराऊ॥

सब जिन्हें अपने प्राणोंकी भांति देखते रहते थे वही समर्थ श्रीरामचन्द्रजी पृथिवीपर सो रहे हैं। राजा जनक, जिनकी महिमा संसारमें प्रसिद्ध है, जिनके पिता हैं, इंद्रके मित्र रघुराज दशरथ जिनके ससुर हैं।

रामचंद्रु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू॥

श्रीरामचन्द्रजी जिनके पति हैं, वही सीताजी पृथिवीपर सो रही हैं! भला दैव किसके प्रतिकूल नहीं होता? सीताजी और श्रीरामचंद्रजी क्या वनके योग्य हैं? लोग सत्य कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है।

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनंदनु जानकिहिं सुखुअवसर दुखु दीन्ह॥ ९२॥

मंदबुद्धि केकयीने बड़ी भारी दुष्टता की जिसने श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको सुखके समय दुःख दिया।

भइ दिनकरकुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषादु निषादहि भारी। रामु सीय महिसयन निहारी॥

दुर्बुद्धि केकयी सूर्यवंशरूपी वृक्षके लिये कुठार हो गयी। उसने सारे संसारको दुःखी किया। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको पृथिवीपर सोते देखकर गुह निषादको बड़ा भारी दुःख हुआ।

बोले लषन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रससानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोगु सबु भ्राता॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके रससे सनी हुई यह कोमल मीठी वाणी कहने लगे कि हे भाई, सुख-दुःखका देनेवाला कोई किसीको नहीं है। अपने किये हुए कर्मोंको सब भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥

संयोग, वियोग, अच्छा और बुरा भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन, सब भ्रमके फंदे हैं। जन्म, मरण और जहांतक संसारके जाल हैं; संपत्ति, विपत्ति, कर्म और काल,

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोहमूल परमारथु नाहीं॥

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहांतक व्यवहार हैं, जिन्हें देखा, सुना और मनमें माना जाता है, उन सबका मूल मोह है परमार्थ नहीं।

दो०—सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंचु जिय जोइ॥ ९३॥

जिस प्रकार स्वप्नमें कोई राजा भिखारी और कोई कंगाल इन्द्र हो जाता है परन्तु जग जानेपर किसीको कुछ हानि-लाभ नहीं होता, उसी भांति इस संसारको मनमें समझना चाहिये।

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोहनिसा सबु सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिये और किसीको व्यर्थ ही दोष भी नहीं देना चाहिये। मोहरूपी रात्रिमें सब लोग सो रहे हैं जिन्हें अनेक प्रकारके स्वप्न दिखलायी पड़ते हैं।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंचबियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सबु बिषय बिलास बिरागा॥

इस जगत्‌रूपी रातमें परमार्थ लग्न और संसारसे विरक्त योगीजन ही जागते हैं। जीवको संसारमें तभी जगा हुआ जानना चाहिये जब सब विषयों और भोग-विलासोंसे उसे वैराग्य हो जाय।

होइ बिबेकु मोहभ्रम भागा। तब रघुनाथ-चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू। मन-क्रम-बचन रामपद नेहू॥

विवेक होनेसे जब मोह और भ्रम भाग जाता है तब श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम उत्पन्न होता है। हे सखा, बड़ा परमार्थ यही है कि मन, वाणी और कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम हो।

रामु ब्रह्म परमारथरूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल-बिकार-रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म, परमार्थ रूप, व्यापक, अदृश्य, अनादि, अनुपम, सब विकारोंसे अलग और भेदरहित हैं। वेद 'नित्य' और 'अनंत' कहकर उनका निरूपण करते हैं।

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल॥ ९४॥

भक्तों, पृथिवी, ब्राह्मणों, गो और देवताओंके हितके लिये कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यका शरीर रखकर चरित्र करते हैं जिन्हें सुनते ही संसारके जाल कट जाते हैं।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर-चरन-रत होहू॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा। जागे जगमंगल-दातारा॥

हे सखा, ऐसा समझकर मोह छोड़ दो और सीताजी और श्रीरामचन्द्र-

जीके चरणोंमें अनुरक्त हो जाओ। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंको कहते हुए सवेरा हो गया और संसारको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी जाग उठे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बटछीर मँगावा॥
अनुजसहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयनजल छाये॥

सब शौच-क्रिया पूरी कर पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया और बट वृक्षका दूध मंगवाया। फिर उन्होंने भाई लक्ष्मणसमेत शिरपर जटाएँ बनायीं जिन्हें देखकर सुमंत्रके नेत्रोंमें जल छा गया।

हृदय दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लेइ रथु जाहु रामके साथा॥

सुमंत्रके हृदयमें बड़ी पीड़ा होने लगी, मुख मलीन हो गया और वे हाथ जोड़कर अत्यंत दीन वचन कहने लगे कि हे नाथ, कोशलपति राजा दशरथने मुझे यह आज्ञा दी है कि रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ जाओ।

बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल संकोच निबेरी॥

वन दिखलाकर और गंगाजीका स्नान कराकर दोनों भाइयोंको जल्दी ही लौटा लाना, सब संशय और संकोच दूर कर लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको लौटा कर ले आना।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहिय करउँ बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥ ९५॥

राजा दशरथने ऐसी आज्ञा दी है। हे स्वामी, मैं आपकी बलैयां लूं। आप जैसा कहें, वैसा ही करूं। विनती करके सुमंत्र पैरोंमें पड़ गये और बालककी भांति रो पड़े।

तात कृपा करि कीजिय सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरमु मगु तुम्ह सब सोधा॥

हे तात, कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न होवे। श्रीरामचन्द्रजीने उठाकर मंत्रीको समझाया और कहा कि हे तात, तुमने सब धर्ममार्ग छान डाला है।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलिभूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

राजा शिवि, दधीचमुनि और राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये करोड़ों कष्ट

सहन किये। हे सुजान, इसी भांति राजा रंतिदेव और राजा बलिने अनेक संकटोंको सहकर धर्म धारण किया।

धरमु न दूसर सत्यसमाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा॥

वेद, शास्त्र और पुराण कहते हैं कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उसी धर्मको सहज ही पा लिया है उसे छोड़नेसे तीनों लोकोंमें अपयश छा जायगा।

संभावित कहुँ अपजसलाहू। मरन-कोटि-सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिये उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥

श्रेष्ठ पुरुषके लिये अपयशका मिलना करोड़ बार मृत्यु होनेके समान कठिन दुःखदायी है। हे तात, तुमसे बहुत क्या कहूं? फिर उत्तर देनेमें भी पाप लगता है।

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि॥९६॥

पिताजीके चरण पकड़कर और मेरे करोड़ प्रणाम कहकर आप हाथ जोड़कर विनती करना कि हे तात, मेरी किसी बातके लिये चिन्ता मत कीजिये;

तुम्ह पुनि पितुसम अतिहित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुखु न पाव पितु सोच हमारे॥

फिर, तुम पिताजीके समान ही मेरे अत्यंत हितकारी हो। हे तात, मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूं। तुम्हारा सब प्रकार वही कर्तव्य है जिससे पिताजी हमारे सोचमें दुःख न पावें।

सुनि रघुनाथ-सचिव-संबादू। भयेउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लषन कही कटुबानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥

श्रीरामचन्द्रजी और मंत्रीकी बातचीत सुनकर गुह निषाद अपने कुटुम्बियोंसमेत व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजीने कुछ कठोर वाक्य कहे, परन्तु बहुत अनुचित जानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें वैसा कहनेसे रोक दिया।

सकुचि राम निजसपथ देवाई। लषनसँदेसु कहिय जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥

संकोच करके श्रीरामचन्द्रजीने सुमंत्रको अपनी सौगंद दिलायी कि लक्ष्मणका संदेश जाकर मत कहना। फिर सुमंत्रने राजाका संदेश कहा कि सीताजी वनके क्लेश न सहन कर सकेंगी।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया॥
न तरु निपट अवलंबबिहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥

जिस प्रकार सीताजी अयोध्याको लौट आवें वही तुम्हें और श्रीरामचन्द्रजीको करना चाहिये, नहीं तो बिलकुल निराश्रित होकर मैं जीता न रहूँगा जैसे जलके बिना मछली।

दो०—मइकें ससुरें सकलसुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥९७॥

पिता राजा जनकके यहां और ससुरालमें सब सुख हैं। जब जहां मन माने, तब वहां सीताजी उस समयतक सुखपूर्वक रहें जबतक कि विपत्तिकाल समाप्त न हो जावे।

बिनती भूप कीन्हि जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु संदेस सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्हि सिख कोटि बिधाना॥

राजाने दीनता और प्रेमसे जिस प्रकार विनती की थी उसे कहा नहीं जा सकता। पिताजीका संदेश सुनकर दयानिधान श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको करोड़ों तरहकी सीख दी।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सबकर मिटइ खँभारू॥
सुनि पतिबचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परमसनेही॥

उन्होंने कहा कि हे सीता, यदि तुम लौट जाओ तो सासु, ससुर, गुरु और प्यारा परिवार, सबका क्षोभ मिट जाय। पतिके वचन सुनकर सीताजी कहने लगीं कि हे प्राणनाथ, हे परम स्नेही, सुनो।

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

हे प्रभु, आप दयामय और अत्यंत ज्ञानी हैं। शरीरको छोड़कर शरीरकी छाया अलग कैसे रह सकती है! सूर्यको छोड़कर प्रकाश कहां जाय? चन्द्रमाको छोड़कर चांदनी कहां जाय?

पतिहिं प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु-ससुर-सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥

पतिको प्रेममय विनती सुनाकर सीताजी मंत्रीसे यह सुन्दर वाणी कहने लगीं कि आप पिता और ससुरके समान हितकारी हैं, फिर भी मैं आपको उत्तर देती हूं, यह बड़ा अनुचित है।

दो०—आरतिबस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरज-सुत-पद-कमल-बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥६८॥

हे तात, विपत्तिके वशमें होनेसे ही आपके सामने हुई हूँ। आप बुरा न मानिये। जितने संबंध हैं, सब आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके बिना व्यर्थ हैं।

पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप-मनि-मुकुट-मिलित पदपीठा॥
सुखनिधान अस पितुगृह मोरे। पियबिहीन मन भाव न भोरे॥

मैंने पिताजीके ऐश्वर्यके सुखको देखा है जिनके चरण रखनेकी चौकीसे बड़े बड़े राजाओंके मणियों जड़े मुकुट लगते हैं। ऐसा सुखका भण्डार मेरे पिताका घर पतिके विना मेरे मनको भूलकर भी नहीं अच्छा लगता।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरधसिंहासन आसन देई॥

मेरे ससुर चक्रवर्ती कोशलराज हैं जिनका प्रताप चौदह लोकोंमें प्रकट है और जिन्हें इन्द्र आगे आकर लेते हैं और बैठनेके लिये आधा सिंहासन देते हैं।

ससुरु एतादृस अवधनिवासू। प्रिय परिवारु मातुसम सासू॥
बिनु रघुपति-पद-पदुम-परागा। मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा॥

ऐसे ससुर, अयोध्याका निवास, प्यारा परिवार और माताके समान सासु, कोई भी श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी रजके बिना मुझे स्वप्नमें भी सुख देनेवाला नहीं प्रतीत होता!

अगम पंथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रान-पति-संगा॥

अगम्य मार्ग, वन, पृथिवी, पर्वत, हाथी, सिंह, तालाब और असंख्य नदियां, कोल, भील, हिरन, पक्षी, सब प्राणनाथके साथमें मुझे सुखदायी हैं।

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोरि सोचु जनि करिय कछु मैं बन सुखी सुभायँ ॥६६॥

सासु और ससुरसे मेरी ओरसे पैर पकड़ विनती करना कि वे मेरा कुछ सोच न करें। मैं स्वभावसे ही वनमें सुखी हूं।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मगश्रमु भ्रमु दुख मन मोरे। मोहि लगि सोचु करिय जनि भोरे॥

मेरे साथ प्राणपति श्रीरामचन्द्रजी और प्यारे देवर लक्ष्मणजी हैं। वे वीरोंमें धुरंधर और धनुष एवं तरकश लिये हुए हैं। मुझे मार्गकी थकावट

नहीं है और न मेरे मनमें संदेह या दुःख है। मेरे लिये वे भूलकर भी सोच न करें।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयेउ बिकल जनु फनि मनिहानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

सीताजीकी शीतल वाणी सुनकर सुमंत्र व्याकुल हो गये मानों किसी सर्पकी मणि चली गयी हो। उन्हें नेत्रोंसे दिखायी और कानोंसे सुनायी न पड़ने लगा। वे कुछ कह नहीं सकते, अतः बड़े व्याकुल हुए।

राम प्रबोधु कीन्ह बहुभांती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथहित कीन्हे। उचित उतरु रघुनंदन दीन्हे॥

श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि बहुत प्रकारसे समझाया तथापि सुमंत्रकी छाती शीतल नहीं होती। यद्यपि सुमंत्रने प्रेमके साथ अनेक यत्न किये तथापि श्रीरामचन्द्रजीने सब बातोंका उचित उत्तर दे दिया।

मेटि जाइ नहिं रामरजाई। कठिन करमगति कछु न बसाई॥
राम-लषन-सिय-पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जिमि मूर गवाँई॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा टाली नहीं जाती। कर्मकी गति कठिन है उससे कुछ वश नहीं चलता। श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके चरणोंको सिर नवाकर सुमंत्र लौटे जैसे कोई वैश्य अपनी पूंजी गँवाकर लौटा हो।

दो०—रथ हाँकेउ हय रामतन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥१००॥

सुमंत्रने जब रथ हाँका तब घोड़े श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख देखकर हिंनहिनाने लगे। यह देखकर गुह निषाद दुःखी होकर सिर धुनने और पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरितीर आप तब आये॥

जिसके वियोगमें पशु ऐसे व्याकुल हों, उसके बिना प्रजा, माता और पिता कैसे जीते हैं? श्रीरामचन्द्रजीने सुमंत्रको जबर्दस्ती लौटा दिया तब फिर आप गङ्गाजीके किनारे आये।

[केवटकी भक्ति]

माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहुँ सबु कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥

श्रीरामचन्द्रजीने नाव मांगी, पर केवट उसे नहीं लाया और कहने लगा कि आपका भेद मैंने जान लिया। आपके चरणकमलोंकी रजको सब कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई ओषधि है।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥

उसे छूते ही चट्टान सुन्दर स्त्री बन गयी। काठ पत्थरसे कड़ा नहीं होता। मेरी नाव भी मुनिकी स्त्री हो जायगी। मेरी नाव उड़ जानेसे बीच रास्तेमें डाका पड़ जायगा।

एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पदपदुम पखारन कहहू॥

इसीसे सब परिवार पालता हूं। और कोई धंधा मैं नहीं जानता। हे प्रभु, यदि आप अवश्य ही पार जाना चाहते हों तो मुझे चरणकमल धोनेकी आज्ञा दीजिये।

छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहि राम राउर आन दसरथसपथ सब साँची कहउँ॥
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहउँ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, मुझे आपकी सौगंद है और राजा दशरथकी सौगंद है; मैं सब सत्य कहता हूं कि मैं चरणकमल धोकर आप सब लोगोंको नावपर चढ़ाऊंगा। हे नाथ, मैं उतराई नहीं चाहता हूं। लक्ष्मणजी चाहे तीर मार दें, पर जबतक मैं पैर न धोलूंगा तबतक—तुलसीदासजी कहते हैं—हे नाथ, हे कृपालु, मैं पार न उतारूंगा।

सो०—सुनि केवट के बयन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन चितइ जानकी-लषन-तन॥ १०१॥

केवटके प्रेमसे सने हुए अटपटे वचन सुनकर दयानिधान श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर मुस्कुराये।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जलु पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराकर बोले कि तू वही कर जिससे तेरी नाव न जावे। शीघ्र जल ले आ और पैर धो। देरी हो रही है, पार उतार।

जासु नामु सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुँतें थोरा॥

जिनका नाम एक बार स्मरण करते ही मनुष्य अपार संसार-समुद्र-पार उतर जाते हैं और जिन्होंने संसारको अपने तीन चरणोंसे भी छोटा कर दिया वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी केवटकी विनती कर रहे हैं।

पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुबचन मोह मति करषी॥
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

चरणोंके नख देखकर गंगाजी प्रसन्न हुईं और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर मोहसे उनकी बुद्धि खिंच गयी। जब केवटने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पायी तब कठौता भरकर पानी ले आया।

अतिआनंद उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

अत्यन्त आनन्दसे उमंगकर केवट प्रेममें मग्न हो गया और श्रीरामचन्द्र-जीके चरणकमल धोने लगा। फूल बरसा कर सब देवता उसकी प्रशंसा करने लगे कि इसके समान पुण्यवान कोई नहीं है।

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लेइ पार॥१०२॥

चरणोंको धोकर केवटने परिवारसमेत जलपान किया और अपने पितरों-को भवसागरके पार उतारकर फिर वह प्रसन्नतापूर्वक प्रभु श्रीरामचंद्रजीको गङ्गाजीके पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लषनु समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥

सीताजी, श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी गुह निषादसमेत पार उतरकर गङ्गाजीकी रेतीमें खड़े हुए। केवटने भी नावसे उतरकर दण्डवत् की। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको यह संकोच हुआ कि इसे पार उतारनेके लिये कुछ नहीं दिया।

पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मनु मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई॥

पतिके मनकी बात जाननेवाली सीताजीने प्रसन्न मनसे अपनी मणिसे जड़ी हुई मून्दरी उतार दी। उसे लेकर कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि यह उतराई लो। यह सुनते ही व्याकुल होकर केवटने चरण पकड़ लिये।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥

हे नाथ, मेरे दोष, दुःख और दरिद्रताकी अग्नि शान्त हो गयी। आज मैंने क्या नहीं पाया? बहुत समय मैंने मजूरी की परन्तु आज ब्रह्माने भली-भाँतिसे पूरी मजूरी दी है।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा॥

हे नाथ, हे दीनदयालु, आपकी दयासे अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। लौटते समय आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं शिरपर रखकर ले लूंगा।

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमलु बरु देइ॥ १०२॥

श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजीने बहुत प्रयत्न किया परन्तु जब केवटने कुछ भी नहीं लिया तब दयानिधान श्रीरामचन्द्रजीने उसे अपनी निर्मल भक्तिका वरदान देकर बिदा किया।

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायेउ माथा॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥

तब रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया और पार्थिव पूजनकर मस्तक नवाया। सीताजीने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे कहा कि हे माता, मेरा मनोरथ पूरा करना।

पति-देवर-सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सियबिनय प्रेम-रस-सानी। भइ तब बिमल बारि बरबानी॥

जिससे फिर पति और देवरके साथ सकुशल लौट आकर तुम्हारी पूजा करूं। तब प्रेमके रससे सनी हुई सीताजीकी विनती सुनकर निर्मल जलसे श्रेष्ठ वाणी हुई।

सुनु रघुबीरप्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥

हे श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी सीताजी, सुनो, तुम्हारा प्रभाव संसारमें किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे देखते ही लोक लोकपाल हो जाते हैं और सब सिद्धियां हाथ जोड़े हुए तुम्हारी सेवा करती हैं।

तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥

तुमने जो मुझे बड़ी विनती सुनायी, यह बड़ी कृपा की और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवि, मैं अपनी वाणीके सफल होनेके लिये तुम्हें आशिष दूँगी।

दो०—प्राननाथ देवरसहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजस रहिहि जग छाइ ॥१०४॥

प्राणपति और देवरके साथ कुशलपूर्वक अयोध्याको लौटोगी। तुम्हारे मनकी सब कामनाएँ पूरी होंगी और संसारमें तुम्हारा सुयश छा जायगा।

गंगबचन सुनि मंगलमूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥

गङ्गाजीके मङ्गल-मूल वचन सुनकर और उन्हें अनुकूल जानकर सीताजी प्रसन्न हुईं। तब प्रभुने गुह निषादसे कहा कि घर जाओ। यह सुनते ही गुह निषादका मुख सूख गया और हृदयमें पीड़ा होने लगी।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरनसेवकाई ॥

गुह निषाद हाथ जोड़कर यह दीन वचन कहने लगा कि हे रघुकुलमें मणिके समान श्रीरामचन्द्रजी, मेरी विनती सुनिये। हे नाथ, आपके साथ रहकर और आपको मार्ग दिखलाकर चार दिन आपके चरणोंकी सेवा करूंगा।

जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देबि रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई ॥

हे रघुराज, आप जिस वनमें जाकर रहेंगे उसमें मैं सुन्दर पर्णकुटी बना दूंगा। फिर, मुझे आपकी सौगंद है, हे श्रीरामचन्द्रजी, आप जैसी मुझे आज्ञा देंगे, मैं वही करूंगा।

सहज सनेहु राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हें। करि परितोषु बिदा तब कीन्हें ॥

गुह निषादका स्वाभाविक स्नेह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने उसे साथमें ले लिया। इससे गुह निषादके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर गुह निषादने अपनी जातिके सब लोगोंको बुला लिया और उन्हें समझाकर बिदा किया।

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०५॥

तब, गणेशजी और शिवजीको स्मरण कर और गङ्गाजीको मस्तक नवाकर

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने सखा गुह निषाद, भाई लक्ष्मण और सीताजीसमेत वनको गमन किया।

[प्रयाग]

तेहि दिन भयेउ बिटप तर बासू। लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥

उस दिन वृक्षके नीचे वास हुआ। लक्ष्मणजी और गुह निषादने सब आराम कर दिया। सवेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने प्रातःकृत्य किया और फिर जाकर तीर्थराज प्रयागको देखा।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधवसरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥

इस तीर्थराजका मंत्री सत्य है, प्यारी स्त्री श्रद्धा है और माधवजी जैसे हितकारी मित्र हैं। इसका भण्डार चार पदार्थों से भरा हुआ है और पुण्य-स्थान ही इसका अत्यन्त सुन्दर देश है।

छेत्रु अगमु गढ़ु गाढ़ु सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बरबीरा। कलुष-अनीक-दलन रनधीरा॥

इसका फैलाव अगम्य, दृढ़ और सुन्दर किला है जिसे विपक्षी स्वप्नमें भी नहीं पा सकते। समस्त तीर्थरूपी सुन्दर वीरोंकी सेना है जो पापोंकी सेनाको नष्ट करनेमें रणधीर है।

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अषयबटु मुनिमनु मोहा॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

त्रिवेणीका संगम इसका सुन्दर सिंहासन शोभित है। मुनियोंके मनको मोहित कर लेनेवाला अक्षयवट इसका छत्र है। गङ्गा और यमुनाकी तरंगें इसका चँवर हैं और इसे देखते ही दुःख और दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं।

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
बंदी बेद-पुरान-गन कहहिं बिमल गुनग्राम॥ १०६॥

पुण्यवान, महात्मा और पवित्र लोग इसकी सेवा करते हैं और उनकी सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। वेद और पुराणोंके समूह ही इसके वंदीजन हैं जो इसके शुद्ध गुणसमूहोंका बखान करते हैं।

को कहि सकइ प्रयागप्रभाऊ। कलुष-पुंज-कुंजर-मृग-राऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुबर सुखपावा॥

तीर्थराज प्रयागका प्रभाव कौन कह सकता है जो पापोंके समूहरूपी

हाथीके लिये सिंहके समान है। ऐसे सुन्दर तीर्थराजको देखकर सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने भी सुख पाया।

कहि सिय लषनहि सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथ-राज-बड़ाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥

उन्होंने अपने श्रीमुखसे तीर्थराजकी बड़ाई कहकर सीताजी, लक्ष्मणजी और गुह निषादको सुनायी। प्रणाम करके वन और बगीचोंको देखते हुए वे बड़े प्रेमसे तीथराजका माहात्म्य कहने लगे।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिवसेवा। पूजि जथाबिधि तीरथदेवा ॥

इस प्रकार आकर उन्होंने त्रिवेणीको देखा जो स्मरण करते ही सभी सुन्दर मङ्गलोंको देनेवाली है। प्रसन्नतापूर्वक स्नान कर उन्होंने शिवजीकी आराधना की और विधिपूर्वक तीर्थ-देवोंका पूजन किया।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये ॥
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंदरासि जनु पाई ॥

फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाज ऋषिके पास आये। दण्डवत् करते ही उन्हें मुनिने हृदयसे लगा लिया। मुनिके मनको जो आनन्द हुआ उसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता मानों उन्होंने ब्रह्मानंदकी राशि पा ली हो।

दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचनगोचर सुकृतफल मनहुँ किये बिधि आनि ॥ १०७॥

यह जानकर कि मानों ब्रह्माने पुण्योंका फल आंखोंके सामने लाकर दिखला दिया, मुनीश्वरके हृदयमें अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने आशीर्वाद दिया।

कुसलप्रस्न करि आसनु दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमी के ॥

कुशलप्रश्न करनेके बाद मुनीश्वरने आसन दिया और पूजा कर उन्हें प्रेमसे सन्तुष्ट कर दिया। मुनिने अच्छे अच्छे कंद, मूल, फल और अंकुर लाकर दिये मानों वे सब अमृतके हों।

सीय-लषन-जन-सहित सुहाये। अतिरुचि राम मूलफल खाये ॥
भये बिगतस्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदुबचन उचारे ॥

सीताजी, लक्ष्मणजी और गुह निषादसमेत श्रीरामचन्द्रजीने सुन्दर कन्द-

मूलोंको बड़ी रुचिसे खाया। श्रीरामचन्द्रजीकी थकावट दूर हो गयी और वे सुखी हुए। फिर भरद्वाज मुनि यह मीठे वचन कहने लगे।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जपु जोग बिरागू॥
सुफल सकल-सुभ-साधन-साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥

मेरा तप, तीर्थवास और त्याग आज सफल हुआ; मेरा जप, योग और वैराग्य भी आज ही सफल हुआ। हे राम, आज आपके दर्शन करते ही सारी शुभ साधनाओंकी सामग्री सफल हो गयी।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज-पद-सरसिज सहज सनेहू॥

लाभकी सीमा इससे बढ़कर नहीं और न सुखकी सीमा ही इसके सिवाय कोई दूसरी है। आपके दर्शनोंसे सब आशाएँ पूरी हो गयीं। अब कृपा कर यह वर दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें स्वाभाविक प्रेम हो।

दो०—करम बचन मनु छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं कियें कोटि उपचार॥१०८॥

मन, वाणी और कर्मसे छल छोड़कर जबतक आपका भक्त न हो तबतक करोड़ों उपाय करनेपर भी स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता।

सुनि मुनिबचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भांति कहि सबहिं सुनावा॥

भाव, भक्ति और आनन्दसे भरे हुए मुनिके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र-जीको संकोच हुआ, फिर श्रीरामचन्द्रजीने मुनिका सुन्दर सुयश करोड़ों तरहसे कहकर सबको सुनाया।

सो बड़ सो सब-गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥

हे मुनीश्वर, जिसे आप आदर दें वही बड़ा है और वही सब गुणोंका भण्डार है। मुनीश्वर और श्रीरामचन्द्रजी परस्पर नम्रता दिखलाते थे और वह सुख अनुभव करते थे जो मुँहसे वर्णन नहीं किया जा सकता।

यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाजआस्रम सब आये। देखन दसरथसुअन सुहाये॥

यह खबर पाकर प्रयागके रहनेवाले ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासीन, सब राजा दशरथके सुन्दर पुत्रोंको देखनेके लिये भरद्वाजके आश्रममें आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परमसुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया। वे सब अपने नेत्रोंको सफल कर प्रसन्न हुए और अत्यन्त सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। फिर वे श्रीरामचन्द्रजीकी शोभाकी प्रशंसा करते हुए लौट चले।

दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि प्रात प्रयाग नहाय।
चले सहित सिय लषन जन मुदित मुनिहिं सिरु नाय॥१०६॥

श्रीरामचन्द्रजीने रातको वहीं विश्राम किया। सवेरे प्रयाग-स्नान कर और मुनिको शिर नवाकर वे लक्ष्मणजी, सीताजी और गुह निषादसमेत प्रसन्नतापूर्वक चले।

राम सप्रेमु कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मगु जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकलमगु तुम्ह कहँ अहहीं॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमके साथ मुनिसे कहा कि हे नाथ, यह बतलाइये कि हम किस मार्ग होकर जावें। मनमें मुस्कुराकर मुनि श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि आपको सब मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिँ मगु दीख हमारा॥

साथ जानेके लिये मुनिने शिष्योंको बुलाया। सुनते ही मनमें आनन्दित होकर लगभग पचास शिष्य आ गये। सब शिष्योंको श्रीरामचन्द्रजीपर अपार प्रेम था। वे सब कहने लगे कि हमारा देखा हुआ मार्ग है।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥

फिर मुनिने ऐसे चार ब्रह्मचारियोंको साथमें कर दिया जिन्होंने बहुत जन्मोंमें सब पुण्य किये थे। प्रणाम करके और ऋषिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें आनन्दित होकर बिदा हुए।

ग्राम निकट निकसहिँ जब जाई। देखहिँ दरसु नारिनर धाई॥
होहिं सनाथ जनमफल पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

वे सब जब जाकर किसी गांवके पाससे निकलते हैं तब स्त्रियां और पुरुष दौड़कर आते और दर्शन करते हैं। दर्शन कर अपने जन्मका फल पाकर वे स्त्री-पुरुष कृतकृत्य हो जाते हैं और कुछ दूरतक सङ्ग जाकर दुःखित मनसे लौटते हैं।

दो०—बिदा किये बटु बिनय करि फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाये जमुनजल जो सरीरसम स्याम ॥११०॥

विनती करके श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्मचारियोंको बिदा किया जो अपने मनके इच्छानुसार फल पाकर लौटे। फिर श्रीरामचंद्रजीने पार जाकर यमुनाजीके जलमें स्नान किया जो उनके शरीरके समान ही श्याम रङ्गका है।

सुनत तीरबासी नरनारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
लषन—राम—सिय—सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥

श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी बात सुनकर नगरवासी पुरुष और स्त्रियां, सब अपना अपना काम भुलाकर दौड़े। श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीकी सुन्दरता देखकर वे अपने भाग्यकी बड़ाई करने लगे।

अति लालसा सबहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महँ बयबृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥

सभीके मनमें बड़ी लालसा थी, पर नाम और रहनेका गांव पूछते उन्हें बड़ा संकोच होता था। उनमें जो लोग वयोवृद्ध और चतुर थे उन्होंने युक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीको पहिचान लिया।

सकलकथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहि चले पितुआयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥

उन्होंने सबको सारी कथा कह सुनायी कि पिताकी आज्ञा पाकर ये वनमें आये हैं। सुनकर शोकसे सब पछताने लगे कि राजा और रानीने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसरु एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलषितगति बेषु बिरागी। मन-क्रम-बचन राम अनुरागी॥

उसी अवसरपर वहां एक तपस्वी आया, जो तेजस्वी, छोटी अवस्थावाला और सुन्दर था। कविजन उसकी गति नहीं जान सकते। वैरागीके समान उसका भेष था और मन, वाणी और कर्मसे वह श्रीरामचंद्रजीका भक्त था।

दो०—सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ॥१११॥

अपने इष्टदेवको पहिचानकर उसके नेत्रोंमें जल छा गया, शरीर पुलकायमान हो गया और वह दण्डके समान पृथिवीपर पड़ रहा। उसकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परमरंकु जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरे तनु कह सबु कोऊ॥

श्रीरामचन्द्रजीने पुलकित होकर बड़े प्रेमके साथ उसे हृदयसे लगाया मानों किसी महादरिद्रने पारस पा लिया हो। सब लोग यह कहने लगे कि मानों प्रेम और परमार्थ, दोनों शरीर धारण किये हुए मिल रहे हैं।

बहुरि लषन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥

फिर वह लक्ष्मणजीके पैरोंमें पड़ गया। लक्ष्मणजीने प्रेमसे उमंगमें आकर उसे उठा लिया। फिर सीताजीके चरणोंकी धूलको उसने शिरपर रखा। सीता माताने उसे पुत्र समझकर आशिष दी।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि रामसनेही॥
पियत नयनपुट रूपु पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

गुह निषादने उसे दण्डवत् की। वह भी श्रीरामचन्द्रजीका भक्त जानकर गुह निषादसे आनंदित होकर मिला। नेत्ररूपी दोनेसे रूपरूपी अमृतको पीते पीते वह ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे भूखा बढ़िया भोजन खाकर प्रसन्न हो।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥
राम–लषन–सिय–रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नरनारी॥

स्त्रियां कहने लगीं कि हे सखी, यह कहो, वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकोंको वनमें भेज दिया। रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीका रूप देखकर स्त्री और पुरुष, सब प्रेमसे व्याकुल हो जाते हैं।

दो०—तब रघुबीर अनेकबिधि सखहि सिखावनु दीन्ह।
रामरजायसु सीस धरि भवन गवँनु तेइँ कीन्ह॥११२॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे सखा गुह निषादको सीख दी। गुह निषादने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर अपने घरके लिये प्रस्थान किया।

[प्रयागसे प्रस्थान]

पुनि सिय राम लषन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कै करत बड़ाई॥

फिर सीताजी, श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर यमुनाजीको फिर प्रणाम किया। सूर्य-पुत्री यमुनाजीकी बड़ाई करते हुए दोनों भाई सीताजीसमेत आनंदित होकर चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राजलषन सब अंग तुम्हारे । देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥

मार्गमें जाते हुए उन्हें अनेक यात्री मिलते थे जो दोनों भाइयोंको देखकर प्रेमके साथ कहते थे कि आपके शरीरमें राजाओंके सब लक्षण हैं, उन्हें देखकर हमारे हृदयमें बड़ा सोच होता है ।

मारग चलहु पयादेहिं पायँ । ज्योतिष झूठ हमारेहि भायँ ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥

आप पांव-पैदल ही मार्ग चल रहे हैं । हमारी समझसे ज्योतिष मिथ्या है । दुर्गम्य मार्ग और पर्वत हैं, भारी वन है, उसपर भी साथमें सुकुमार स्त्री है ।

करि केहरि बन जाइ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहां लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहिं सिरु नाई ॥

वनमें हाथी और सिंह हैं जो देखे नहीं जाते । यदि आज्ञा हो तो संगमें हम चलें । जहांतक आप जायँगे वहांतक पहुँचाकर हम आपको फिर प्रणाम कर फिर लौट आवेंगे ।

दो०—एहिं बिधि पूछहिं प्रेम बस पुलकगात जलु नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं कहि बिनीत मृदु बैन ॥११२॥

इस प्रकार प्रेमवश पुलकित शरीर होकर नेत्रोंमें जल भरे हुए सब पूछते हैं और कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी मीठे और विनीत वचन कहकर उन सबको लौटा देते हैं ।

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं । तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं ॥
केहिं सुकृती केहि घरीं बसाये । धन्य पुन्यमय परम सुहाये ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मार्गमें जो नगर और गांव बसते हैं उनकी प्रशंसा नागलोक और देवलोक भी करते हैं कि उन्हें किस पुण्यात्माने किस घड़ीमें बसाया जो ये अत्यन्त सुन्दर, पुण्यरूप और धन्य हैं ।

जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी । तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी ॥

जहां जहां चलकर श्रीरामचन्द्रजीके चरण जाते हैं, उन स्थानोंके समान अमरावती भी नहीं है । मार्गके पासमें बसनेवाले लोग बड़े पुण्यवान हैं । स्वर्गके निवासी देवता भी उनकी बड़ाई करते हैं ।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव-सर-सरित सराहहिं॥

क्योंकि सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत घनश्याम श्रीरामचंद्रजीको वे नेत्र भरकर देखते हैं। जिन सरोवरों और नदियोंमें श्रीरामचंद्रजी स्नान करते हैं उनकी प्रशंसा देवताओंके सरोवर और नदियां भी करती हैं।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम-परागा। मानति भूमि भूरि निजभागा॥

जिस पेड़के नीचे प्रभु श्रीरामचंद्रजी बैठते हैं उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष भी करते हैं। श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंकी रजका स्पर्श कर पृथिवी अपना बड़ा भाग्य मानती है।

दो०—छाहँ करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग रामु चले मगु जाहिं॥११७॥

श्रीरामचंद्रजीके ऊपर मार्गमें बादल छाया करते और देवता फूल बरसाते तथा प्रशंसा करते हैं। पर्वत, वन, पक्षी और हिरनोंको देखते हुए श्रीरामचंद्रजी मार्गपर चले जा रहे हैं।

सीता-लषन-सहित रघुराई। गावँ निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी॥

सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचन्द्रजी जब किसी गांवके पास होकर निकलते हैं तब सुनते ही बालक, बूढ़े, पुरुष, स्त्री, सब अपना गृहकार्य भूलकर तुरन्त चल देते हैं।

राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥

वे श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीका रूप देखकर अपने नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं। दोनों वीरोंको देखकर सब मग्न हो गये, नेत्रोंमें जल आ गया और उनके शरीर पुलकायमान हो गये।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर-मनि-ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥

उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती मानों गरीबोंने देव-मणियोंके ढेरको पा लिया हो। एकको एक बुलाता और वह सीख देता है कि इस क्षणमें नेत्रोंका लाभ ले लो।

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयनमग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर कोई कोई ऐसे प्रेममें भर गये कि वे उन्हें देखते देखते साथ ही लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्रोंके द्वारसे श्रीरामचन्द्रजीकी छविको हृदयमें लाकर तन, मन और सुन्दर वचन, सबकी ओरसे शिथिल हो जाते हैं।

दो०—एक देखि बटछाहँ भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥११५॥

कोई कोई लोग बरगदके पेड़की भली छाया देखकर वहां मुलायम तिनके और पत्ते बिछाकर श्रीरामचंद्रजीसे कहते हैं कि एक क्षण ठहरकर थकावट दूर कीजिये। आगे अभी जाइयेगा कि सबेरे?

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी॥

कोई कोई कलश भरकर पानी ले आते हैं और मीठी वाणीसे कहते हैं कि हे नाथ, इसे पीजिये। अत्यंत सुशील, कृपालु श्रीरामचंद्रजीने प्यारे वचन सुनकर उनकी अत्यन्त प्रीति देखी।

जानी स्रमित सीय मनमाहीं। घरिक बिलम्बु कीन्ह बटछाहीं॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूपअनूप नयन मनु लोभा॥

उन्होंने अपने मनमें सीताजीको भी थका हुआ समझा, अतः बरगदकी छायामें बैठकर एक घड़ी विश्राम किया। स्त्री और पुरुष, सब प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा देखने लगे। अनुपम रूपको देखकर उनके नेत्र और मन लुभा गये।

एकटक सब सोहहिं चहुँओरा। रामचंद्र मुख-चंद्र-चकोरा॥
तरुन-तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मनु मोहा॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखरूपी चंद्रमाके चारों ओर बैठे एकटक देखते हुए वे सब चकोरकी भांति शोभा पा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका नये तमाल पत्रके रङ्गका सांवला शरीर शोभायमान हो रहा है जिसे देखकर करोड़ों कामदेवोंके मन भी मोहित हो जाते हैं।

दामिनिबरन लखनु सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जीके॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं करकमलनि धनुतीरा॥

बिजलीके रङ्गवाले लक्ष्मणजी बड़े सुन्दर हैं, नखसे लेकर चोटीतक मनोहर

हैं और जीको बहुत प्यारे लगते हैं। दोनों मुनियोंके वस्त्र धारण किये हुए हैं, कमरमें तरकस कसे हुए हैं और दोनोंके कमलके समान हाथोंमें धनुषबाण शोभित हो रहे हैं।

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन बर लसत स्वेद-कन-जाल ॥११६॥

दोनोंके शिरोंपर जटाओंके सुन्दर मुकुट हैं, हृदय (छाती), भुजा और नेत्र विशाल हैं। शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाके समान श्रेष्ठ मुखपर पसीनेकी बहुतसी बून्दें बड़ी शोभा पा रही हैं।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम-लषन—सिय—सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥

मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसकी शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीकी सुन्दरता-की ओर सब लोग मन, बुद्धि और चित्त लगाकर देखने लगे।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीयसमीप ग्रामतिय जाहीं। पूछत अतिसनेह सकुचाहीं॥

प्रेमके प्यासे स्त्री और पुरुष, सब थककर ऐसे खड़े हो गये मानों दीपक-को देखकर हिरनी और हिरन खड़े हो गये हों। गाँवकी स्त्रियां सीताजीके पास जाती हैं, पर अत्यंत स्नेह होनेसे पूछते हुए उन्हें संकोच होता है।

बार बार सब लागहिं पाये। कहहिं बचन मृदुसरस सुभाये॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥

बार बार सब पैरों पड़ती और स्वभावसे मीठे और सरल वचन कहती हैं कि हे राजकुमारी, हम विनती कर रही हैं। स्त्री-स्वभाव होनेसे पूछते हुए कुछ डर लगता है।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥

हे स्वामिनि, हमारी ढिठाईको क्षमा करना। हमें गँवारिन जानकर बुरा मत मानना। दोनों राजकुमार स्वभावसे ही लावण्यमय हैं। मरकतमणि और सोनेने इन्हींसे दमक पायी है।

दो०—स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुखमा अयन।
सारद-सर्बरी-नाथ-मुखु सरदसरोरुह नयन ॥११७॥

दोनों राजकुमार साँवले और गोरे हैं, सुन्दर किशोर अवस्था है, सुन्दरता

और शोभाके स्थान हैं, शरदऋतुके पूर्णचंद्रमाके समान मुखवाले हैं और शरदऋतुके कमलके समान उनके नेत्र हैं।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुलबानी। सकुचि सीय मन महु मुसुकानी॥

हे सुन्दर मुखवाली, यह कहो कि करोड़ों कामदेवोंको भी लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं। यह प्रेमभरी सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सकुचाकर मनमें मुस्कुरायीं।

तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नयनी। बोली मधुरबचन पिकबयनी॥

उन्हें देखकर सीताजी पृथिवीकी ओर देखने लगीं। सुन्दर रङ्गवाली सीताजी श्रीरामचंद्रजी और स्त्रियों, दोनोंके ही संकोचसे सकुचाने लगीं। फिर हिरनके बच्चेके समान नेत्र और कोयलके समान बोलीवाली सीताजी सकुचाकर प्रेमके साथ ये मीठे वचन कहने लगीं।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषनु लघुदेवर मोरे॥
बहुरि बदनुबिधु अंचल ढांकी। पियतन चितइ भौंह करि बांकी॥

सुन्दर गोरे शरीर और सहज स्वभाववाले ये मेरे छोटे देवर हैं जिनका नाम लक्ष्मण है। फिर अपना चंद्रमुख अंचलसे ढककर और अपने प्यारे श्रीरामचंद्रजीकी ओर देखकर टेढ़ी भौंह करके—

खंजनमंजुतिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी॥

खंजन पक्षीके समान सुन्दर बांके नेत्रोंके इशारेसे सीताजीने उन स्त्रियोंसे कहा कि वे मेरे पति हैं। गांवकी सब स्त्रियां यह सुनकर प्रसन्न हो गयीं मानों कंगालोंने राज-सामग्रीके ढेरको लूट लिया हो।

दो०—अतिसप्रेम सियपाय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहिसीस॥११८॥

बड़े प्रेमके साथ सीताजीके पैरों पड़कर वे सब अनेक प्रकारसे आशिष देने लगीं कि जबतक शेषनागके शिरपर पृथिवी है तबतक तुम सदा सौभाग्यवती बनी रहो।

पारबतीसम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिय बहोरी॥

सदा अपने पतिको पार्वतीके समान प्यारी बनी रहो। हे देवि, हमपरसे

दया दूर मत करना। हम सब हाथ जोड़कर बार बार यह विनती करती हैं कि यदि इसी मार्गसे फिर लौटना हो तो—

दरसनु देव जानि निजु दासी। लखी सीय सब प्रेमपियासी॥
मधुरबचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी॥

अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजीने देखा कि वे सब प्रेमकी प्यासी हैं अतः उन्होंने उन सबको मीठे वचन कह कहकर संतुष्ट किया मानों चांदनीने कुमुदिनीको खिला दिया हो।

तबहिं लषन रघुबररुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी॥
सुनत नारिनर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥

तब श्रीरामचंद्रजीका रुख जानकर लक्ष्मणजीने मीठी वाणीसे लोगोंसे मार्ग पूछा। सुनते ही सब स्त्री-पुरुष दुःखी हो गये, उनके शरीर पुलकायमान हो गये और नेत्रोंमें आंसू आ गये।

मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥

उनका आनंद जाता रहा, उनके मन मलीन हो गये; ब्रह्माने जो सम्पत्ति दी थी उसे मानों वह छीन रहा हो। कर्मकी गति समझकर सबने धीरज रखा और विचारकर उन्होंने सुगम मार्ग बतला दिया।

दो०—लषन-जानकी-सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रियबचन कहि लिये लाइ मन साथ॥११९॥

तब लक्ष्मण और जानकीजी समेत श्रीरामचंद्रजीने प्रस्थान किया और उन सबको प्यारे वचन कहकर लौटाया, पर उनके मन अपने साथ ही ले लिये।

फिरत नारिनर अति पछिताहीं। दैवहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधिकरतब उलटे सब अहहीं॥

लौटते हुए स्त्रियों और पुरुषोंको बड़ा पछतावा होता है और वे मनमें दैवको दोष देते हैं। शोकके साथ वे सब परस्पर कहते हैं कि ब्रह्माके सब काम उलटे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूखु कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठये बन राजकुमारा॥

विधाता बिलकुल निरंकुश, निष्ठुर और निडर है। जिस ब्रह्माने चंद्रमाको रोगी और कलङ्की, कल्पवृक्षको पेड़ और समुद्रको खारी बनाया उसीने इन राजकुमारोंको वनमें भेजा है।

जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना । रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥

यदि विधाताने इन्हें वनवास दिया है तो भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये। जब ये जूतोंके बिना ही मार्ग चलते हैं तब विधाताने तरह तरहकी सवारियां व्यर्थ ही बनायीं।

ए महि परहिं डासि कुसपाता । सुभगसेज कत सृजत बिधाता ॥
तरु-बर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा । धवलधामु रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥

जब कुश और पत्ते बिछाकर ये पृथिवीपर सोते हैं तब विधाताने सुन्दर पलँग क्यों बनाये ? जब ब्रह्माने इन्हें सुन्दर पेड़ोंके नीचे निवास दिया है तब सफेद महल बना बनाकर व्यर्थ ही परिश्रम किया है।

दो०—जौं ए मुनि-पट-धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमारि ।
बिबिधभांति भूषन बसन बादि किये करतार ॥१२०॥

यदि ये अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार राजपुत्र मुनियोंके समान कपड़े धारण करते और जटाएँ रखते हैं तो तरह तरहके भूषण और वस्त्र विधाताने व्यर्थ ही बनाये।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये । आपु प्रगट भये बिधि न बनाये ॥

यदि ये कंद मूल फल खाते हैं तो संसारमें अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई कहने लगा कि ये स्वभावसे ही सुन्दर हैं। ये स्वयं प्रकट हुए हैं। इन्हें ब्रह्माने नहीं बनाया।

जहँ लगि बेद कही बिधिकरनी । स्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुवन दसचारी । कहँ अस पुरुष कहां असि नारी ॥

वेदोंने जहांतक बतलाया है, वहांतक ब्रह्माकी रचनाको कानसे सुनने, नेत्रोंसे देखने और मनसे समझनेमें आनेयोग्य बतलाया है। चौदह लोकोंको खोजकर देखो, ऐसा पुरुष कहां है और ऐसी स्त्री कहां है ?

इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा । पटतर जोगु बनावइ लागा ॥
कीन्ह बहुत स्रम ऐक न आये । तेहि इरिषा बन आनि दुराये ॥

इन्हें देखकर ब्रह्माके मनमें बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ और वह इनकी समानताके योग्य मनुष्य बनाने लगा। बहुत परिश्रम किया परन्तु समता नहीं आयी। इसी ईर्ष्यासे इन्हें वनमें लाकर छिपाया है।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

कोई कहने लगा कि हम बहुत नहीं जानते। हम अपनेको ही बहुत धन्य मानते हैं। फिर, हमने उनको भी बड़ा पुण्यवान् समझा है जिन्होंने इन्हें देखा है, जो इन्हें देख रहे हैं या जो इन्हें देखेंगे।

दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥१२१॥

इस प्रकार प्यारे वचन कह कहकर नेत्रोंमें जल भर लाते हैं कि सुन्दर सुकुमार शरीरवाले ये राजपुत्र अगम्य मार्गपर कैसे चलेंगे।

नारि सनेह बिकलबस होहीं। चकई सांझ समय जनु सोहीं॥
मृदु-पद-कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहहिं बरबानी॥

प्रेमके वशमें होनेसे स्त्रियां व्याकुल होती हैं मानों संध्या समय चकवी शोभित हो। चरणकमलोंको कोमल और मार्गको कठिन जानकर वे सोचभरे हृदयसे सुन्दर वाणीसे कहने लगीं।

परसत मृदुलचरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥

इनके लाल कोमल चरणोंको छूते हुए पृथिवी सकुचाती है जैसे हमारे हृदय। यदि जगदीशने इन्हें वन दिया है तो मार्गको फूलोंका ही क्यों नहीं बनाया?

जौं मांगा पाइय बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आंखिन्ह माहीं॥
जे नरनारि न अवँसर आये। तिन्ह सिय रामु न देखन पाये॥

हे सखी, यदि विधातासे मांगा हुआ वर मिले तो इनको आंखोंमें रखें। उस अवसरपर जो स्त्रीपुरुष पहुंच न सके उन्होंने सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको देख नहीं पाया।

सुनि सरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गये कहां लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥

वे शोभा सुनकर व्याकुल हो उठते और पूछने लगते कि हे भाई, अबतक वे कितनी दूर पहुंचे होंगे। इनमें जो सामर्थ्यवान होते, वे दौड़ जाकर दर्शन करते और अपने जन्मका फल पाकर आनंदित होकर लौटते थे।

दो०—अबला बालक वृद्धजन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहिं॥१२२॥

स्त्रियां, बालक और बूढ़े, सब लोग हाथ मल मलकर पछताने लगे। श्रीरामचन्द्रजी जहां जहां जाते हैं, लोग इसी प्रकार प्रेमके वशमें हो जाते हैं।

गावँ गावँ अस होइ अनंदू। देखि भानु-कुल-कैरव-चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं॥

सूर्यकुलरूपी कुमुदके चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीको देखकर गांव गांव ऐसा आनन्द होता था। जो कोई यह समाचार सुन पाते वे राजा और रानीको दोष लगाते थे।

कहहिं एक अतिभल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेहि लोचनलाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बातैं सरल सनेह सुहाई॥

कोई कहते कि राजा दशरथ बहुत ही अच्छे हैं जिन्होंने हमें नेत्रोंका लाभ दिया है। स्त्रियां और पुरुष सीधी, स्नेहभरी सुन्दर बातें परस्पर कहते हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ तें आये॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥

वे मातापिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें पैदा किया। वह नगर धन्य है जहांसे ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन और गांव धन्य है जहां जहां ये जाते हैं।

सुखु पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भांति सनेही॥
राम-लषन-पथि-कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

ब्रह्माने उसीको रचकर सुख पाया है जिसके ये सब प्रकार स्नेही हैं। श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके मार्गकी सुन्दर कथा सब वनों और सब मार्गोंमें छा गयी।

दो०—एहि बिधि रघु-कुल-कमल-रबि मग लोगन्ह सुखदेत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय-सौमित्रि-समेत॥१२३॥

रघुवंशरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार मार्गके लोगोंको सुख देते और वन देखते हुए सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत चले जारहे हैं।

आगे रामु लषनु बने पाछे। तापसबेष बिराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसे॥

आगे आगे श्रीरामचन्द्रजी और पीछे तपस्वियोंका भेष धारण किये हुए सुहावने लक्ष्मणजी जा रहे हैं। दोनोंके बीचमें सीताजी कैसी शोभा पाती हैं कि मानों ब्रह्म और जीवके बीचमें माया हो।

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

वह छवि जैसी मेरे मनमें बस रही है, मैं (तुलसीदास) फिर कहता हूँ कि मानों वसन्तऋतु और कामदेवके बीचमें रति शोभा पा रही हो। हृदयमें देखकर एक उपमा फिर कहता हूँ कि मानों बुध और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी शोभित हो।

प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय-राम-पद-अंक बराये। लषनु चलहिं मग दाहिन बायें॥

पृथिवीपर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका जो चिन्ह पड़ता है उसके बीचोंबीच चरण रखती हुई सीताजी भयपूर्वक रास्ता चली जाती हैं। सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके चिन्होंको बचाते हुए लक्ष्मणजी मार्गके दाहिने और बायें चलते हैं

राम-लषन-सिय-प्रीति सुहाई। बचनअगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोही॥

श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीकी सुन्दर प्रीति वाणीकी पहुँचके बाहर है, वह कैसे कही जा सकती है? छविको देखकर पशु और पक्षी आनन्दित हो जाते हैं। बटोही श्रीरामचंद्रजीने उनके चित्त चरा लिये।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सियसमेत दोउ भाइ।
भव-मग-अगम-अनंदु तेइ बिनु स्रमु रहे सिराइ॥१२४॥

जिन जिनने प्यारे बटोहियों, सीताजीसमेत दोनों भाइयोंको देखा, वे संसाररूपी कठिन मार्गसे आनंदसे ही परिश्रमके बिना पार हो गये।

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहिं लषन-सिय-रामु बटाऊ॥
राम-धाम-पथु पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

अब भी कभी स्वप्नमें भी जिसके हृदयमें लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी, तीनों बटोही बसते हैं वही श्रीरामचंद्रजीके स्थानके मार्गको, उस मार्गको जिसे कभी कोई ही मुनि पाता है, पायेगा।

तब रघुबीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल-पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥

जब श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको थका हुआ समझा तब निकट ही बरगदका वृक्ष और ठंढा पानी देखकर और कंद मूल फल खाकर वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल होनेपर स्नान करके वे आगे चले।

[वाल्मीकि-आश्रम]

देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकिआस्रम प्रभु आये॥
रामु दीख मुनिबासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥

वन, सरोवर और सुन्दर पर्वत देखते हुए प्रभु श्रीरामचंद्रजी वाल्मीकि मुनिके आश्रममें आ गये। श्रीरामचंद्रजीने मुनिका सुन्दर निवासस्थान देखा जिसमें सुन्दर वन, पर्वत और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

तालाबोंमें कमल और वनमें वृक्ष फूले हुए हैं और फूलोंके रससे मतवाले होकर सुन्दर भौंरे गूंज रहे हैं। पशु और पक्षी बहुत कोलाहल कर रहे हैं और बैर त्यागकर मनमें आनन्दित होकर घूम रहे हैं।

दो०—सुचि सुंदर आस्रमु निरखि हरषे राजिवनैन।
सुनि रघु-बर-आगमन मुनि आगे आइउ लैन॥१२५॥

पवित्र सुन्दर आश्रम देखकर कमलनेत्र श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हुए। श्रीरामचन्द्रजीका आना सुनकर मुनि उन्हें लेनेके लिये आगे आये।

मुनि कहुँ रामु दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि रामछबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आस्रमहिं आने॥

श्रीरामचन्द्रजीने मुनिको दण्डवत् की। ब्राह्मण-श्रेष्ठ मुनिने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये। वे आदर करके उन्हें आश्रममें ले आये।

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये॥
कंद मूल फल मधुर मँगाये। सिय सौमित्रि राम फल खाये॥

प्राणके समान प्यारे अतिथिको जब मुनिवरने पाया तब उन्होंने सुन्दर आसन दिये और मीठे कंद मूल फल मँगवाये। सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीने उन फलोंको खाया।

बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगलमूरति नयन निहारी॥
तब करकमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन-सुखदाई॥

मङ्गलमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीको अपने नेत्रोंसे देखकर वाल्मीकि मुनिके मनको बड़ा आनन्द हुआ। तब अपने कमलके समान हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी कानोंको सुख देनेवाले ये वचन बोले।

तुम्ह त्रि-काल-दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भांति दीन्ह बनु रानी॥

हे मुनिनाथ, आप त्रिकालदर्शी हैं। सारा संसार बेरके समान आपके

हाथमें है। ऐसा कहकर फिर जिस जिस प्रकार रानीने वनवास दिया, वह सब कथा प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने वर्णन की।

दो०—तात वचन पुनि मातुहित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्यप्रभाउ॥१२६॥

पिताकी आज्ञा, फिर माताका हित, भरतके समान भाईको राजतिलक, मुझे आपके दर्शन—यह सब है प्रभो, मेरे पुण्योंका ही प्रभाव है।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृत सबु सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावइ कोई॥

हे मुनिनाथ, आपके चरण देखकर हमारे सब पुण्य सफल हुए। अब जहां आपकी आज्ञा होवे और जहां हमारे रहनेसे कोई मुनि कष्ट न पावे; (वहीं रहें)

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावकु दहहीं॥
मंगलमूल बिप्रपरितोषू। दहइ कोटि कुल भू-सुर-रोषू॥

क्योंकि मुनि और तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा आगके बिना ही जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता सब मङ्गलोंका मूल है और ब्राह्मणोंका क्रोध करोड़ों कुलोंको भस्म कर डालता है।

अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला। बासु करउ कछु कालु कृपाला॥

ऐसा हृदयमें जानकर वही स्थान बतलाइये जहां मैं सीताजी और लक्ष्मणसमेत जाऊँ और वहां, हे कृपालु, पत्तों और तिनकोंसे सुन्दर कुटी बनाकर कुछ समयतक निवास करूं।

सहज सरल सुनि रघुबरबानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू। तुम्ह पालक संतत स्रुतिसेतू॥

श्रीरामचन्द्रजीकी स्वभावसे ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि कहने लगे कि आप धन्य हैं, आपका कथन यथार्थ है। हे रघुवंशकी पताकारूप श्रीरामचन्द्रजी, आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदा ही वेदोंकी मर्यादाको पालनेवाले हैं।

छंद—स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीसमाया जानकी।
जो सृजति जगपालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महि धरु लषनु स-चराचर-धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल-निसिचर-अनी॥

हे राम, आप वेदोंकी मर्यादाके रक्षक जगदीश्वर हैं और सीताजी आपकी

माया हैं जो आप दयासागरका रुख पाकर संसारको उत्पन्न करती, पालती और संहार करती हैं। जिनके हजार शिर हैं, जो सर्पोंके राजा हैं और जो पृथिवीको धारण किये हुए हैं वे चर और अचरके स्वामी शेषनाग लक्ष्मणजी हैं। आप सब देवताओंके कार्यके लिये मनुष्ययोनिमें राजाका शरीर धारण कर दुष्टों और राक्षसोंकी सेनाको नष्ट करनेके लिये जा रहे हैं।

सो०—राम सरूप तुम्हार बचनअगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१२७॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, आपका स्वरूप वाणीसे कहनेयोग्य नहीं। वह बुद्धि-की पहुंचसे बाहर, व्यापक, अकथनीय और अनन्त हैं। वेद उसे सर्वदा 'नेति' 'नेति' कहते हैं।

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि-हरि-संभु-नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। अउर तुम्हहिं को जाननिहारा ॥

संसार दृश्य है और आप देखनेवाले तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवको नचानेवाले हैं। वे भी आपका मर्म नहीं जानते, फिर आपको जाननेवाला और कौन है?

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत-उर-चंदन ॥

आपको वही जानता है जिसे आप ज्ञानवान् कर देते हैं। आपको जानते ही वह आप हीसा हो जाता है। हे रघुनन्दन, हे भक्तोंके हृदयके चन्दन, आपकी ही कृपासे आपको भक्त लोग जानते हैं।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगतबिकार जान अधिकारी ॥
नरतनु धरेउ संत-सुर-काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥

आपकी देह चैतन्य, आनन्दस्वरूप और निर्विकार है, जिसे अधिकारी ही जानते हैं। आपने संतजनों और देवताओंके लिये मनुष्य-शरीर धारण किया है, इसीलिये साधारण राजाओंके समान आप कहते और करते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु सांचा। जस काछिय तस चाहिय नाँचा ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, आपके चरित्र देख और सुनकर मूर्ख मोहित हो जाते हैं और पण्डितजन सुखी। आप जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य कर दिखलाते हैं। जैसे ढंगसे साज पहने वैसे ही नाचना भी चाहिये।

दो०—पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ ॥१२८॥

आपने मुझसे पूछा है कि मैं कहां रहूं। परन्तु मुझे पूछते हुए संकोच होता है कि आप जहां न हों, वहां आपको रहनेको बतला दूं और वही स्थान दिखला दूं।

सुनि मुनिबचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मनमहुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमियरस बोरी॥

प्रेमके रससे सने हुए मुनिके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सकुचाकर मनमें मुस्कुराने लगे। फिर अमृतके रसमें डूबी हुई मीठी वाणीसे वाल्मीकि मुनि हँसकर कहने लगे।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय-लषन-समेता॥
जिन्ह के स्रवन समुद्रसमाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, सुनिये। अब स्थान बतलाता हूं जहां सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत बसो। जिनके कान समुद्रके समान हैं, जिन्हें आपकी कथारूपी बहुतसी सुन्दर नदियां—

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरसजलधर अभिलाषे॥

सर्वदा भरती रहती हैं पर जो पूरे नहीं होते, उनके हृदय आपके लिये सुन्दर घर हैं। जिन्होंने अपने नेत्रोंको पपीहा बना रखा है, जो आपके दर्शन-रूपी बादलोंके अभिलाषी रहते हैं।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूपबिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक। बसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक॥

जो नदी, समुद्र और भारी सरोवरका निरादर कर देते हैं और केवल आपके रूपरूपी जलकी एक बून्दसे सुखी होते हैं, हे रघुनायक, उनके सुख देनेवाले हृदयमंदिरोंमें आप लक्ष्मणजी और सीताजीसमेत निवास करो।

दो०—जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु ॥१२९॥

हे राम, आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवरसे आपके गुणोंके समूहरूपी मोतियोंको जिसकी जीभरूपी हंसिनी चुनती है उसके मनमें वास करो।

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहिं निबेदित भोजनु करहीं। प्रभुप्रसाद पटु भूषन धरहीं॥

जिसकी नाक नित्य आदरपूर्वक आपके प्रसादकी सुन्दर और पवित्र सुगंधि सूंघती है, जो आपका भोग लगाकर भोजन करते हैं और आपके प्रसाद-रूप वस्त्राभूषण धारण करते हैं।

सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीतिसहित करि बिनय बिसेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥

जो देवता, गुरु और ब्राह्मणको देखकर प्रेमके साथ बड़ी विनती करके सिर झुकाते हैं; जिनके हाथ नित्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको पूजा करते हैं, जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका ही भरोसा है, किसी दूसरेका नहीं)

चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥

और जिनके चरण चलकर श्रीरामचन्द्रजीके तीर्थोंमें जाते हैं, हे श्रीरामचन्द्रजी, आप उनके मनमें वास कीजिये। जो नित्य आपके मंत्रराजको जपते हैं और परिवारसमेत आपकी पूजा करते हैं।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

अनेक प्रकारसे जो तर्पण और होम करते हैं और ब्राह्मणोंको खिलाकर बहुतसा दान देते हैं, जो अपने हृदयमें गुरुको आपसे भी अधिक जानकर बड़ी प्रीतिसे आदरपूर्वक सेवा करते हैं।

दो०—सबु करि मांगहिं एकु फलु राम-चरन-रति होउ।
तिन्हके मनमंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥१३०॥

और जो सब सत्कर्म करके एक ही फल मांगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होवे, उनके मनरूपी मंदिरोंमें सीताजीसमेत दोनों रघुनन्दन (श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी)—आप सब लोग निवास कीजिये।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥

जिनको न काम है न क्रोध, न मद है न अभिमान, न मोह है न लोभ, न क्षोभ है न स्नेह, न द्रोह है न कपट और न दंभ है न माया, हे रघुराज, आप उनके हृदयमें वास कीजिये।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख-सुख-सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रियबचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥

जो सबका प्यारे और सबका हित करनेवाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख

प्रशंसा और गालियां—दोनों समान हैं, जो विचारकर सत्य और प्यारा वचन कहते हैं, जो जागते और सोते, प्रत्येक समय आपकी शरणमें रहते हैं।

तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मनमाहीं॥
जननीसम जानहिं परनारी। धनु पराव विष तें विष भारी॥

और जिनको आपको छोड़कर दूसरी गति नहीं है, हे श्रीरामचन्द्रजी, आप उनके मनमें वास कीजिये। जो परस्त्रीको अपनी माताके समान जानते हैं, जो पराये धनको विषसे भी भारी विष समझते हैं।

जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं परबिपति बिसेखी॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥

जो दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरोंकी विपत्तिसे विशेष दुःखी होते हैं और हे राम, जिन्हें आप प्राणके समान प्यारे हैं उनके मन ही आपके सुन्दर निवासस्थान हैं।

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मनमंदिर तिन्ह के बसहु सीयसहित दोउ भ्रात॥१३१॥

हे तात, जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु, सब आप ही हैं उनके मनरूपी मंदिरमें सीताजीसमेत दोनों भाई वास कीजिये।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित संकट सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥

जो अवगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंको ग्रहण करते हैं, जो गाय और ब्राह्मणके लिये सब संकट सहते हैं, जो नीतिमें निपुण हैं और संसारमें जिनकी मर्यादा है, उनका सुन्दर मन ही आपका घर है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा॥
रामभगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

जो आपके गुणों और अपने दोषोंको समझता है, जिसे सब प्रकार आपका भरोसा है और जिसे रामभक्त जन प्यारे लगते हैं, उसके हृदयमें आप सीताजीसमेत निवास कीजिये।

जाति पांति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥

जाति-पांति, धर्म-धन, प्रशंसा और प्यारा परिवार तथा सुख देनेवाला घर—सबको छोड़कर आपहीमें जो लव लगाये रहते हैं उनके हृदयमें, हे श्रीरामचन्द्रजी, आप रहिये।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
करम-बचन-मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

स्वर्ग, नरक और मोक्ष, जिसे समान हैं, जो धनुषवाण धारण किये हुए आपको जहां तहां देखता है, और जो मन, वाणी और कर्मसे आपका सेवक है, हे राम, उसके हृदयमें आप निवास कीजिये।

दो०—जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निजगेहु॥१३२॥

जिसे कभी कुछ न चाहिये और जिसे आपसे स्वाभाविक प्रेम हो, उसके मनमें आप सदैव वास कीजिये। वही आपका अपना घर है।

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाये। बचन सप्रेम राममन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आस्रमु कहउँ समय सुखदायक॥

इस प्रकार मुनिवरने श्रीरामचन्द्रजीको रहनेके लिये भवन दिखलाये। प्रेमसे भरे हुए मुनिके वचन श्रीरामचन्द्रजीके मनको बहुत प्रिय लगे। मुनिने कहा कि हे सूर्यवंशके स्वामी, सुनिये। अब समयानुकूल सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। जहँ तुम्हार सब भांति सुपासू॥
सैल सुहावन कानन चारू। करि-केहरि-मृग-बिहँग बिहारू॥

चित्रकूट पर्वतपर निवास करो वहां आपको सब प्रकारका आराम मिलेगा। वह सुहावना पर्वत है, वहां सुन्दर वन है, हाथी, सिंह, हिरन और पक्षी क्रीड़ा करते हैं।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज-तप-बल आनी॥
सुरसरिधार नाउँ मंदाकिनि। जो सबु पातक-पोतक-डाकिनि॥

पवित्र नदी है जिसका वर्णन पुराणोंमें है, जिसे अत्रि मुनिकी पत्नी अपनी तपस्याके बलसे वहां लायी है, जो गङ्गाजीकी धारा है और जिसका नाम मंदाकिनी है जो सब पापरूपी बालकोंको खा जानेके लिये डाकिनीके समान है।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥

अत्रि आदि बहुतसे श्रेष्ठ मुनि वहां बसते और योगाभ्यास करते और जप-तपसे शरीरको कसते हैं। हे श्रीरामचन्द्रजी, वहां चलिये और सबका श्रम सफल कीजिये तथा उस श्रेष्ठ पर्वतको भी गौरव दीजिये।

दो०—चित्र-कूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ॥१३३॥

महामुनि वाल्मीकिने चित्रकूटकी असीम महिमा गाकर वर्णन की। फिर सीताजीसमेत दोनों भाई उस श्रेष्ठ नदीमें आकर नहाये।

[चित्रकूट-निवास]

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषन दीख पय उतर करारा। चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि हे लक्ष्मण, यह घाट अच्छा है। अब कहीं ठहरनेकी तदबीर करो। तब, लक्ष्मणजीने जलकी धाराकी उत्तर ओरवाले करारेको देखा जिसके चारों ओर नदीके जलका प्रवाह धनुषके समान फिरा हुआ था।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलिसाउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

नदी धनुषकी प्रत्यंचा है, शम, दम और दान उसके बाण हैं, कलियुगके सारे पाप उन बाणोंके अनेक लक्ष्य हैं और चित्रकूट पर्वत ही मानों अचल शिकारी है जिसकी चोट कभी नहीं चूकती और जो एक ही मुठभेड़में पापोंको मार डालता है।

अस कहि लषन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राममनु देवन्ह जाना। चले सहित सुरपति परधाना॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने स्थान दिखलाया। स्थान देखकर श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया। जब देवताओंने यह जाना कि उस स्थानमें श्रीरामचन्द्रजीका मन लग गया, तब वे देवताओंके स्वामी इन्द्रको प्रधान बनाकर और साथ लेकर चले।

कोल-किरात-बेष सब आये। रचे-परन-तृन-सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

सब देवता कोलों और भीलोंके भेषमें वहां आये और पत्तों तथा तिनकोंकी सुन्दर कुटियां बनायीं। दो कुटियां ऐसी सुन्दर थीं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमेंसे एक कुटी सुन्दर छोटी थी और दूसरी बड़ी।

दो०—लषन-जानकी-सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनिबेष जनु रति-रितु-राज-समेत ॥ १३४॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसमेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उस सुन्दर स्थानमें

विराजमान हैं मानों मुनिका भेष रखकर कामदेव रति और वसंतसमेत शोभित हो।

अमरनाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आये तेहि काला॥
रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥

उसी समय वहां देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूटमें आये। श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया। नेत्रोंका लाभ और श्रीरामचन्द्र-जीके दर्शन पाकर देवता प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज सदन सिधाये॥

फूल बरसाकर देवताओंका वह समूह कहने लगा, कि हे नाथ आज हम सनाथ हुए। विनती करके देवताओंने अपने दुःसह दुःखोंको सुनाया और फिर प्रसन्न होकर वे अपने अपने घरको बिदा हुए।

चित्रकूट रघुनंदनु छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघु-कुल-चंदा॥

श्रीरामचन्द्रजीके चित्रकूटमें बसनेका समाचार सुन सुनकर मुनिजन वहां आये। आनन्दित होकर मुनिजनोंको वहां आते देखकर रघुवंशमें चन्द्रमाके समान श्रीरामचन्द्रजीने दण्डवत् की।

मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय-सौमित्रि-राम-छबि देखहिं। साधन सकल सफलकरि लेखहिं॥

मुनिजन श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगा लेते हैं और सफल होनेके लिये उन्हें आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा-को देखते हैं और यह मानते हैं कि सब साधनाएं सफल हुईं।

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आस्रमन्हि सुछंद॥१३५॥

यथायोग्य सबका सम्मान कर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने मुनिजनोंको बिदा किया। वे सब अपने अपने आश्रमोंमें स्वच्छन्द होकर योग, जप, तप और यज्ञ करने लगे।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटनु सोना॥

कोल और भीलोंने जब यह समाचार पाया तब वे प्रसन्न हुए मानों घरमें

जो निधियां आ गयी हों। कंद-मूल और फलोंको दोनोंमें भर भरकर वे चल दिये मानों कोई कंगाल सोना लूटने जाता हो।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥

उनमेंसे जिन्होंने दोनों भाइयोंको देखा था उनसे दूसरे लोग मार्गमें जाते हुए पूछते थे। इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीकी बड़ाई कहते और सुनते सबने आकर श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन किये।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥

आगे भेंट रखकर सब प्रणाम करते हैं और बड़े प्रेमसे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखते हैं। वे सब चित्रमें लिखेकी भांति जहां तहां खड़े हो गये, उनके शरीर पुलकायमान हो गये और नेत्रोंमें जल भर आया।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

श्रीरामचंद्रजीने जब सबको प्रेममग्न समझा तब प्यारे वचन कहकर उन सबका सम्मान किया। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको बार बार प्रणाम कर वे हाथ जोड़कर नम्रतासे ये वचन कहने लगे—

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥१३६॥

हे नाथ, हे प्रभु, आपके चरणोंको देखकर हम सब अब सनाथ हो गये। हे कोशलराज, हमारे ही भाग्यसे आपका आना हुआ है।

धन्य भूमि बन पंथु पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग काननचारी। सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी॥

हे नाथ, जहां जहां आपने अपने चरण रखे हैं वह पृथिवी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं। वनमें फिरनेवाले पक्षी और मृग धन्य हैं जिनका जन्म आपके दर्शन कर सफल हो गया।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहां सकल रितु रहब सुखारी॥

अपने परिवारसमेत हम सब धन्य हैं जिन्होंने नेत्र भरकर आपके दर्शन किये। आपने विचार कर अच्छे स्थानपर वास किया। यहां आप सब ऋतुओंमें सुखी रहेंगे।

हम सब भांति करबि सेवकाई। करि-केहरि-अहि-बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कन्दर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

हाथी, सिंह, सर्प और बाघ, सबको अलग रखकर हम सब आपकी सब प्रकार सेवा करेंगे। हे प्रभु, वन, बेहड़, पर्वत, खोह और कंदरा, सब हमारे पग पग देखे हुए हैं।

जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर झल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

जहां तहां आपको आखेट खिलायँगे और सरोवर, झरना आदि सुन्दर स्थानोंको दिखलायँगे। अपने परिवारसमेत हम सब आपके सेवक हैं। हे नाथ, आज्ञा देते हुए संकोच न कीजियेगा।

दो०—बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुनाअयन।
बचन किरातन्हके सुनत जिमि पितु बालक बयन॥१३७॥

जो श्रीरामचन्द्रजी वेदोंके वचनों और मुनियोंके मनकी पहुंचसे भी बाहर हैं वे दयानिधान प्रभु, भीलोंके वचनोंको ऐसे सुन रहे हैं जैसे पिता बालकके वचनोंको सुनता हो।

रामहिं केवल प्रेमु पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल-बन-चर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥

श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है, जो जाननेवाला हो वह जान ले। फिर श्रीरामचन्द्रजीने सब वनवासियोंको प्रेमभरे मीठे वचन कहकर सुखी और संतुष्ट किया।

बिदा किये सिरु नाइ सिधाये। प्रभुगुन कहत सुनत घर आये॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥

उन सबको श्रीरामचन्द्रजीने बिदा किया। वे सब शिर नवाकर बिदा हुए और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंको कहते सुनते अपने घर आये। देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले दोनों भाई सीताजीसमेत इस प्रकार वनमें बसने लगे।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयेउ बनु मंगल-दायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु-बलित-बर-बेलि बिताना॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी वहां आकर बसे तबसे वह वन मंगलदायक हो गया। तरह तरहके वृक्ष फूलने और फलने लगे जिनपर लपटी हुई मनोहर बेलोंके सुन्दर जाल छाये हुए थे।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुधबन परिहरि आये॥
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुखदेनी॥

ये वृक्ष कल्पवृक्षके समान स्वभावसे ही सुन्दर थे मानों देवताओंके वनको छोड़कर आये हों। भौंरोंकी बहुत ही सुन्दर पंक्तियां गुंजार करती थीं। और शीतल, मंद, सुगंधित और सुखदाई वायु बहती थी।

दो०—नीलकण्ठ कलकण्ठ सुक चातक चक्क चकोर।
भांति भांति बोलहिं बिहँग स्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥

नीलकंठ, कोयल, तोता, चातक, चकवा-चकोर, तरह तरहके पक्षी बोलते थे, जिनका बोल कानोंको सुख देनेवाला और चित्तको चुरा लेनेवाला था।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर रामछबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥

हाथी, सिंह, बन्दर, शूकर और हिरन, सब वैरभावरहित होकर साथ साथ घूमते थे। आखेट खेलनेके लिये फिरते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर हिरनोंके समूह विशेष प्रसन्न होते थे।

बिबुधबिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥

संसारमें जहांतक देवताओंके वन हैं, वे सब श्रीरामचन्द्रजीके वनको देखकर प्रशंसा करते थे। गंगा, सरस्वती, सूर्यकी पुत्री यमुना, नर्मदा, गोदावरी और धन्या।

सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल-सुर-बासू॥

सब सरोवर, समुद्र, नदियां और अनेक नद, मंदाकिनी नदीकी बड़ाई करते थे। उदयाचल, अस्ताचल और कैलाश, मंदराचल और मेरु पर्वत, जिनपर सब देवताओंका वास है—

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूटजसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, वे सब चित्रकूट पर्वतका यश गाते थे। विन्ध्याचल बड़ा प्रसन्न था, उसके मनमें सुख न समाता था; क्योंकि बिना ही परिश्रम उसने बहुत बड़ाई प्राप्त कर ली।

दो०—चित्रकूटके बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिनराति॥१३९॥

चित्रकूटके पक्षी, हिरन, बेल, वृक्ष और तरह तरहकी घास, सब अत्यंत पुण्यवान हैं, धन्य हैं—ऐसा रात-दिन देवता कहते थे।

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरनरज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी॥

जिनके नेत्र थे वे श्रीरामचंद्रजीको देखकर और अपने जन्मका फल पाकर चिन्तारहित हो जाते थे। गतिरहित पदार्थ श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी धूलको छूकर सुखी और परम पदके अधिकारी हो गये।

सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मंगलमय अति-पावन-पावन॥
महिमा कहिय कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥

जहां सुखसागर श्रीरामचन्द्रजीने निवास किया वह वन और पर्वत स्वभावसे ही सुहावना, मङ्गलस्वरूप और अत्यंत पवित्रसे भी पवित्र है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय?

पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय-लषन-राम रहे आई॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥

क्षीरसागरको छोड़कर और अयोध्याको त्यागकर जहां सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजी आकर रहे हों, उस वनकी जैसी कुछ शोभा थी उसे यदि शेषनाग सौ हजार भी हो जायँ तो कह नहीं सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबरकमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लषनु करम-मन-बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥

उसका वर्णन मैं किस प्रकार करूं? पोखरका कछुआ क्या मंदराचल उठा सकता है? मन, वाणी और कर्मसे लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करते थे। उनके शील और प्रेमका वर्णन नहीं करते बनता।

दो०—छिनु छिनु लखि सिय-राम-पद जानि आपु पर नेहु॥
करत न सपनेहुँ लषनु चितु बंधु-मातु-पितु-गेहु॥१४०॥

क्षण क्षणमें सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंको देखकर और अपने-पर उनका प्रेम जानकर लक्ष्मणजी स्वप्नमें भी अपना मन भाई, माता, पिता और घरकी ओर नहीं डुलाते थे।

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर-परिजन-गृह-सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥

नगरनिवासियों और कुटुम्बियों तथा घरकी याद भुलाकर सीताजी

श्रीरामचन्द्रजीके सङ्गमें सुखी रहती थीं। क्षण क्षणमें प्यारेके चन्द्रमुखको देखकर वे आनन्दित रहती थीं जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोरी।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सियमनु रामचरन अनुरागा। अवध-सहस-सम बन प्रियलागा॥

स्वामीका प्रेम नित्य बढ़ता देखकर वे प्रसन्न रहती थीं जैसे दिनमें चकवी। सीताजीके मनमें श्रीरामचंद्रजीके चरणोंका प्रेम होनेसे उन्हें हजार अयोध्याओंके समान वह वन प्यारा लगता था।

परनकुटीप्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग विहंगा॥
सासु-ससुर-सम मुनितिय मुनिबर असनु अमिय सम कंद मूलफर॥

प्रियतमके संगमें पत्तोंकी वह कुटी ही प्यारी लगती थी। हिरनों और पक्षियोंका प्यारा परिवार था, श्रेष्ठ मुनिजन और उनकी स्त्रियां ससुर और सासके समान थीं, कंद-मूल फलोंका अमृतके समान भोजन था।

नाथ साथ साथरी सुहाई। मयन-सयन-सय-सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू॥

स्वामीके साथमें पत्तोंकी सुन्दर शय्या कामदेवके सोनेकी शय्याके समान सुख देनेवाली थी। जिसको देखते ही मनुष्य लोकपाल हो जाते हैं उसे विषय-सुख क्या मोह सकता है?

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥२४१॥

श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करते ही जब मनुष्य विषयोंके सुखको तिनकेके समान छोड़ देते हैं तब श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी सीताजी, जो संसारकी माता हैं, यदि उसे छोड़ दें तो इसमें उनके संबंधमें आश्चर्यकी बात कुछ भी नहीं है।

सीय लषनु जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अतिसुखु मानी॥

जिस प्रकार सीताजी और लक्ष्मणजी सुख पाते, श्रीरामचन्द्रजी वही करते तथा वही कहते थे। श्रीरामचन्द्रजी प्राचीन कथा-कहानियां कहते थे तथा लक्ष्मणजी और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर उन्हें सुनते थे।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत-सनेह--सील--सेवकाई॥

श्रीरामचन्द्रजी जब जब अयोध्याकी याद करते तब तब नेत्रोंमें जल भर

जाते थे। माता, पिता, कुटुम्बीलोगों, भाइयों और भरतजीके स्नेह, शील और सेवा-भावको स्मरण कर—

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लषनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं॥

कृपासागर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होते थे परन्तु कुसमयका विचार कर धीरज रखते थे। जिस प्रकार परछांई पुरुषका अनुसरण करती है उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते थे।

प्रिया-बंधु-गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत-उर-चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं लषनु अरु सीता॥

धीर, कृपालु और भक्तके हृदयके चन्दन श्रीरामचन्द्रजी प्रिया सीताजी और भाई लक्ष्मणजीकी दशा देखकर कोई पवित्र कथा कहने लगते जिसे सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी सुख पाते थे।

दो०—राम-लषन-सीता-सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची-जयंत समेत॥ १४२॥

जैसे इन्द्राणी और जयंतसमेत इन्द्र अमरावतीमें बसते हैं वैसे ही सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचन्द्रजी उस पर्णकुटीमें शोभा पा रहे थे।

जोगवहिं प्रभु सियलषनहिं कैसे। पलक बिलोचनगोलक जैसे॥
सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी रक्षा कैसे करते रहते थे जैसे पलक नेत्रोंकी पुतलियोंकी। सीताजी और लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा वैसे ही करते रहते थे जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीर की।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग-मृग-सुर-तापस-हित-कारी॥
कहेउँ राम-बन-गवँनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥

पक्षी, हिरन, देवता और तपस्वी, सबका हित करनेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार सुखसे वनमें वास करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीका सुहावना वनगमन मैंने कहा। सुमंत्र जिस प्रकार अयोध्यामें लौटकर आये, वह सुनो।

[सुमंत्रका लौटना]

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिवसहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयेउ बिषादू॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको पहुँचाकर गुह निषाद लौटा और मंत्रीसमेत रथको आकर देखा। मंत्रीको व्याकुल देखकर गुह निषादको जैसा शोक हुआ, वह कहा नहीं जाता।

राम राम सिय लषनु पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिनदिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

हा राम! हा राम! हा सीता! हा लक्ष्मण!—इस प्रकार मंत्री पुकारने लगा और भारी व्याकुल होकर पृथिवीपर गिर पड़ा। दक्षिण दिशाकी ओर देखकर घोड़े हिनहिनाते हैं मानों पंखोंके बिना पक्षी व्याकुल हो रहे हों।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पियहिं जलु मोचहिं लोचनबारि।
ब्याकुल भये निषाद सब रघु-बर-बाजि निहारि॥१४३॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको देखकर, जो न घास चरते हैं और न जल पीते हैं किन्तु अपने नेत्रोंसे आंसू बहा रहे हैं, गुह निषाद व्याकुल हो गया।

धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथज्ञाता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

तब धीरज रखकर गुह निषाद कहने लगा कि हे सुमंत्र, अब शोक छोड़ दो। तुम पण्डित हो और परमार्थको जाननेवाले हो। विधाताको प्रतिकूल समझकर धीरज रखो।

बिबिधकथा कहि कहि मृदुबानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोकसिथिल रथु सकइ न हांकी। रघु-बर-बिरह-पीर उर बांकी॥

मीठी वाणीसे तरह तरहकी कथाएँ कहकर गुह निषादने मंत्रीको जबर्दस्ती लाकर रथमें बिठाया। शोकसे सुमंत्र ऐसे शिथिल हो गये कि रथ न हांक सके। उनके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीके वियोगकी बड़ी कठोर पीड़ा हो रही थी।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे॥

घोड़े तड़फड़ाते थे और मार्ग नहीं चलते थे मानों जंगली हिरनोंको लाकर रथमें जात दिया हो। चलते चलते वे अड़ जाते और मुड़कर पीछेकी ओर देखने लगते थे। श्रीरामचद्रजीके वियोगके तीक्ष्ण दुःखसे वे बड़े व्याकुल हो रहे थे।

जो कहु रामु लषनु बैदेही। हिकरि हिकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरहगति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥

श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीका जो नाम लेता उसकी ओर

वे हींस हींसकर बड़े प्रेमसे देखते थे। घोड़ोंकी विरहकी दशा कैसे कही जाय ? वे ऐसे व्याकुल थे जैसे मणिके बिना सर्प व्याकुल होता है।

दो०—भयेउ निषादु बिषादुबस देखत सचिवतुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिये सारथीसंग ॥ १४४ ॥

मंत्री और घोड़ोंको देखकर गुह निषाद शोकके वशमें हो गया। फिर उसने चार विश्वासपात्र सेवकोंको बुलाकर सुमंत्रके साथ कर दिया।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहबिषादु बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥

कुछ दूरतक सुमंत्रको बिदा करके गुह निषाद लौट आया। उसका विरह-दुःख वर्णन नहीं किया जाता। गुह निषादने जिन चार निषादोंको साथ कर दिया था वे रथ लेकर अयोध्याको चले। वे क्षण क्षणमें दुःखमें डूबे जाते थे।

सोच सुमंत्र बिकल दुखदीना। धिग जीवन रघु-बीर-बिहीना ॥
रहिहि न अंतहु अधमुसरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥

शोकके कारण सुमंत्र व्याकुल, दुःखी और दीन होकर कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीके बिना यह जीवन धिक्कार है। अंतमें जब यह अधम शरीर नहीं ही रहेगा तब श्रीरामचन्द्रजीका वियोग होते ही इसने (छूटकर) यश क्यों नहीं ले लिया।

भये अजस-अघ-भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंदमनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥

मेरे प्राण अपयश और पापके भाजन हुए। अब ये किस कारण शरीर नहीं छोड़ जाते ? हाय ! मूर्ख मन, अवसर चूक गया। अब भी हृदयके दो टुकड़े नहीं हो जाते।

मींजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपिन धनरासि गँवाई ॥
बिरद बांधि बरबीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

हाथ मलकर और शिर धुनकर सुमंत्र पछताने लगे मानों किसी कंजूसने धनकी ढेरी गवां दी हो, अथवा मानों कोई योद्धा यशस्वी होकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर संग्रामसे भाग चला हो।

दो०—बिप्र बिबेकी बेदविद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मदपान कर सचिव सोच तेहि भांति ॥१४५॥

प्रतिष्ठित, साधु, कुलीन, वेदज्ञ और विवेकी ब्राह्मणको धोखेमें मदिरा पी लेनेपर जैसा शोक होता है वैसा ही शोक सुमंत्रको हुआ।

जिमि कुलीनतिय साधु सयानी। पतिदेवता करम-मन-बानी॥
रहइ करमबस परिहरि नाहू। सचिवहृदय तिमि दारुनदाहू॥

जैसे कोई कुलीन, सती, चतुर और मन, वाणी और कर्मसे पतिको ही देवता माननेवाली स्त्री कर्मवश अपने स्वामीको छोड़कर रहे और फिर उसके हृदयमें जैसी कठोर पीड़ा हो, वैसी ही पीड़ा मंत्रीके हृदयमें हुई।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुहुँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधिकपाटी॥

नेत्रोंमें जल छा गया, दृष्टि कम हो गयी, कानोंसे सुनायी न पड़ने लगा और भोली बुद्धि व्याकुल हो गयी। ओंठ सूखने लगे और मुँह मुरझा गया, फिर भी प्राण नहीं निकलते थे; क्योंकि हृदयमें १४ वर्ष पीछे श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेकी अवधिके किवाड़ लगे हुए थे।

बिबरन भयेउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जम-पुर-पंथ सोच जिमि पापी॥

रंग ऐसा फीका पड़ गया कि उनकी ओर देखा नहीं जाता मानों उन्होंने अपने माता और पिताको मार डाला हो। उनके मनमें हानि और ग्लानि इतनी अधिक छायी हुई थी जैसे कोई पापी यमपुरीके रास्तेमें सोच कर रहा हो।

बचनु न आउ हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
रामरहित रथु देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥

मुंहसे वचन नहीं निकलता, परन्तु वे हृदयमें पछताने लगे कि मैं अयोध्यामें जाकर क्या देखूंगा। श्रीरामचन्द्रजीके बिना रथको जो कोई देखेगा उसे ही मुझे देखकर संकोच होगा।

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नरनारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब हृदय वज्रु बैठारि॥ १४६॥

नगरके व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझे पूछेंगे तब अपनी छातीपर वज्र रखकर मैं सबको उत्तर दूंगा।

पूछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता॥
पूछिहि जबहिं लषनमहतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥

हे विधाता, दीन और दुःखी सब माताएँ पूछेंगी तब मैं उनसे क्या कहूंगा? लक्ष्मणजीकी माता सुमित्रा जब पूछेंगी तब मैं उन्हें सुखी करनेवाला कौनसा सन्देश कहूंगा?

रामजननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लषनु बैदेही॥

बछड़ेको याद करके नयी ब्यायी हुई गायकी भांति जब श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्या दौड़कर आवेंगी तब उनके पूछनेपर मैं उन्हें उत्तर दूंगा कि श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी, सब वनको चले गये।

जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब येहु सुखु लेबा॥
पूछिहि जबहिं राउ दुखदीना। जिवनु जासु रघुनाथअधीना॥

जो कोई पूछेगा उसीको उत्तर दूंगा, यही सुख अब अयोध्यामें जाकर मैं लूंगा! दुःखी और दीन राजा, जिनका जीना श्रीरामचन्द्रजीके अधीन है, पूछेंगे—

देइहउ उतरु कवन मुँहु लाई। आयेउँ कुसल कुअँरु पहुँचाई॥
सुनत लषन-सिय-राम-सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥

तब मैं कौन मुँह लाकर उन्हें उत्तर दूंगा कि कुमारोंको पहुँचाकर कुशलपूर्वक लौट आया। लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीका संदेश सुनते ही राजा तिनकेके समान अपने शरीरको छोड़ देंगे।

दो०—हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यह जातना सरीरु॥ १४७॥

जैसे प्रियतम जलका वियोग होते ही कीचड़ फट जाता है, वैसे ही मेरा हृदय फट नहीं गया! जानता हूँ, मुझे दैवने यह यातना-शरीर दिया है।

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसातीर तुरतु रथु आवा॥
बिदा किये करि बिनय निषादा। फिरे पाँय परि बिकल बिषादा॥

मार्गमें मंत्री इस प्रकार पछतावा करते जा रहे थे। शीघ्र ही तमसा नदीके किनारे रथ आ गया। मंत्रीने विनती करके निषादोंको बिदा किया जो शोकसे व्याकुल हो पैरों पड़कर लौट आये।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु-बाभन-गाई॥
बैठि बिटपतर दिवसु गँवावा। सांझ समय तब अँवसरु पावा॥

नगरमें घुसते हुए मंत्रीको संकोच होने लगा मानों उन्होंने गुरु, ब्राह्मण और गायको मार डाला हो। उन्होंने वृक्षके नीचे बैठकर दिन व्यतीत किया और जब सन्ध्या-समय हुआ तब नगरमें जानेका उन्हें अवसर मिला।

अवधप्रबेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूप द्वार रथु देखन आये॥

अंधकार हो जानेपर उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया और रथको द्वारपर ही छोड़कर वे महलके भीतर गये। सुमंत्रके आनेका समाचार जिन जिनने सुन पाया वे सब राजद्वारपर रथ देखनेके लिये आये।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर-नारि-नर ब्याकुल कैसे। निघटत नीर मीन गन जैसे॥

रथको पहचानकर और घोड़ोंको व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे शिथिल हो गये जैसे धपमें ओले गल जाते हैं। नगरके स्त्री और पुरुष, सब ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानीके सूख जाते ही मछलियां व्याकुल होती हैं।

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयेउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेतनिवासु॥१४८॥

मंत्रीका आना सुनते ही सारा रनवास व्याकुल हो गया। उन्हें राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ मानों वह प्रेतका निवासस्थल हो।

अतिआरति सब पूछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहां नृप जेहि तेहि बूझा॥

अत्यंत दुखी होकर सब रानियां पूछती हैं परन्तु सुमंत्रसे कुछ जवाब नहीं दिया जाता, उनकी वाणी व्याकुल हो गयी। उन्हें कानोंसे सुनायी और आँखोंसे दिखलायी न पड़ने लगा। वे जिसको पाते उसीसे पूछने लगते कि बतलाओ राजा कहां हैं?

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्यागृह गईं लेवाई॥
जाइ सुमंत्रु दीख कस राजा। अमियरहित जनु चंदु बिराजा॥

दासियोंने जब मंत्रीकी व्याकुलता देखी तब वे उन्हें कौशल्याके महलमें लिवा ले गयीं। सुमंत्रने जाकर राजाको कैसा देखा मानों अमृतशून्य चन्द्रमा हो।

आसन--सयन--बिभूषन—हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भांती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥

वे आसन, शय्या और गहनोंसे रहित बिलकुल मलीन होकर पृथिवीपर पड़े हुए थे, लंबी सांसें ले रहे थे और उन्हें ऐसा सोच हो रहा था मानों स्वर्गसे राजा ययाति खसक पड़े हों।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह रामसनेही। पुनि कह राम लषनु बैदेही॥

क्षण क्षणमें शोकसे वे छाती भर लाते थे मानों पंख जल जानेपर संपाती

गिर पड़ा हो। राजा बार बार राम, राम, प्यारे राम कहकर फिर राम, लक्ष्मण, सीता कहने लगे।

दो०—देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥१४६॥

राजाको देखकर मंत्रीने जय जीव कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठ बैठे और कहने लगे—सुमंत्र, यह कहो, श्रीरामचन्द्रजी कहां हैं?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥

राजाने सुमंत्रको हृदयसे लगा लिया मानों डूबते हुए कुछ आधार मिल गया हो। प्रेमसमेत पास बिठलाकर और नेत्रोंमें आंसू भरकर राजा पूछने लगे।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लषनु बैदेही॥
आने फेर कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिवलोचन जल छाये॥

हे प्यारे मित्र, यह कहो कि रामचन्द्र कुशलसे तो हैं? रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता कहां हैं? उन्हें लौटा लाये हो कि वे वनको चले ही गये। यह सुनते ही मंत्रीकी आंखोंमें आंसू भर आये।

सोक बिकल पुनि पूछु नरेसु। कहु सिय-राम-लषन-संदेसू॥
राम-रूप-गुन—सील—सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

शोकसे व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे कि रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताका संदेश कहो! श्रीरामचन्द्रजीका रूप, गुण, शील और स्वभाव बार बार स्मरण कर राजा हृदयमें सोचने लगे।

राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयेउ न हरष हराँसू॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

राजतिलक होनेकी बात सुनाकर वनवास दिया परंतु उनके मनको उसे सुनकर न प्रसन्नता हुई और न इसे सुनकर शोक! उसी पुत्रका वियोग होते ही प्राण नहीं निकले—मेरे समान बड़ा पापी और कौन है?

दो०—सखा राम-सिय-लषनु जहँ तहां मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहहुँ सतिभाउ॥ १५०॥

हे मित्र, रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता जहां हों वहीं मुझे पहुँचाओ, नहीं तो, मैं सच्चे भावसे कहता हूं, अब प्राण चलना चाहते हैं।

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम-सुअन-सदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम-लखन-सिय नयन देखाऊ॥

राजा बार बार मंत्रीको पूछने लगे कि मेरे अत्यंत प्यारे पुत्रोंका संदेश सुनाओ। हे मित्र, शीघ्र वही उपाय करो जिससे श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजीको आंखों दिखला सको।

सचिव धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधुसमाजु सदा तुम्ह सेवा॥

धीरज रखकर मंत्री सुमंत्र कोमल वाणीसे कहने लगे कि हे महाराज, आप ज्ञानवान और पंडित हैं; और वीर, अत्यंत धैर्यवान तथा धुरन्धर राजा हैं; आपने सज्जनोंके समाजकी सदैव सेवा की है।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रियमिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

जन्म-मृत्यु, दुःख-सुख, हानि-लाभ, प्रिय वस्तुका संयोग और वियोग, सब भोग रात और दिनकी भांति, हे स्वामी, काल और कर्मके वश होकर बरबस हुआ करते हैं।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िय सोचु सकल हितकारी॥

जो मूर्ख होते हैं वे सुखमें प्रसन्न होते हैं और दुःखमें विलाप करते हैं, परन्तु धीर मनुष्य अपने मनमें दोनोंको ही समान समझते हैं। विवेकसे विचारकर धीरज रखिये और हे सबके हितकारी, शोक दूर कर दीजिये।

दो०—प्रथम बासु तमसा भयेउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि सियसमेत दोउ बीर॥ १५१॥

पहिला निवास तमसा नदीके किनारे हुआ और दूसरा गङ्गाजीके तटपर। दोनों वीर वहां सीताजीसमेत स्नान कर जलपान करके रहे थे।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिगरौर गवाँई॥
होत प्रात बटछीरु मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा॥

केवट गुह निषादने वहां उनकी बड़ी सेवा की। वह रात उन्होंने शृंगवेरपुरमें बितायी। सवेरा होते ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने बरगदका दूध मंगाया और अपने शिरपर जटाओंका मुकुट बनाया।

रामसखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लषनु बानधनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभुआयसु पाई॥

श्रीरामचन्द्रजीके मित्र गुह निषादने तब नाव मंगवायी और सीताजीको चढ़ाकर श्रीरामचन्द्रजी चढ़े। धनुष और बाणको सजाकर हाथमें लिये हुए लक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुरबचन धरि धीरा॥
तात प्रनामु तात सन कहेहु। बार बार पदपंकज गहेहु॥

मुझे व्याकुल देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी धीरज रखकर ये मधुर वचन कहने लगे कि हे तात, पिताजीसे प्रणाम कहना और बार बार मेरी ओरसे चरण-कमल पकड़ना।

करबि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी॥
बनमग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥

फिर पैरों पड़कर विनती करना कि हे तात, मेरी चिन्ता मत कीजिये। आपकी कृपा, दया और पुण्यसे वनके मार्गमें हमारा कुशलमङ्गल है।

छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहउँ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहउँ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहि कुसली रहहिं कोसलधनी॥

हे पिताजी, आपकी दयासे वनमें जाते हुए सब सुख पाऊंगा। आपकी आज्ञाका पालन कर आपके चरणोंके दर्शन करनेके लिये कुशलपूर्वक फिर लौट आऊंगा। बार बार पैरों पड़कर और बहुत विनती करके सब माताओंको संतोष दिलाकर—तुलसीदासजी कहते हैं—वही यत्न करना जिससे कोशल देश-के राजा दशरथ कुशलपूर्वक रहें।

सो०—गुरु सन कहब सँदेसु बार बार पदपदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५२॥

बार बार चरणकमल पकड़कर गुरु वशिष्ठसे यह संदेश कहना कि वे वही उपदेश करें जिससे अयोध्यापति राजा दशरथ मेरे लिये शोक न करें।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी। जा तें रह नरनाहु सुखारी॥

नगरनिवासी और कुटुम्बी, सबसे मेरी ओरसे निहोरा करके, हे तात, मेरी यह विनती सुनाना कि सब प्रकार मेरा हित करनेवाला वही है जिससे राजा दशरथ सुखी रहें।

कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राजपदु पाये॥
पालेहु प्रजहि करम-मन-बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥

भरतके आ जानेपर यह संदेश कहना कि राज-पद पाकर नीति नहीं छोड़नी चाहिये। मन, वाणी और कर्मसे प्रजाका पालन करना और सब माताओंको बराबर जानकर उनकी सेवा करना।

अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु-मातु-सुजन-सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करहि न काऊ॥

और हे भाई, पिता, माता और सुजनोंकी सेवा करके भाईपन निबाहना। हे तात, राजाको इस प्रकार रखना जिससे वे मेरा शोक कभी न करें।

लषन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लषनलरिकाई॥

लक्ष्मणजीने कुछ कठोर वचन कहे परन्तु उन्हें रोककर फिर श्रीरामचंद्रजीने मुझसे विनती की और बार बार अपनी सौगंद दिलायी कि हे तात, लक्ष्मणजीका लड़कपन पिताजीसे मत कहना।

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥१५२॥

प्रणाम कहकर सीताजी कुछ कहने ही लगी थीं कि उनका शरीर स्नेहसे शिथिल होगया, वाणी रुक गयी, नेत्रोंमें जल छा गया और शरीर पुलकायमान होकर रोमावली खड़ी हो गयी।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहिं नाव चलाई॥
रघु-कुल-तिलक चले एहि भांती। देखेउँ ठाढ कुलिस धरि छाती॥

उसी समय श्रीरामचंद्रजीका रुख पाकर केवटने उस पारके लिये नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंशतिलक श्रीरामचंद्रजी चल दिये और अपनी छातीपर वज्र रख मैंने खड़े होकर उन्हें देखा।

मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरेउँ लेइ रामसँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥

मैं अपना दुःख कैसे कहूं जो श्रीरामचंद्रजीका संदेश लेकर जीवित लौटा। ऐसा कहकर मंत्री चुप रह गये और वे हानि, ग्लानि और शोकके वशमें हो गये।

सूत बचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुनदाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ ब्यापा॥

सुमंत्रके वचन सुनते ही राजा पृथिवीपर गिर पड़े। उनके हृदयमें बड़ी कठोर वेदना होने लगी। मनमें घोर मोह व्याप्त हो जानेसे वे छटपटाने लगे मानों मछलीको मांजा (बरसातका रोग) हो गया हो।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महाबिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥

विलाप करके सब रानियां रोने लगीं। उस महान् विपत्तिका वर्णन कैसे किया जा सकता है? विलाप सुनकर दुःखको भी दुःख लगता था और धैर्यका भी धैर्य भागता था।

दो०—भयेउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहंगबन परेउ निसि मानहुं कुलिस कठोरु॥१५४॥

राजमहलमें शोर होता सुनकर अयोध्यामें बड़ा कोलाहल हुआ मानों बहुतसे पक्षियोंके वनपर रातमें कठोर वज्रपात हुआ हो।

[दशरथका मरण]

प्रान कंठगत भयेउ भुआलू। मनिबिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इंद्री सकल बिकल भइ भारी। जनु सर सरसिज बन बिनु बारी॥

राजाके प्राण कण्ठमें आ गये। वे ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिके बिना सर्प। उनकी सारी इंद्रियां बहुत व्याकुल हुईं जैसे सरोवरमें जलके बिना कमलोंका वन।

कौसल्या नृप दीख मलाना। रबि-कुल-रबि अथयेउ जिय जाना॥
उर धरि धीर राममहतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥

कौशल्याने राजाको मलिन देखकर हृदयमें यह जान लिया कि सूर्यकुलका सूर्य अस्त हुआ! फिर भी श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्याजी हृदयमें धीरज रखकर समयानुसार ये वचन कहने लगीं—

नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम–बियोग–पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवधजहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू॥

हे नाथ, समझ करके मनमें विचार कीजिये। श्रीरामचन्द्रजीके वियोगका समुद्र अपार है। आप कर्णधार हैं और अयोध्या जहाज है जिसमें सारे प्रियजनरूपी यात्रियोंका समूह चढ़ा हुआ है।

धीरजु धरिय त पाइय पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिबारू॥
जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी। रामु लषनु सिय मिलहिं बहोरी॥

धीरज धरियेगा तो पार जा लगेंगे नहीं तो सारा परिवार डूब जायगा।

हे प्यारे, यदि आप मेरी विनतीको अपने हृदयमें धारण करेंगे तो श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी, सब फिर मिल जायँगे।

दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयेउ आंखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचेउ सीतलबारि ॥१५५॥

प्यारी कौशल्याके कोमल वचन सुनकर राजा आंख खोलकर देखने लगे मानों छटपटाती हुई दुःखी मछलीपर किसीने ठंडा पानी डाल दिया हो।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ रामु कृपालू॥
कहाँ लषनु कहँ रामसनेही। कहँ प्रिय-पुत्र-बधू बैदेही॥

धीरज रखकर राजा उठकर बैठ गये। वे कहने लगे--हे सुमंत्र, यह बतलाओ कि कृपालु रामचन्द्र कहां हैं? लक्ष्मण कहां हैं? प्यारे राम कहां हैं? प्यारी पुत्रवधू सीता कहां हैं?

बिलपत राउ बिकल बहुभांती। भइ जुगसरिस सिराति न राती॥
तापस-अंध-साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥

राजा व्याकुल होकर बहुत तरहसे विलाप करने लगे। वह रात युगके समान हो गयी और काटे नहीं कटी। राजा दशरथको अंधे तपस्वीके श्रापकी याद हो आयी जिसकी सारी कथा उन्होंने कौशल्याको कह सुनायी।

भयेउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवनआसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेमपनु मोर निबाहा॥

इतिहास वर्णन करते करते वे व्याकुल हो गये और कहने लगे कि रामचन्द्रके बिना जीनेकी आशाको धिक्कार है। उस शरीरको रखकर मैं क्या करूंगा जिसने मेरा प्रेम-प्रण नहीं निबाहा।

हा रघुनन्दन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लषन हा रघुबर। हा पितु-हित-चित-चातक-जलधर॥

हाय प्राणप्यारे रघुनन्दन! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन बीत गये हाय जानकी! हाय लक्ष्मण! हाय रामचन्द्र! हाय पिताके हितके लिये चित्त-रूपी पपीहाके बादल!

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबरबिरह राउ गयेउ सुरधाम ॥१५६॥

अन्तमें बारंबार राम राम, राम राम कह कहकर राजा दशरथ श्रीरामचंद्रजीके वियोगमें शरीर छोड़कर देवलोकको सिधार गये।

जियन मरन फलु दसरथु पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जियत राम-बिधु-बदनु निहारा। रामबिरह मरि मरनु सँवारा॥

राजा दशरथने जीने और मरनेका फल पा लिया, जिनका निर्मल यश अनेक ब्रह्माण्डोंमें छा गया। जबतक जिये, श्रीरामचन्द्रजीका चन्द्रमुख देखा किये और जब श्रीरामचन्द्रजीका वियोग हुआ तब शरीर त्यागकर अपना मरण सुधार लिया।

सोकबिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बलु तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥

शोकसे व्याकुल होकर सब रानियां राजा दशरथके रूप, शील, बल और तेजका बखान कर रोने लगीं। वे अनेक प्रकारसे विलाप करने और बार बार पृथिवी-तलपर पछाड़ खाने लगीं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अथयेउ आजु भानु-कुल-भानू। धरमअवधि गुन-रूप-निधानू॥

दास और दासियां व्याकुल होकर विलाप करने लगीं। अयोध्याके रहनेवाले सब लोग अपने अपने घरोंमें रोने लगे कि धर्मकी मर्यादा, गुण तथा रूपके स्थान और सूर्यवंशके सूर्य आज अस्त हो गये।

गारी सकल कैकइहि देहीं। नयनबिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आये सकल महामुनि ग्यानी॥

सब नगरनिवासी केकयीको गालियां दे रहे हैं, जिसने संसारको नेत्र-विहीन कर दिया! इस प्रकार विलाप करते हुए रात बीत गयी और सब ज्ञानवान महामुनि वहां आये।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समयसम कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥१५७॥

तब वशिष्ठ मुनिने समयानुसार अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञानके प्रकाशसे सबका शोक दूर किया।

तेल नाव भरि नृपतनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥

तेलसे नाव भरवाकर उसमें राजाका शरीर रख दिया। और फिर दूतोंको बुलाकर यह कहा कि जल्दी ही दौड़ो और तुम लोग भरतके पास जाओ। राजाके विषयका समाचार कहीं किसीसे भी मत कहना।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुरु बोलाय पठये दोउ भाई॥
सुनि मुनिआयसु धावन धाये। चले बेगि बरबाजि लजाये॥

भरतजीसे जा कर इतना ही कहना कि दोनों भाइयोंको गुरुने बुला भेजा है ? मुनिकी आज्ञा सुनकर दूत दौड़ चले। वे इतनी जल्दी चले कि उन्हें देखकर श्रेष्ठ घोड़े भी लजाते थे।

अनरथु अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होहि भरत कह तब ते॥
देखहिं राति भयानकसपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥

यहां अयोध्यामें जबसे अनर्थ होना आरंभ हुआ, तबसे भरतको वहां (ननिहालमें) बुरे शकुन होने लगे। उन्हें रातमें भयंकर स्वप्न दिखलायी देते थे और जागनेपर वे उनके संबंधमें करोड़ों तरहकी बुरी कल्पनाएँ करते थे।

बिप्र जँवाइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधिनाना॥
माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

प्रति दिन ब्राह्मण-भोजन कराके दान देते और अनेक तरहसे शिवजीका अभिषेक करते थे। शिवजीको मनाकर अपने हृदयमें माता, पिता, भाई और कुटुम्बी, सबकी कुशलता मांगते थे।

दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुरु अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ॥१५८॥

इस प्रकार भरतजी मनमें सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुकी आज्ञा कानों सुनकर भरतजी गणेशजीको मनाकर बिदा हुए।

चले समीरबेग हय हांके। नाघत सरित सैल बन बांके॥
हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियं जाउँ उड़ाई॥

वे हवाकी भांति तेज चलनेवाले घोड़ोंको हांकते और नदी, पर्वत और विकट जंगलोंको पार करते हुए चल दिये। उनके हृदयमें बड़ा शोक था और कुछ न अच्छा लगता था। वे अपने जीमें ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जावें।

एक निमेष बरषसम जाई। एहि बिधि भरत नगरु नियराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा॥

एक एक निमेष वर्षके समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी अयोध्याके समीप आये। नगरमें भीतर जानेके समय उन्हें अशकुन होने लगे। बुरे स्थानमें बैठकर कौए बुरी तरह भयंकर शब्द करने लगे।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरतमनु सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥

गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे। इनकी बोली सुन सुनकर भरतजीके मनको बड़ी पीड़ा होती थी। नदी, तालाब, वन और बाग, सब कान्तिहीन (फीके) हो रहे थे। अयोध्यापुरी विशेष भयंकर लगती थी।

खग मृग हय गय जाहिं न जोये। राम-बियोग-कुरोग बिगोये॥
नगर-नारि-नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥

पक्षी, हिरन, हाथी, घोड़े देखे नहीं जाते थे। श्रीरामचन्द्रजीके वियोगरूपी बुरे रोगने उन्हें सता रखा था! नगरके स्त्री-पुरुष, सब बहुत दुःखी थे मानों सभीने अपनी सब सम्पत्ति हार दी हो।

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गँवहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं भय बिषादु मन माहिं॥१५६॥

नगर-निवासी मिलते थे, पर वे कुछ कहते न थे, दण्डवत् करके चुपचाप चले जाते थे। मनमें भय और शोक होनेके कारण भरतजी किसीसे कुशल न पूछ सकते थे।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबि-कुल-जलरुह-चंदिनि॥

बाजार और सड़कें देखी नहीं जातीं मानों नगरमें दशों दिशाओंमें दावाग्नि लग रही हो। पुत्रको आता हुआ सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके लिये चांदनीके समान केकयी प्रसन्न हुई।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहि भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनजबनु मारा॥

वह आरती सजाकर प्रसन्नतासे उठ दौड़ी और द्वारपर ही पुत्रसे मिलकर घर ले आयी। भरतजीने देखा कि परिवार दुःखी हो रहा है मानों कमलोंके वनपर पाला पड़ गया हो।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारे। पूछति नैहर कुसल हमारे॥

केकयी इस प्रकार आनन्दित हो रही है मानों वनमें आग लगाकर भीलनी प्रसन्न हो। पुत्रको शोकित और मनमलीन देखकर केकयी पूछने लगी कि मेरे पिताके घर तो कुशल है?

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज-कुल-कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहां सब माता। कहँ सिय रामु लषन प्रियभ्राता॥

भरतजीने वहांकी सब कुशलता कह सुनायी और फिर अपने कुटुम्बकी कुशल-भलाई पूछी। यह बतलाओ कि पिताजी कहां हैं और सब माताएँ कहां हैं? सीताजी, श्रीरामचन्द्रजी और प्यारे भाई लक्ष्मणजी कहां हैं?

दो०—सुनि सुतबचन सनेहमय कपटनीर भरि नयन॥
भरत-स्रवन-मन-सूल सम पापिनि बोली बयन॥ १६०॥

पुत्रके प्रेमभरे हुए वचन सुनकर और आंखोंमें कपटके आंसू भरकर पापिनी केकयी भरतजीके कानों और मनके लिये शूलके समान ये वचन कहने लगी।

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुर-पति-पुर पगु धारेउ॥

हे पुत्र, मैंने सब बात संभाल ली है। बेचारी मंथरा सहायक हुई। दैवने बीचमें कुछ काम बिगाड़ दिया और वह यह कि राजा स्वर्गवासी हो गये।

सुनत भरतु भये बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरिनादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥

सुनते ही भरतजी शोकके वशमें हो गये मानों सिंहकी गर्जनासे हाथी सहम गया हो। हा पिता! हा पिता! हा पिता! पुकारकर भरतजी अत्यन्त व्याकुल होकर पृथिवीपर गिर पड़े।

चलत न देखन पायेउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे संभारी। कहु पितुमरन हेतु महतारी॥

अंतकालमें आपको नहीं देख पाया! हा पिता, आपने मुझे श्रीरामचन्द्रजीको नहीं सौंप दिया! फिर भरतजी धीरज रखकर, सँभलकर उठ बठे और पूछने लगे कि हे माता, पिताके मरनेका कारण बतलाओ।

सुनि सुतबचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु ते सबु आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदितमन बरनी॥

पुत्रके वचन सुनकर केकयी कहने लगी मानों घाव लगाकर पीछे उसमें विष मिला रही हो। दुष्ट और कठोर केकयीने प्रसन्न मनसे अपनी सब करतूत आरंभसे कह सुनायी।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम-बन-गौनु।
हेतु अपनपउ जानिजिय थकित रहे धरि मौनु॥ १६१॥

श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना सुनकर भरतजीको पिताका मरण भूल गया और उसका कारण अपनेको ही हृदयमें जानकर चुप होकर थकित रह गये।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति॥
तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढ़इ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू॥

पुत्रको व्याकुल देखकर केकयी समझाने लगी मानों जलेपर नमक लगा रही हो। हे पुत्र, राजा शोक करनेयोग्य नहीं हैं। जैसे उनके बड़े पुण्य थे वैसे ही उन्होंने भोग भी भोगे।

जीवत सकल जनम फल पाये। अंत अमरपति-सदन सिधाये॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥

जीतेजी उन्होंने जन्म पानेके सारे फल पा लिये और अन्तमें देवताओंके स्वामी इन्द्रके धामको सिधार गये। ऐसा समझकर शोक छोड़ दो और समाजसमेत अयोध्यामें रा करो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भांति कुल नासा॥

केकयीके इन सुन्दर वचनोंको सुनकर राजकुमार भरतजी सहम गये मानों पके हुए फोड़ेसे अङ्गार छू गया हो। धीरज रखकर वे लम्बी सांस खींचने लगे और कहने लगे कि अरी पापिनि, तूने सब प्रकार कुलका नाश कर दिया।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीनजियन निति बारि उलीचा॥

यदि तेरी अत्यन्त नीच वासना ऐसी ही थी तो जन्म देनेके साथ ही मुझे क्यों नहीं मार डाला? तूने पेड़को काटकर पत्तोंको पानी दिया है और मछलियोंके जीनेके लिये पानीको बाहर निकाल दिया है।

दो०—हंसबंसु दसरथु जनकु राम लषन से भाइ॥
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥ १६२॥

सूर्यवंशके समान कुल, दशरथजीसे पिता और श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीसे मेरे भाई हुए; परन्तु हे माता, मेरी माता तू हुई! ब्रह्मासे कुछ भी वश नहीं चलता।

जबतैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयउ॥
बर मांगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा॥

अरी कुमति, जबसे यह बुरा विचार तेरे हृदयमें हुआ, तेरा हृदय टुकड़े

टुकड़े क्यों नहीं हो गया ? वर मांगते हुए मनको दुःख नहीं हुआ, जीभ नहीं गल गयी और मुँहमें कीड़े नहीं पड़ गये !

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

राजाने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ! मरनेके समय दैवने उनकी बुद्धिका हरण कर लिया था ! दैवने भी स्त्रीके हृदयकी गतिको नहीं जान पाया। उसका हृदय सब कपट, पाप और अवगुणोंका स्थान होता है।

सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीयसुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं॥

राजा सीधे, सुशील और धर्ममें तत्पर थे। वे भला स्त्रीके उस स्वभावको कैसे जान सकते थे ? संसारमें ऐसा कौन जीवजन्तु है जिसे श्रीरामचंद्रजी प्राणोंके समान प्यारे नहीं हों।

भे अति अहित राम तेउ तोही। को तूं अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुह मसि लाई। आंखि ओट उठि बैठहि जाई॥

वही श्रीरामचंद्रजी तेरे लिये भारी शत्रु हो गये ! मुझे सत्य बतला कि तू कौन है ? तू जो कुछ है सो है। मुंह काला करके उठ और जाकर आंखसे ओझल होकर बैठ !

दो०—राम-बिरोधी-हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥ १६३॥

दैवने मुझे श्रीरामचंद्रजीसे विरोध करनेवाले हृदयसे उत्पन्न किया है। मेरे समान पापी और कौन है ? मैं तुझे व्यर्थ ही कुछ कहता हूं।

सुनि सत्रुघन मातुकुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसरु कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥

माताकी दुष्टता सुनकर क्रोधसे शत्रुघ्नका शरीर जलने लगा, परन्तु उनका कुछ वश न चलता था। उसी समय वहां कूबरी मंथरा तरह तरहके गहनों और कपड़ोंसे अपनेको सजाकर आयी।

लखि रिस भरेउ लषन-लघु-भाई। बरत अनल घृतआहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुंह भर महि करति पुकारा॥

लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्न उसे देखकर क्रोधमें भर गये मानों जलती हुई अग्निमें घीकी आहुति पड़ गयी हो। उन्होंने कूबरीके कूबरमें ताककर उछलकर एक लात मारी जिससे वह चिल्लाती हुई मुंहके बल पृथिवीपर गिर पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलितदसन मुख रुधिरप्रचारू॥
आहि दइव मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥

कूबर टूट गया, कपाल फट गया, दांत टूट गये और मुंहसे रक्त बहने लगा। वह रोती हुई कहने लगी—हाय दैव, मैंने क्या बिगाड़ा है? अच्छा करते हुए मुझे बुरा फल मिला।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥

सुनते ही उसे नखसे लेकर चोटीतक खोटा जानकर शत्रुघ्न उसे शिरके बाल पकड़ पकड़कर घसीटने लगे, परन्तु दयानिधान भरतजीने उसे छुड़ा दिया और फिर दोनों भाई कौशल्याके पास गये।

दो०—मलिनवसन बिबरन बिकल कृस सरीरु दुखभारु।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन मानहुँ हनी तुसारु॥ १६४॥

कौशल्याजीके कपड़े मैले हो रहे थे, रंग फीका हो गया था, दुःखके बोझसे उनका शरीर दुबला हो रहा था और वे अत्यन्त व्याकुल हो रही थीं, मानों सोनेके कल्पवृक्षकी सुन्दर बेलिके वनको पाला मार गया हो।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई॥
देखत भरतु बिकल भये भारी। परे चरन तनदसा बिसारी॥

भरतको देखते ही माता कौशल्या उठ दौड़ीं और चक्कर आ जानेसे वे मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ीं। देखते ही भरतजी अत्यन्त व्याकुल हुए और अपने शरीरकी दशा भूलकर चरणोंमें पड़ गये।

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामलषन दोउ भाई॥
केकइ कत जनमी जग मांझा। जौं जनमि त भइ काहे न बांझा॥

वे कहने लगे—हे माता, पिताजी कहां हैं? उन्हें मुझे दिखलाओ। सीताजी और दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी कहां हैं? संसारमें केकयीने क्यों जन्म लिया? यदि जन्म ही लिया था तो बांझ क्यों नहीं हुई?

कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजसभाजन प्रिय-जन-द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥

जिसने कुलके कलंक, अपयशके पात्र और प्रियजनोंके द्रोही मुझे जन्म दिया! तीनों लोकोंमें मेरे समान अभागा कौन है, जिसके कारण ही हे माता, तुम्हारी ऐसी दशा हुई है!

पितु सुरपुर बन रघु-कुल-केतू । मैं केवल सब अनरथहेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु-बन-आगी । दुसह दाहु दुख-दूषन-भागी ॥

पिताजी देवलोकको गये और रघुकुलकी पताकारूप श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये—इस सब अनर्थका कारण केवल मैं ही हूं! मुझे धिक्कार है! बांसके वनके लिये मैं आग हुआ। मैं दुःसह पीड़ा, दुःख और दोषोंका भागी हुआ।

दो०—मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥ १६५ ॥

भरतजीके कोमल वचन सुनकर फिर कौशल्या माता सँभलकर उठीं और उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। वे अपने नेत्रोंसे आंसू गिराने लगीं।

सरल सुभाय माय हिय लाये । अतिहित मनहुँ राम फिरि आये ॥
भेंटेउ बहुरि लषनु-लघु-भाई । सोक सनेह न हृदय समाई ॥

सीधे स्वभावसे माताने उन्हें बड़े प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया मानों श्रीरामचन्द्रजी लौट आये हों। फिर लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्नको उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उनके हृदयमें शोक और प्रेम समाता न था।

देखि सुभाउ कहत सब कोई । राममातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदुबचन उचारे ॥

उन्हें देखकर स्वभावसे ही सब कोई कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीकी माता ऐसी क्यों न हों? माता कौशल्याने भरतजीको गोदमें बिठलाया और आंसू पोंछकर वे ये कोमल वचन कहने लगीं…

अजहुँ बच्छु बलि धीरजु धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल-करम-गति अघटित जानी ॥

हे वत्स, मैं बलैयां लेती हूं! तुम अब भी धीरज धरो और कुसमय समझकर शोक दूर करो। इसे काल और कर्मकी असाधारण गति जानकर अपने हृदयमें हानि और ग्लानि मत मानो।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥

हे पुत्र, किसीको भी दोष मत दो। मुझे दैव ही सब प्रकार प्रतिकूल हुआ है। इतना दुःख पड़ जानेपर भी यदि मुझे जीवित रखा है तो अभी कौन जानता है, उसे क्या अच्छा लग रहा है?

दो०—पितुआयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥ १६६ ॥

हे पुत्र, पिताजीकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीने गहने और कपड़े त्याग दिये और पेड़ोंकी छालके कपड़े पहिन लिये। इससे उनके हृदयको विस्मय और हर्ष, कुछ भी नहीं हुआ।

मुख प्रसन्न मनु राग न रोषू। सबकर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम-चरन-अनुरागी॥

उनका मुख प्रसन्न था। मनमें न अनुराग था और न क्रोध। सबको सब प्रकार संतोष दिलाकर श्रीरामचन्द्रजी वनको चल दिये। यह सुनते ही सीताजी भी उनके साथ लग गयीं। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुराग होनेसे किसी तरह भी वे नहीं रहीं।

सुनतहि लषनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

सुनते ही लक्ष्मणजी भी उठकर साथमें चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीने उन्हे रखनेका यत्न किया, परन्तु वे रुके नहीं। फिर श्रीरामचन्द्रजी सबको शिर नवाकर सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणसमेत चल दिये।

राम लषन सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न संग न प्रान पठाये॥
यह सबु भा इन्ह आंखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु प्रान अभागे॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और सीताजी वनको चले गये! उनके साथ न तो मैं ही गयी और न अपने प्राणोंको ही भेजा। यह सब मेरी इन आंखोंके आगे हुआ, फिर भी इन अभागे प्राणोंने शरीर नहीं छोड़ा।

मोहि न लाज निजनेहु निहारी। रामसरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस-समाना॥

मुझे अपना प्रेम देखकर लज्जा भी नहीं आ रही है, क्योंकि मैं श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्रकी माता हूं। भलीभांति जीना और मरना तो राजा जानते थे। मेरा हृदय तो सौ वज्रोंके समान है।

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरतसहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोकनिवासु॥ १६७॥

कौशल्याके वचन सुनकर भरतसमेत सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा मानों राजमहल शोकका निवासस्थान हो।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भांति अनेक भरत समुझाये। कहि बिबेकमय बचन सुनाये॥

भरतजी और शत्रुघ्न दोनों भाई व्याकुल होकर विलाप करने लगे।

कौशल्या माताने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उन्होंने भरतजीको बहुत तरहसे समझाया और ज्ञानसे भरी हुई बातें कहकर सुनायीं।

भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई॥
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुगपानी॥

पुराणों और वेदोंकी सुन्दर कथाएँ कहकर भरतजीने भी सब माताओंको समझाया, फिर दोनों हाथ जोड़कर भरतजी छलरहित, पवित्र, सरल और सुन्दर वाणी बोले—

जे अघ मातु-पिता-सुत मारे। गाइगोठ महि-सुर-पुर जारे॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥

जो पाप माता, पिता और पुत्रको मारने और गोशाला एवं ब्राह्मणोंके नगरको जलानेसे होते हैं, जो पाप स्त्री और बालककी हत्या करने तथा मित्र और राजाको विष देनेसे होते हैं,

जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन-भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

मन, वाणी और कर्मसे होनेवाले जितने पातक और उपपातक हैं, जिन्हें विद्वान् कहा करते हैं, हे माता, यदि इसमें (राम-वनवासमें) मेरा मत रहा हो तो वे सब पातक, हे दैव, मुझे लगें।

दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरन भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥१६८॥

हे माता, यदि इसमें मेरी सम्मति हो तो हे दैव, मुझे उन्हीं मनुष्योंकी गति दो जो भगवान विष्णु और शिवके चरण छोड़कर घोर भूत-प्रेतोंको भजते हैं।

बेचहिं बेद धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेदबिदूषक बिस्वबिरोधी॥

जो वेदों (ज्ञान) को बेचते हैं, धर्मको दुह लेते हैं, जो चुगली करनेवाले पराये पापोंको कह देते हैं, जो कपटी, दुष्ट, कलहप्रिय, क्रोधी, वेदकी निन्दा करनेवाले, जगत्के विरोधी—

लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावउं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी येहु संमत मोरा॥

लोभी, लम्पट, लोलुप और चालाक हैं, और जो दूसरोंकी स्त्रियां और

दूसरोंका धन ताका करते हैं, हे माता ! यदि इसमें मेरी सम्मति हो तो मैं उन सबकी घोर गतिको पाऊं।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजसु सुहाई॥

जिन्होंने सत्संगमें प्रेम नहीं किया और जो अभागे परमार्थके मार्गसे विमुख हैं, जो मनुष्यका शरीर पाकर भगवानका भजन नहीं करते और जिन्हें भगवान विष्णु और शिवका सुयश नहीं सुहाता,

तजि स्रुतिपंथु बामपथु चलहीं। बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥

जो वेदका मार्ग छोड़कर उलटे मार्गसे चलते हैं और जो ठग भेष बनाकर संसारको धोखा देते हैं, हे माता ! यदि मैं इसका भेद जानता होऊँ तो हे शिव, आप मुझे उन सबकी गति दीजिये।

दो०—मातु भरत के बचन सुनि सांचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥१६६॥

सत्य, सरल और स्वभावसे कहे हुए भरतजीके वचन सुनकर माता कहने लगीं कि हे पुत्र ! तुम मन, वाणी और शरीरसे, सब प्रकार सर्वदा श्रीरामचन्द्र-जीको प्यारे हो।

राम प्रानहुँ तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रानहुँतें प्यारे॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारिबिरागी॥

श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे प्राणोंके भी प्राण हैं और तुम श्रीरामचन्द्रजीको प्राणोंसे भी प्यारे हो। चाहे चन्द्रमासे विष टपकने लगे, हिम आग गिराने लगे, जलचर जीव जलसे विरक्त हो जावें,

भये ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

और चाहे ज्ञान हो जानेपर भी मोह न दूर हो; परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके विरुद्ध तुम नहीं हो सकते। संसारमें जो लोग श्रीरामचन्द्रजीके वनगमनमें तुम्हारी सम्मति बतलाते हैं वे स्वप्नमें भी सुख और सद्गति नहीं पा सकते।

अस कहि मातु भरतु हिय लाये। थन पय स्रवहिं नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भांती। बैठेहि बीति गई सब राती॥

ऐसा कहकर माताने भरतजीको हृदयसे लगा लिया; उनके स्तनोंसे दूध

बहने लगा और नेत्रोंमें जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए बैठे ही बैठे सब रात बीत गयी।

बामदेव बसिष्ठ तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥
मुनि बहु भांति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचनु सुदेसे॥

तब वामदेव और वशिष्ठ मुनि आये। उन्होंने मंत्रियों और सब महाजनोंको बुलाया। मुनिने परमार्थ तत्वसे भरे हुए शुभ वचन कहकर भरतजीको बहुत तरहसे उपदेश दिया।

दो०—तात हृदय धीरजु धरहु करहु जो अवसरु आजु।
उठे भरत गुरुबचन सुनि करन कहेउ सबु काजु॥१७०॥

उन्होंने कहा—हे तात, अपने हृदयमें धीरज रखो और वह करो जिसे करनेका आज अवसर है। गुरुके वचन सुनकर भरतजी उठे और सब कार्य होनेकी आज्ञा दी।

नृपतनु बेदबिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा॥
गहि पगु भरत मातु सब राखी। रहीं रामदरसन अभिलाखी॥

वेदविधिके अनुसार राजाके शरीरको स्नान कराया गया। विमान बहुत ही विचित्र बनाया गया। भरतने चरणोंको पकड़कर सब माताओंको रोका जो श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन पानेकी अभिलाषासे रह गयीं।

चंदन अगरु भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाये॥
सरजुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई॥

चंदन और अगरके बहुतसे गट्ठ और असंख्य प्रकारके बहुतसे सुगंधित पदार्थ आये। सरयू नदीके किनारे रचकर सुन्दर चिता बनायी मानों वह स्वर्गकी सीढ़ी हो।

एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥

इस प्रकार भरतजीने सब दाहक्रिया की और विधिपूर्वक स्नान करके तिलांजुलि दी। स्मृतियों, सब वेदों और पुराणोंको शोधकर भरतजीने दशगात्रका विधान पूरा किया।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भांति सब कीन्हा॥
भये बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥

मुनिवर वशिष्ठने जहां जैसी आज्ञा दी वहां सब वैसा ही हजार तरह-

से किया। शुद्ध हो जानेपर भरतजीने सब दान दिये। गाय, घोड़ा, हाथी आदि सब तरहकी सवारियां,

दो०—सिंहासनु भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम ॥१७१॥

सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथिवी, धन और महल—सब भरतजीने दिये जिन्हें पाकर ब्राह्मण पूर्ण-काम तृप्त हो गये।

[अवधमें राजसभा]

पितुहित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिन सोधि मुनिबर तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥

पिताके कल्याणके लिये भरतजीने जैसी क्रिया की वह लाख मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती। फिर शुभ दिन विचारकर मुनिवर वशिष्ठ आये। उन्होंने मंत्रियों और सब महाजनोंको बुलाया।

बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय बचन उचारे॥

सब राजसभामें जाकर बैठे और भरत, शत्रुघ्न, दोनों भाइयोंको बुला भेजा। वशिष्ठजीने भरतजीको अपने पास बिठलाया और नीति और धर्मसे परिपूर्ण वचन कहने लगे।

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरम ब्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥

कुटिला केकयीने जैसी करतूत की, वह सब कथा मुनिवर वशिष्ठने पहिले कह सुनायी। फिर उन्होंने राजाके धर्मव्रत और सत्यकी प्रशंसा की जिन्होंने शरीर छोड़कर अपना प्रेम निबाहा।

कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लषन-सिय-प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनिग्यानी॥

श्रीरामचन्द्रजीका गुण, शील और स्वभाव कहते कहते मुनिराज वशिष्ठके नेत्रोंमें जल छा गया और उनका शरीर पुलकायमान हो गया। फिर शोक और प्रेममें डूबे हुए ज्ञानी मुनिने लक्ष्मणजी और सीताजीकी प्रीतिका वर्णन किया।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥१७२॥

मुनिराज वशिष्टने दुःखी होकर कहा कि हे भरत, सुनो। होनहार प्रबल है। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, सब विधाताके हाथमें है।

अस बिचारि केहि देइय दोषू। व्यरथ काहि पर कीजिय रोषू॥
तात बिचार करहु मन माहीं। सोचजोग दसरथ नृप नाहीं॥

ऐसा विचारकर दोष किसे दिया जाय और व्यर्थ ही किसपर क्रोध किया जाय? हे तात, मनमें विचार करो। राजा दशरथ शोक करनेयोग्य नहीं हैं।

सोचिय बिप्र जो बेदबिहीना। तजि निज धरम बिषय लयलीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रानसमाना॥

उस ब्राह्मणका शोक करना चाहिये जो वेदविहीन हो और अपना धर्म छोड़कर विषयोंमें लवलीन रहा हो। उस राजाको शोक करना चाहिये जो नीति नहीं जानता हो और जिसे अपनी प्रजा प्राणोंके समान प्यारी न हो।

सोचिय बयसु कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिय सूद्र बिप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ग्यानगुमानी॥

उस वैश्यका शोक करना चाहिये जो धनवान होकर कृपण हो, जो चतुर न हो और जो न अतिथियों और शिवजीका भक्त हो। उस शूद्रका शोक करना चाहिये जो ब्राह्मणका अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, प्रतिष्ठा चाहनेवाला और ज्ञानका अभिमानी हो।

सोचिय पुनि पतिबंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहिं गुरुआयसु अनुसरई॥

फिर, उस स्त्रीका शोक करना चाहिये जो पतिसे छल करती हो, दुष्टा हो, कलह पसन्द करती हो और स्वेच्छाचारिणी हो। उस ब्रह्मचारीका शोक करना चाहिये जो अपना व्रत तोड़ दे और गुरुजीकी आज्ञाका अनुसरण नहीं करे।

दो०—सोचिय गृही जो मोहबस करइ करमपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग॥१७२॥

उस गृहस्थका शोक करना चाहिये जो मोहके वशमें होकर कर्ममार्गको छोड़ देवे। उस यतीका शोक करना चाहिये जो प्रपंचोंमें लगा रहता हो और विवेक एवं वैराग्यसे रहित हो।

बैखानस सोइ सोचन जोगू। तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि-जनक-गुरु-बंधु-बिरोधी॥

शोक करनेयोग्य वह तपस्वी है जिसे तप छोड़कर भोग अच्छा लगता हो। शोक उसका करना चाहिये जो चुगली करनेवाला, अकारण ही क्रोधित हो जानेवाला और माता, पिता, गुरु और भाई सबका विरोधी हो।

सर्बबिधि सोचिय परअपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरिजन होई॥

उसका सब प्रकार शोक करना चाहिये जो दूसरोंको हानि पहुँचानेवाला, अपना शरीर पालनेवाला तथा भारी निर्दयी हो। सब प्रकार शोक करनेयोग्य वही है जो छल छोड़कर भगवानका भक्त नहीं हो जाता।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ-गुन-गाथा॥

राजा दशरथ शोक करनेयोग्य नहीं हैं। चौदहों लोकोंमें उनका प्रभाव प्रकट है। हे भरतजी, तुम्हारे पिता जैसे थे वैसा राजा न तो हुआ, न है और न अब होगा। ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, दिशाओंके स्वामी, सब राजा दशरथके गुणोंकी कथाएँ कहते हैं।

दो०—कहहु तात केहि भांति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लषन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥१७४॥

हे तात, कहो, उसकी बड़ाई कोई किस प्रकार करे जिसके श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, शत्रुघ्न और स्वयं तुम सरीखे पवित्र पुत्र हैं?

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी॥
यहु सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राजरजायसु करहू॥

राजा सब प्रकार बड़े भाग्यवान थे। उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। यह सुनकर और समझकर शोकको दूर करो और राजाकी आज्ञा शिरोधार्य कर पालन करो।

राय राजुपदु तुम्ह कहँ दीन्हा। पितावचन फुर चाहिय कीन्हा॥
तजे रामु जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ रामबिरहागी॥

राजाने तुमको राजगद्दी दी है। पिताका वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये। जिन्होंने अपने वचनके ही लिये श्रीरामचन्द्रजीको छोड़ दिया और फिर श्रीरामचन्द्रजीकी विरहाग्निमें अपना शरीर त्याग दिया।

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचनु प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूपरजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भांति भलाई॥

राजाको अपने वचन प्यारे थे। प्राण प्यारे नहीं थे। हे तात, अपने पिताके वचनोंको मानो। राजाकी आज्ञा शिरोधार्य कर पूरी करो, इसीमें तुम्हारी सब प्रकार भलाई है।

परसुराम पितुअग्या राखी। मारी मातु लोग सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितुअग्या अघ अजसु न भयऊ॥

परशुरामने अपने पिताजीकी आज्ञाको माना और अपनी माताको मार डाला, इसके साक्षी सब लोग हैं। राजा ययातिको उनके पुत्रने अपनी युवावस्था दे दी परन्तु पिताकी आज्ञा होनेसे उसे पाप और अपयश नहीं हुआ।

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति अयन॥१७५॥

अनुचित और उचितका विचार छोड़कर जो पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं वे सुख और सुयशके पात्र हैं और देवताओंके स्वामी इंद्रके भवनमें निवास करते हैं।

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोक परिहरहू॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू॥

राजाका वचन अवश्य सत्य करो, प्रजाका पालन करो और शोकको छोड़ दो। इससे राजाको स्वर्गमें संतोष मिलेगा और तुमको पुण्य और सुयश होगा, दोष नहीं।

बेदबिहित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचनु हित जानी॥

वेदमें कहा गया है और सर्वसम्मत भी है कि जिसको पिता देता है वही राजतिलक पाता है। मेरा वचन अपने लिये हितकारी जानकर मानो—राज्य करो और ग्लानि छोड़ दो।

सुनि सुखु लहब रामबैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी॥

श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा राज्य करना सुनकर सुख पायेंगे और कोई पंडित भी अनुचित नहीं कहेगा। कौशल्या आदि सब माताएँ भी प्रजाके सुखसे सुखी होंगी।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥

वे तुम्हारे और श्रीरामचन्द्रजीके मर्मको जानती हैं, इसलिये वे तुमसे सब प्रकार भला मानेंगी। श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर राज सौंप देना और सुन्दर प्रेमके साथ सेवा करना।

दो०—कीजिय गुरु आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस तस तब करब बहोरि॥ १७६॥

मंत्री हाथ जोड़कर भरतजीसे कहने लगे कि गुरुजीकी आज्ञाका अवश्य पालन कीजिये। श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर उस समय फिर जैसा उचित हो वैसा कीजियेगा।

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुरुआयसु अहई॥
सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय बिषादु कालगति जानी॥

धीरज रखकर कौशल्या कहने लगीं कि गुरुकी आज्ञा हित करनेवाली और पवित्र है। उसीमें अपना कल्याण समझकर उसका आदर करो और पालन करो तथा कालकी गति जानकर शोक छोड़ दो।

बन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम्ह एहि भांति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥

श्रीरामचन्द्रजी वनमें हैं और राजा स्वर्गमें, हे पुत्र! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो! कुटुम्बियों, प्रजाजनों, मंत्रियों और सब माताओं—सबको, हे पुत्र एक तुम्हीं सहारे हो!

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुरुआयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुर–जन–दुख हरहू॥

दैवकी प्रतिकूलता और कालकी कठोरता देखकर धीरज रखो। माता तुम्हारी बलैयां लेती है। गुरुजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उसीका अनुसरण करो और प्रजाका पालन कर नगरनिवासियोंके दुःखोंको दूर करो।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी। सील सनेह सरलरस सानी॥

भरतजीने गुरुकी आज्ञा और मंत्रियोंका अभिनन्दन सुना जो उनके हृदयको चंदनके समान हितकारी लगा। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलताके रससे सनी हुई माताकी कोमल वाणी सुनी।

छंद—सानी सरलरस मातुबानी सुनि भरत ब्याकुल भये।
लोचनसरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये॥

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीव सहजसनेह की॥

सरलताके रससे सनी हुई माताकी वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये, उनके कमलके समान नेत्रोंसे आंसू टपकने और हृदयमें वियोगके नये अंकुरको सींचने लगे। उस समय भरतजीकी वह दशा देखते ही सबको अपनी देहकी दशा भूल गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस स्वाभाविक प्रेमकी सीमाको सब लोग आदरके साथ सराहने लगे।

दो०—भरतु कमलकर जोरि धीर-धुरं-धर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं॥१७७॥

धीरधुरंधर भरतजी कमलके समान हाथ जोड़कर और धीरज रखकर मानों अमृतमें डुबाये हुए वचनोंसे सबको उचित उत्तर देने लगे।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥

गुरुजीने मुझे उत्तम उपदेश दिया है जो प्रजा और मंत्री, सर्वसम्मत है। माताने भी उचित ही समझकर आज्ञा दी है। उसे शिरोधार्य कर मैं अवश्य ही पालन करना चाहता हूं।

गुरु-पितु-मातु-स्वामि-हित-बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरमु जाइ सिर पातकभारू॥

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी हित-वाणी सुनकर और उसे भला समझकर प्रसन्न मनसे मानना चाहिये। वह उचित है या अनुचित, यह विचार करनेसे धर्म जाता है और शिरपर पापका बोझ बढ़ता है।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी के॥

आप लोग तो मुझे वही सरल सीख दे रहे हैं जिसके अनुसार आचरण करनेसे मेरा भला हो। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह समझता हूं तथापि हृदयको संतोष नहीं होता।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू॥

अब आप मेरी विनती सुन लीजिये और मेरी ओर देखकर सीख दीजिये। मैं आपको उत्तर देता हूं, यह अपराध क्षमा कीजिये। साधुजन दुःखी लोगोंके गुण और दोष नहीं गिनते।

दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बनु करन कहहु मोहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१७८॥

पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी वनमें हैं और आप मुझसे राज्य करनेके लिये कह रहे हैं, इसीमें क्या आप मेरा हित और अपना बड़ा कार्य जानते हैं ?

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्हि मातुकुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥

मेरा भला तो सीतापति श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेमें है, उसे दुष्टतासे माता कैकयीने हर लिया। मैंने अपने मनमें अनुमान करके देख लिया है कि और किसी उपायसे मेरा कल्याण नहीं।

सोकसमाजु राजु केहि लेखे। लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥

लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंके बिना देखे हुए यह शोकका समाज—राज किस गिनतीमें है ? वस्त्रोंके बिना भूषणोंका बोझ व्यर्थ है, ब्रह्मविचारके बिना वैराग्य व्यर्थ है,

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥

रोगी शरीर होनेसे बहुतसे भोग व्यर्थ हैं, भगवद्भक्तिके बिना जप और योग व्यर्थ हैं, जीवके बिना सुन्दर देह व्यर्थ है और श्रीरामचन्द्रजीके बिना मेरा सब व्यर्थ है।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ताबस कहहू॥

मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास चला जाऊँ। इसी एक बातमें मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप प्रेम और अज्ञानके वश होकर कह रहे हैं।

दो०—कैकेइसुअन कुटिल मति रामबिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधमु के राज॥१७९॥

कैकयीका पुत्र, दुष्टबुद्धि, श्रीरामचन्द्रजीके प्रतिकूल और लज्जाहीन मुझसे नीचके राज्यमें आप मोहके वश होकर ही सुख चाहते हैं।

कहउँ साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

मैं सच कहता हूँ, सुनकर आप सब लोग विश्वास कर लीजिये। राजा धर्मशील होना चाहिये। हठ करके आप मुझे जिस समय राज देंगे उसी समय पृथिवी रसातलको चली जायगी।

मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनबासू॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥

मेरे समान पापी और कौन है जिसके कारण सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको वनवास हुआ है? राजाने श्रीरामचन्द्रजीको वनवास दिया और वियोग होते ही स्वर्गको सिधार गये।

मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥

सब अनर्थोंका कारण मैं दुष्ट हूँ जो बैठा हुआ सावधानीके साथ सब बातें सुन रहा हूँ। श्रीरामचन्द्रजीके बिना निवासको देखकर भी ये प्राण संसारकी हँसी सहकर बने रहे!

राम पुनीत बिषयरस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदयकठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई॥

श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और विषयोंके रससे उदासीन हैं। लालची लोग पृथिवीके राज्यके भूखे होते हैं। अपने हृदयकी कठोरताको मैं कहांतक कहूं जिसने वज्रका भी निरादर करके बड़ाई पा ली!

दो०—कारन तें कारजु कठिन होइ दोषु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥ १८०॥

कारणसे कार्य कठिन होता है, इसलिये मेरा दोष नहीं है। हड्डियोंसे वज्र और पत्थरसे लोहा अधिक भयंकर और कठोर होता है। (केकयीका पुत्र होनेसे भरतजीका कारण केकयी है और भरतजी केकयीका कार्य है। भरतजी यह कहते हैं कि केकयीकी कठोरतासे मेरी कठोरता स्वभावतः अधिक होनी चाहिये, क्योंकि कारणसे काय कठिन होता है उसके लिये मैं दोषी नहीं हूं)

कैकेईभव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रियबिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥

केकयीसे उत्पन्न शरीरसे प्रेम करनेवाले ये नीच अभागे प्राण सन्तुष्ट हो लें। प्यारे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगमें भी यदि प्राण प्यारे लगे तो आगे अब बहुत देखना और सुनना है!

लषन-राम-सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू॥

लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको वन दिया और स्वर्ग भेजकर अपने पतिका भला किया। स्वयं वैधव्य और अपयश पाया और प्रजाको शोक और संताप दिया।

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥

मुझे सुख, सुयश और सुन्दर राज्य दिया। केकयीने सबका काम बनाया। इससे अच्छा अब मेरे लिये क्या होगा? उसपर भी आप राजतिलक देनेको कहते हैं!

कैकइजठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पांच कत करहु सहाई॥

संसारमें केकयीके पेटसे जन्म लेकर मेरे लिये यह कुछ अनुचित नहीं है। मेरी बात तो सब ब्रह्माने ही बना दी है, फिर उसमें प्रजा और पंच क्यों सहायता कर रहे हैं?

दो०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइअ बारुनी कहहु कवन उपचार॥ १८१॥

कोई आदमी ग्रहोंके फेरमें हो, फिर उसे सन्निपात भी हो गया हो, उसीको फिर बिच्छू डंक मार जाय—इतनेपर भी उसे मदिरा पिलाना, कहो कौनसी चिकित्सा है?

कैकइसुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथतनय राम-लघु-भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥

केकयीके पुत्रको मिलनेयोग्य संसारमें जो कुछ है वही मुझे चतुर देवने दिया है। राजा दशरथके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई होनेकी बढ़ाई ब्रह्माने मुझे व्यर्थ ही दी है।

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। रायरजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥

आप सब राजतिलक लगवानेको कहते हैं। इसके लिये राजाकी आज्ञा भी है और यह सबको अच्छा भी लगता है। मैं किस किसको किस प्रकार उत्तर दूं? जिसकी जैसी रुचि हो वह वैसा ही सुखसे कहे।

मोहि कु-मातु-समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं॥

कुमाता कैकयीसमेत मुझे छोड़कर, भला कहो, ऐसी भलाई किसने की है? मुझे छोड़कर चर और अचरमें कौन है जिसे सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंके समान प्यारे नहीं है।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू॥

जो बड़ी भारी हानि है वह सबको बड़ा लाभ मालूम होता है। मेरे दिन ही बुरे हैं, किसीको दोष नहीं है। आप सब संदेह, शील और प्रेमके वशमें हैं, इसलिये जो कुछ भी कहते हैं वह सभी उचित है।

दो०—राममातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेहबस मोरि दीनता देखि॥ १८२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माताका सुन्दर सरल चित्त है और उन्हें मुझपर विशेष प्रेम है। वे अपने स्वभावसे मेरे प्रेमके वशमें होकर और मेरी दीनता देखकर वैसा कह रही हैं।

गुरु बिबेकसागर जगु जाना। जिन्हहिं बिस्व कर-बदर-समाना॥
मो कहँ तिलकसाज सजसोऊ। भये बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥

संसार जानता है कि गुरु वशिष्ठजी विवेकके समुद्र हैं जिनके लिये सारा संसार हाथमें रखे हुए बेरके फलके समान है, वे भी मुझको राजतिलक देनेका साज सजते हैं। दैवके प्रतिकूल हो जानेपर सभी प्रतिकूल हो जाते हैं।

परिहरि रामसीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहु कींच तहां जहँ पानी॥

सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर संसारमें कोई न कहेगा कि इसमें मेरी सम्मति नहीं है। इसलिये सब कुछ मैं सुख मानकर सुनूंगा और सहूंगा। अन्तमें कीचड़ वहीं होता है जहां पानी हो।

डरु न मोहि जगु कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिं न सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियरामु दुखारी॥

मुझे इस बातका डर नहीं है कि संसार मुझे अधम कहेगा और न मुझे परलोकका ही सोच है। एक ही दुःसह दावाग्नि हृदयमें जल रही है कि मेरे कारण सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी दुःखी हुए।

जीवनु लाहु लषन भल पावा। सबु तजि रामचरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबरबन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥

लक्ष्मणजीने जन्म लेनेका लाभ अच्छा पाया कि सब छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मन लगाया। मेरा जन्म तो श्रीरामचन्द्रजीके वनवासके लिये हुआ है, फिर मैं अभागा झूठ ही क्यों पछताऊँ?

दो०—आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथपद जिय कै जरनि न जाइ॥ १८३॥

सबको शिर झुकाकर मैं अपनी कठोर दीनता निवेदन करता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके दर्शन किये बिना जीकी जलन न जायगी।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि आंक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

और कोई उपाय मुझे नहीं दिखलायी दिया। श्रीरामचन्द्रजीके बिना मेरे जीकी बात और कौन समझता है? मनमें केवल एक निश्चय यही हो रहा है कि मैं सबेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास चलूंगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥

यद्यपि मैं दुष्ट और अपराधी हूँ और मेरे ही कारण सब अनर्थ हुए हैं, तथापि जब श्रीरामचन्द्रजी मुझे सामने शरणमें आया हुआ देखेंगे तब सब अपराध क्षमा करके मुझपर विशेष कृपा करेंगे।

सीलु सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा—सनेह—सदन—रघुराऊ॥
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवकु जद्यपि बामा॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े शीलवान् हैं; उनका स्वभाव संकोची और अत्यन्त सीधा है; वे कृपा और स्नेहके धाम हैं, श्रीरामचन्द्रजीने कभी शत्रुका भी बुरा नहीं किया, फिर मैं तो यद्यपि प्रतिकूल हूँ, तथापि उनका बालक और सेवक हूँ।

तुम्ह पै पांच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी॥

इसलिये आप पंच लोग भी मेरा भला जानकर सुन्दर वाणीसे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये जिससे मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना भक्त समझकर श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याको फिर लौट आवें।

दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥१८४॥

यद्यपि कुमातासे मेरा जन्म हुआ है और मैं दुष्ट सदा ही दोषी हूँ, तथापि मुझे श्रीरामचन्द्रजीका भरोसा है कि वे अपना समझकर मुझे नहीं छोड़ेंगे।

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे॥
लोग बियोग-बिषम-बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥

भरतजीके वचन सबको प्यारे लगे मानों वे सब श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमरूपी अमृतमें मग्न हो गये हों। सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके वियोगरूपी कठोर विषसे जले हुए थे, वे मानों बीजसमेत मंत्र सुनते ही जाग उठे।

मातु सचिव गुरु पुर-नर-नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥
भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम-प्रेम-मूरति-तनु आही॥

माताएँ, मंत्री, गुरु, नगरकी स्त्रियां और पुरुष,सब प्रेमसे अत्यन्त विकल हो गये और बार बार प्रशंसा करके भरतजीसे कहने लगे कि आपका शरीर श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमकी मूर्ति है।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान रामप्रिय अहहू॥
जो पावँरु अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातुकुटिलाई॥

हे तात, हे भरत, जब आप श्रीरामचन्द्रजीको प्राणोंके समान प्यारे हैं तब आप ऐसा क्यों न कहेंगे? जो नीच अपनी मूर्खतासे माता केकयीकी दुष्टताका आपपर संदेह करता है,

सो सठ कोटिक-पुरुष-समेता। बसहि कलपसत नरकनिकेता॥
अहि-अघ-अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

वह दुष्ट करोड़ों पीढ़ियोंसमेत सौ कल्पपर्य्यन्त नरकमें वास करेगा। सर्पके पापों और अवगुणोंको सर्प-मणि नहीं ग्रहण करती। वह तो विषको दूर करती और दुःख और दरिद्रताको जलाती ही है।

दो०—अवसि चलिय बन राम जहँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोकसिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलंबनु दीन्ह ॥१८५॥

हे भरत, आपने अच्छी सलाह की है। जहां श्रीरामचन्द्रजी हैं वहां वनमें अवश्य चलना चाहिये। शोकके समुद्रमें डूबते हुए सब लोगोंको आपने यह आधार दिया है।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

सबको मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई जैसे मेघोंकी गर्जना सुनकर मोर और पपीहे प्रसन्न होते हैं। सवेरे चलनेका निर्णय अच्छी तरह जानकर भरतजी सबको प्राणोंके समान प्यारे हो गये।

मुनिहिं बंदि भरतहिं सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं ॥

मुनिकी वंदना कर और भरतजीको शिर नवाकर सब लोग बिदा माँग माँगकर अपने अपने घरको चल दिये। वे सब भरतजीके शील और प्रेमकी प्रशंसा करते जाते थे और कहते थे कि संसारमें भरतजीका जीवन धन्य है।

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू। को न चहइ जग जीवनु लाहू ॥

वे परस्पर कहने लगे कि यह तो बड़ा काम हुआ। सब लोग चलनेकी तैयारियां करने लगे। रखवालीके लिये घर रहनेको जिसे रखते वह यह समझता कि मानों उसकी गर्दन मार दी गयी हो। कोई कोई कहते थे कि रहनेके लिये किसीको भी मत कहो। संसारमें जीवनका लाभ कौन नहीं चाहता?

दो०—जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ॥१८६॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके सामने जाते जो सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई स्वभावतः सहायता नहीं करते वे सब जल जायँ!

[भरतका चित्रकूट-प्रयाण]

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन बिचारू। नगरु बाजि गज भवनु भंडारू ॥

घर घर तरह तरहकी सवारियां तैयार होने लगीं। सबको हृदयमें इस बातसे प्रसन्नता थी कि सवेरे ही प्रस्थान होगा। भरतजीने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े, हाथी, महल, भण्डार—

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलउं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पापसिरोमनि साइँ दोहाई ॥

और सब सम्पत्ति श्रीरामचन्द्रजीकी है। यदि उसकी रक्षाका यत्न किये बिना ही उसे छोड़कर चल दूं तो अंतमें मेरी भलाई नहीं होगी। स्वामीकी सौगंद खाकर कहता हूं कि मैं पापियोंका शिरोमणि कहलाऊंगा।

करइ स्वामिहित सेवकु सोई। दूखन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले॥

चाहे कोई करोड़ दोष ही क्यों न लगावे, परन्तु सेवक वही है जो स्वामीका हित करे। ऐसा विचारकर भरतजीने विश्वासी सेवकोंको बुलाया जो स्वप्नमें भी अपने धर्मसे विचलित नहीं हुए थे।

कहि सबु मरमु धरमु भल भाखा। जो जेहि लायक सो तहँ राखा॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राममातु पहँ भरत सिधारे॥

मर्मकी सब बातें बतलाकर भरतजीने उन सबको धर्मोपदेश किया और फिर जो जिस योग्य था उसे वहां नियुक्त कर दिया। रक्षकोंको नियुक्त कर और सब यत्न करके भरतजी श्रीरामचंद्रजीकी माता कौशल्याके पास गये।

दो०—आरत जननी जानि सबु भरत सनेहसुजान।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान॥ १८७॥

प्रेमको भलीभांति जाननेवाले भरतजीने सब माताओंको दुःखी जानकर पालकी और सुखपालकी सवारियां सजाकर तैयार करनेकी आज्ञा दी।

चक्क चक्कि जिमि पुर-नर-नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाये सचिव सुजाना॥

चकवा और चकवीके समान नगरके पुरुष और स्त्रियां, सब चाहते हैं कि सवेरा हो। वे सब हृदयमें बहुत व्याकुल हो रहे हैं। सब रात जागते हुए ही बीती और सवेरा हुआ। भरतजीने चतुर मंत्रियोंको बुलाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहिं राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥

मंत्रियोंसे भरतजीने कहा कि राजतिलकका सब सामान साथ लेते चलो। मुनि वनमें ही श्रीरामचंद्रजीका राजतिलक करेंगे। जल्दी चलनेकी आज्ञा सुनकर मंत्रियोंने प्रणाम किया और शीघ्र ही हाथी, घोड़ा और रथ, सबको सजाया।

अरुंधती अरु अगिनिसमाजू। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराजू॥
बिप्रबृंद चढ़ि बाहन जाना। चले सकल तप-तेज-निधाना॥

अपनी पत्नी अरुन्धती और अग्निहोत्रकी सामग्रीसमेत मुनिराज वशिष्ठजी रथपर चढ़कर पहिले चले। तप और तेजके स्थान सब ब्राह्मणोंके समूह वाहनों और गाड़ियोंपर चढ़कर चले।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहुँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

तरह तरहकी सवारियां सजाकर नगरके सब लोगोंने चित्रकूटके लिये प्रस्थान किया। सुन्दर पालकियोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनपर चढ़ चढ़कर सब रानियां बिदा हुईं।

दो०—सौंपि नगरु सुचि सेवकनि सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरतु दोउ भाइ ॥१८८॥

विश्वासी सेवकोंको नगर सौंपकर और आदरपूर्वक सबको आगे बिदा करके फिर भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई श्रीरामचंद्रजी और सीताजीके चरणोंको स्मरण कर चल दिये।

राम–दरस–बस सब नरनारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥

स्त्री और पुरुष, सब श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करनेकी इच्छाके वशमें हो रहे हैं मानों हाथी और हथिनियां पानीको देखकर चल दी हों। मनमें यह समझकर कि सीताजी और श्रीरामचंद्रजी वनमें हैं, छोटे भाई शत्रुघ्न समेत भरतजी पैदल ही जा रहे हैं।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निजडोली। राममातु मृदुबानी बोली ॥

भरतजीका यह प्रेम देखकर लोग प्रेममें भर गये और हाथी, घोड़े तथा रथ, सबको छोड़ छोड़ उतरकर पैरों चलने लगे। यह देखकर श्रीरामचंद्रजीकी माता पास जाकर और अपनी पालकी ठहराकर मीठी वाणीसे कहने लगीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ॥
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू ॥

हे पुत्र, माता बलैयां लेती है। तुम रथपर चढ़ो। न चढ़नेसे प्यारा परिवार दुःखी होगा। तुम्हारे पैदल चलनेसे सब लोग पैदल चलेंगे। शोकसे सब लोग दुबले हो रहे हैं, इसलिये पैदल रास्ता चलनेयोग्य नहीं हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई ॥
तमसा प्रथमदिवस करि बासू। दूसर गोमतितीर निवासू ॥

माताके वचनोंको शिरोधार्य कर और चरणोंमें शिर नवाकर दोनों भाई रथपर चढ़कर आगेको चले। पहिले दिन तमसा नदीके किनारे वास किया और दूसरा निवास गोमतीके किनारे हुआ।

दो०—पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग॥१८६॥

कोई दूध ही पीकर रहते, कोई फलाहार ही करते और कोई रात्रिको एक बार भोजन करके ही रह जाते। वे सब भूषण और भोग छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके लिये व्रत और नियम करने लगे।

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगवेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करइ सबिषादा॥

सई नदीके किनारे बसकर बड़े सवेरे सब लोग आगे चले और शृंगवेरपुरके समीप पहुँच गये। जब गुह निषादने सब समाचार सुने तब दुःखी होकर वह अपने मनमें विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपटभाउ मन माहीं॥
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत संग लीन्हि कटकाई॥

भरतजी वन जा रहे हैं, इसका कारण क्या है? इनके मनमें कुछ कपटभाव है। यदि हृदयमें कुटिलता नहीं होती तो संगमें सेना क्यों ले रखी है?

जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवनहानी॥

जानते हैं कि लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचन्द्रजीको मारकर सुखी होकर मैं अकंटक राज्य करूंगा। परन्तु भरतजीने अपने हृदयमें राजनीतिपर विचार नहीं किया। तब तो इन्हें कलंक ही था, परन्तु अब तो प्राणोंका नाश ही है।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरत अस करहीं। नहिं बिषबेलि अमिय फल फरहीं॥

सब देवता और दैत्य योद्धा इकट्ठे हो जावें, परन्तु संग्राममें श्रीरामचन्द्रजीको जीतनेवाला कोई नहीं है। भरतजी यदि ऐसा करते हैं तो क्या आश्चर्य है? विषकी बेलमें अमृतके फल नहीं लगते।

दो०—अस बिचारि गुह ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथबासहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु॥१६०॥

ऐसा विचारकर गुह निषादने अपनी जातिवालोंसे कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। मिलकर पकड़ लो, नौकाओंको डुबा दो और घाटोंको रोक लो।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

सावधान होकर घाटोंको रोक लो और सब लोग मरनेके लिये तैयारी करो। मैं भरतजीके सामने लोहा लूंगा और जीते जी गंगाजीको उतरने नहीं दूंगा।

समरु मरनु पुनि सुर-सरि-तीरा। रामकाजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइय मीचू॥

संग्राममें मरना और वह भी गङ्गाजीके किनारे! यह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है और शरीर तो क्षणभंगुर है। भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके भाई हैं और राजा हैं—में नीच मनुष्य हूं। बड़े भाग्यसे ही ऐसी मृत्यु मिलती है।

स्वामिकाज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहहुं भुवन दसचारी॥
तजउँ प्रान रघु-नाथ-निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥

स्वामीके कार्यके लिये रणक्षेत्रमें लड़ाई करूंगा और अपने यशसे चौदहों भुवनोंको उज्वल कर दूंगा अथवा श्रीरामचन्द्रजीके लिये प्राण त्याग दूंगा। मेरे दोनों हाथोंमें आनन्दके लड्डू हैं।

साधुसमाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महिभारू। जननी-जौबन-बिटप-कुठारू॥

साधुओंके समाजमें जिसकी गिनती नहीं है और श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंमें जिसकी प्रशंसा नहीं है, वह अपनी माताके यौवनरूपी वृक्षको नष्ट करनेके लिये कुल्हाड़ीके समान है। संसारमें जन्म लेकर वह पृथिवीका बोझ बनकर जीता है!

दो०—बिगतबिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मांगेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥ १९१॥

निषादोंके स्वामी गुहने शोकरहित होकर सबका उत्साह बढ़ाया और फिर श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण कर शीघ्र ही अपना धनुष, तरकस और कवच मांगा।

बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावहिं करषा॥

हे भाइयो, जल्दी ही सब तैयारी कर लो। मेरी आज्ञा सुनकर कोई कायरता न दिखलाना। सब आनन्दित होकर कहने लगे कि हे स्वामी, बहुत अच्छा! वे सब परस्पर एक दूसरेकी उमंग बढ़ाने लगे।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम-पद-पंकज-पनही। भाथा बांधि चढ़ाइन्हि धनुही॥

सब निषाद जोहार जोहारकर चल दिये। वे सब बड़े शूर हैं और उन्हें रणक्षेत्रमें लड़ाई बहुत भाती हं। श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंकी जूतियां स्मरण कर वे सब तरकस बांधकर धनुष चढ़ाने लगे।

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बांस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खांडे। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छांडे॥

कवच पहिनकर शिरपर लोहेकी टोपी रखने और फरसे,भाले और बरछियां आदि सुधारने लगे। कोई काई तलवार चलानेमें अत्यन्त कुशल थे। वे आकाश में कूद जाते थे मानों पृथिवी छोड़े हुए हों।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुहराउतहिं जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लेइ लेइ नाम सकल सनमाने॥

अपना अपना साज समाज बनाकर बुलाते ही सबने पहुँचकर जोहार किया! योद्धाओंको देखकर गुह निषादने समझा कि वे सब योग्य हैं। उन्होंने नाम ले लेकर सबका आदर किया।

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहिं॥ १६२॥

गुह निषादने कहा—भाइयो, आज मेरा बड़ा काम है, धोखा नहीं देना। यह सुनकर सब योद्धा क्रोधमें भरकर बोले—हे वीर, आप अधीर न होवें।

रामप्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउँ न पाछे धरहीं। रुंड-मुंड-मय मेदिनि करहीं॥

हे स्वामी, श्रीरामचन्द्रजीके प्रताप और आपके बलसे सारी सेनाको योद्धाशून्य और घोड़ारहित कर देंगे। जीते जी पैर पीछे नहीं रखेंगे और पृथिवीको रुण्डों और मुण्डोंसे भर देंगे।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छीक भइ बायें। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये॥

निषादोंके स्वामीने देखा कि अच्छा दल है। फिर उन्होंने कहा कि जुझाऊ ढोल बजाओ। यह कहते ही बाईं ओर छींक हुई। इसपर शकुन विचारनेवालोंने कहा कि क्षेत्र सुहावना है।

बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिय न होइहि रारी॥
रामहिं भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥

शकुन विचारकर एक वृद्ध कहने लगा कि भरतजीसे मेल होगा,

लड़ाई न होगी। भरतजी श्रीरामचन्द्रजीको मनाने जा रहे हैं। शकुन यह कह रहा है कि लड़ाई नहीं है।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझे। बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझे॥

सुनकर गुह निषाद कहने लगा कि बुड्ढा ठीक कहता है। मूर्ख मनुष्य सहसा काम करके फिर पछताते हैं। भरतजीका शील-स्वभाव समझे बिना और उन्हें बिना जाने लड़ाई करनेसे हितकी बड़ी हानि होगी।

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करिहउँ आइ॥१९३॥

हे योद्धाओ, तुम सब इकट्ठे होकर घाट घेर रखो और जाकर मैं उनसे मिलकर भेद लेता हूं। उनकी दशा समझकर कि वे शत्रु हैं या मित्र या उदासीन, फिर आकर वैसा उपाय करूंगा।

लखब सनेहु सुभाय सुहाये। बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराये॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मांगे॥

सुन्दर स्वभावसे प्रेमको पहिचान लूंगा। वैर और प्रीति छिपाये नहीं छिपती। ऐसा कहकर गुह निषाद भरतजीके लिये भेंट ले जानेकी तैयारी करने लगा और कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन, सबको मंगवाया।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाये। मंगलमूल सगुन सुभ पाये॥

पुरानी मोटी मछलियां भर भरकर कहार लोग यह भार ले आये। मिलनेका सब सामान सजाकर गुह निषाद मिलनेके लिये बिदा हुआ। उसे मङ्गलसूचक शुभ शकुन होने लगे।

देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दंडप्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥

दूरसे ही देखकर और अपना नाम कहकर गुह निषादने मुनीश्वर वशिष्ठजीको दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीका प्यारा समझकर मुनीश्वरने गुह निषादको आशीर्वाद दिया और भरतजीको समझाकर बतलाया।

रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

यह श्रीरामचन्द्रजीका सखा है, यह सुनते ही उन्होंने रथ छोड़ दिया और

उतरकर प्रेमसे उमँगते हुए चले। ग्राम, जाति और नाम बतलाकर गुह निषादने पृथिवीपर अपना मस्तक रखकर प्रणाम किया।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ॥ १९४॥

गुह निषादको दण्डवत् करते देखकर भरतजीने उसे हृदयसे लगा लिया मानों लक्ष्मणजीसे भेंट हुई हो। उनके हृदयमें प्रेम न समाता था।

भेंटत भरतु ताहि अतिप्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥

भरतजी गुह निषादसे बड़े प्रेमके साथ मिलने लगे। उस समय सब लोग प्रेमकी रीतिकी प्रशंसा करने लगे। मङ्गलसूचक 'धन्य' 'धन्य' की आवाज होने लगी। गुह निषादकी प्रशंसा कर देवता फूल बरसाने लगे।

लोक बेद सब भांतिहि नीचा। जासु छांह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता। मिलत पुलकपरिपूरित गाता॥

लोक और वेद, दोनोंमें जो सभी प्रकार नीच माना जाता है, जिसकी छायाको छूकर भी स्नान करना होता है, उसी निषादको छातीसे लिपटकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरतजी मिल रहे हैं और उनका सारा शरीर पुलकायमान हो रहा है।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं॥
येहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुलसमेत जगु पावन कीन्हा॥

'राम' 'राम' कहकर जो लोग जँभाई लेते हैं, पापोंके समूह उनके सामने नहीं होते। इसे तो श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे ही लगा लिया और कुलसमेत सारा संसार पवित्र कर दिया!

करम-नास-जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

कर्मनाशा नदीका जल जब गंगा नदीमें जाकर मिल जाता है तब उसे कहो कौन शिरपर नहीं रखता! संसार जानता है कि उलटा नाम 'मरा' जपकर ही वाल्मीकि मुनि ब्रह्मके समान हो गये।

दो०—स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥१९५॥

यह बात सब भुवनोंमें प्रसिद्ध है कि चाण्डाल, शबर, खस, यवन, मूर्ख, नीच, कोल और किरात, सब श्रीरामचंद्रजीका नाम लेते ही परम पवित्र हो जाते हैं।

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम-नाम-महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। यह तो युगयुगान्तरसे होता आया है। श्रीरामचंद्रजीने किसको बड़ाई नहीं दी है? इस प्रकार देवता श्रीरामचंद्रजीके नामका माहात्म्य कहने लगे जिसे सुन सुनकर अयोध्याके लोग सुख पाने लगे।

रामसखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

भरतजीने प्रेमके साथ श्रीरामचन्द्रजीके मित्र गुह निषादसे मिलकर कुशलक्षेम और मङ्गल पूछा। भरतजीका शील और स्नेह देखकर गुह निषादको उस समय अपनी देहकी सुध भूल गयी।

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥

गुह निषादके मनमें संकोच, स्नेह और आनन्द बढ़ने लगा और वह खड़ा होकर भरतजीको एकटक देखने लगा। फिर धीरज रखकर और चरणोंकी वंदना कर वह हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक विनती करने लगा।

कुसल मूल पदपंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे।

आपके कुशलके मूल चरणकमलोंको देखकर मैंने तीनों कालमें अपना कुशल समझ लिया है। हे प्रभु, अब आपके अत्यन्त अनुग्रहसे करोड़ कुलोंसमेत मेरा सब प्रकार मंगल है।

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघु-बीर-पद जग बिधिबंचित सोइ॥१९६॥

मेरे कुल और करतूतको समझकर और प्रभु श्रीरामचंद्रजीकी महिमाको अपने हृदयमें देखकर जो श्रीरामचंद्रजीके चरणोंको नहीं भजता, संसारमें उसीको ब्रह्माने ठग लिया।

कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भांती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥

मैं कपटी, कायर, कुमति और कुजाति था और लोक और वेदसे सब प्रकार पतित था; परन्तु जबसे श्रीरामचंद्रजीने मुझे अपना कर लिया है तभीसे मैं भुवनोंका भूषण हो गया हूं।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥

प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर भरतजीके छोटे भाई शत्रुघ्न गुह निषादसे फिर मिले। गुह निषादने सुन्दर वाणीसे अपना नाम कहकर सब रानियोंको आदरपूर्वक प्रणाम किया।

जानि लषनसम देहिं असीसा। जियहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर-नर-नारी। भये सुखी जनु लषनु निहारी॥

गुह निषादको लक्ष्मणजीके समान जानकर रानियां आशीर्वाद देने लगीं कि सौ लाख वर्षतक सुखसे जीवित रहो। नगरके सब स्त्री-पुरुष निषादको देखकर ऐसे सुखी हुए मानों उन्होंने लक्ष्मणजीको देख लिया हो।

कहहिं लहेउ एहि जीवनु लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज-भाग-बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥

सब कहने लगे कि अपने जीवनका लाभ इसने पा लिया जो कल्याणरूप श्रीरामचंद्रजीसे भुजाएँ भरकर मिला है। अपने भाग्यकी प्रशंसा सुन, निषाद मनमें प्रसन्न होकर सबको लिवा ले चला।

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनायेन्हि जाइ॥ १९७॥

गुह निषादने सब सेवकोंको इशारा कर दिया जो अपने स्वामीका रुख-पाकर चल दिये और जिन्होंने जाकर घरोंमें, वृक्षोंके नीचे, तालाबोंपर, बागों और जंगलोंमें सबके ठहरनेको स्थान बनाये।

शृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहबस अंग सिथिल तब॥
सोहत दिये निषादहि लागू। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू॥

भरतजीने जब शृंगवेरपुर देखा तब प्रेमके वश होकर उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। गुह निषादका सहारा लिये जाते हुए भरतजी ऐसे शोभित होते थे मानों विनय और प्रेम शरीर धारण किये हुए हों।

एहि बिधि भरत सेनु सब संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥

इस प्रकार सब सेनासमेत जाकर भरतजीने संसारको पवित्र करनेवाली गंगाजीको देखा। भरतजीने रामघाटको प्रणाम किया। उनका मन ऐसा आनन्दित हुआ मानों श्रीरामचंद्रजी मिल गये हों।

करहिं प्रनाम नगर-नर-नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु मांगहि कर जोरी। रामचंद्रपद प्रीति न थोरी॥

नगरकी स्त्रियां और पुरुष, सब गंगाजीको प्रणाम करते हैं और उनका ब्रह्ममय जल देखकर प्रसन्न होते हैं। गंगाजीमें स्नान कर वे सब हाथ जोड़कर मांगते हैं कि श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रेम कम न हो।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल-सुखद-सेवक-सुर-धेनू॥
जोरि पानि बर मांगहुँ एहू। सीय-राम-पद सहज सनेहू॥

भरतजी कहने लगे—हे गंगे, आपकी बालू सब सुख देनेवाली और सेवकोंकी कामधेनु है। हाथ जोड़कर मैं यही वर मांगता हूं कि सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लेवाइ॥१९८॥

इस प्रकार स्नान कर और गुरुकी आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताओंने स्नान कर लिया है, भरतजी डेरोंके लिये सबको लेकर चले।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
गुरसेवा करि आयसु पाई। रामुमातु पहिं गे दोउ भाई॥

जहां तहां लोगोंने डेरा डाल दिया। भरतजीने सभीकी संभाल कर ली। गुरु-पूजा करके और उनकी आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामचंद्रजीकी माताके पास गये।

चरन चांपि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरतु सनमानी॥
भाइहिं सौंपि मातुसेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥

चरण दबाकर और मीठे वचन कह कहकर भरतजीने सब माताओंका सम्मान किया। माताकी सेवाका काम भाई शत्रुघ्नको सौंपकर भरतजीने निषादको बुला लिया।

चले सखा कर सों कर जोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे॥
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ॥

वे मित्र निषादके हाथसे अपना हाथ मिलाये हुए चले। अत्यधिक प्रेमसे उनका शरीर शिथिल हो गया। मित्र निषादसे व पूछने लगे—वह स्थान दिखलाओ और मेरे मन और नेत्रोंकी जलनको तनिक शीतल करो,

जहँ सिय रामु लषनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचनकोये॥
भरतबचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहां लेइ गयउ निषादू॥

जहां रातको सीताजी, श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी सोये थे। यह कहते कहते भरतजीके नेत्रोंमें आंसू भर आये। भरतजीके वचन सुनकर निषादको बड़ा दुःख हुआ और वह उन्हें लेकर तुरन्त ही वहां गया।

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीततरु रघुबर किये बिस्रामु।
अतिसनेह सादर भरत कीन्हे दंड प्रनामु ॥ १९९ ॥

शीशमके पवित्र वृक्षके नीचे जहां श्रीरामचंद्रजीने विश्राम किया था, वहां भरतजीने बड़े प्रेमसे आदरपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम किया।

कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ॥
चरन-रेख-रज आंखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥

कुशांकी सुहावनी बिछौनी देखकर और उसकी प्रदक्षिणा करके भरतजीने प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका चिन्ह जहाँ बना था वहांकी धूल भरतजीने आंखोंसे लगायी। उनके प्रेमकी अधिकता कहते नहीं बनती।

कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी ॥

जो दो चार सोनेके सितारे दिखलायी दिये उन्हें भरतजीने सीताजीके समान समझा और अपने शिरपर रखा। भरतजीके नेत्रोंमें जल छा गया, हृदयमें ग्लानि हो गयी और सुन्दर वाणीसे वे मित्र गुह निषादसे ये वचन कहने लगे :—

श्रीहत सीयबिरह दुतिहीना। जथा अवध नरनारि मलीना ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही ॥

हाय! सीताजीके वियोगमें जैसे अयोध्याके स्त्री-पुरुष, मलीन हो गये हैं वैसे ही ये सितारे भी शोभारहित और कान्तिहीन हो गये! संसारमें सारे भोग और योग जिनकी मुट्ठीमें हैं, वे राजा जनक जिन सीताजीके पिता हैं उन्हें किसकी उपमा दूं?

ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो रामबड़ाई ॥

जिनकी प्रशंसा इन्द्र भी करते थे, वे सूर्यकुलके सूर्य राजा दशरथ जिनके ससुर थे, जो बड़ा होता है वह श्रीरामचन्द्रजीके बड़प्पन देनेसे ही होता है, वही रघुवंशके स्वामी और मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी जिनके प्राणपति हैं।

दो०—पतिदेवता सु-तीय-मनि सीय साथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेखि ॥२००॥

उन सीताजीकी, जो पतिव्रता और सुन्दर स्त्रियोंमें मणिके समान हैं, बिछौनी देखकर मेरा हृदय भी हहराकर नहीं फटता ! यह वज्रसे भी अधिक कठोर है !

लालनजोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपियारे॥

छोटे सलोने लक्ष्मणजी प्यार करनेयोग्य हैं। ऐसे भाई न तो हुए, न हैं और न होंगे। वे नगरवासियोंके प्यारे, माता-पिताके दुलारे तथा सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके प्राणप्यारे हैं।

मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भांती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥

उनका कोमल शरीर है, सुकुमार स्वभाव है, गरम हवा उनके शरीरको कभी नहीं लगी, वही लक्ष्मणजी वनमें सब प्रकारकी विपत्तियां सह रहे हैं! इस छातीने करोड़ वज्रोंका भी निरादर कर दिया।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुनसागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। रामसुभाउ सबहिं सुखदाता॥

श्रीरामचन्द्रजीने जन्म लेकर सारे संसारमें प्रकाश कर दिया ! रूप, शील, सुख और समस्त गुणोंके वे समुद्र हैं। नगरनिवासी, कुटुम्बी, गुरु, माता, पिता, सबको श्रीरामचन्द्रजी स्वभावसे ही सुख देनेवाले हैं।

बैरिउ रामबड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन-लेखा॥

शत्रु भी श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करते हैं कि उनका बोलना, मिलना और विनय-भाव मनको हर लेता है। करोड़ सरस्वती और सौ करोड़ शेषनाग प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंके समूहोंकी गिनती नहीं कर सकते।

दो०—सुखसरूप रघु-बंस-मनि मंगल-मोद-निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधिगति अतिबलवान॥२०१॥

जो श्रीरामचन्द्रजी रघुवंशमें मणिके समान, सुखके स्वरूप और आनन्द-मङ्गलके भण्डार हैं, वे पृथिवीपर कुश बिछाकर सोते हैं ! दैवकी गति बड़ी बलवान है !

राम सुना दुख कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भांती। जोगवहिं जननि सकल दिनराती॥

श्रीरामचन्द्रजीने दुःख कभी कानोंसे भी नहीं सुना ! जीवन-वृक्षकी

भांति राजा उनके लिये यत्नवान रहते थे! जिस प्रकार सर्प अपनी मणिकी और पलकें नेत्रोंकी रक्षा करती हैं उसी प्रकार सब माताएँ रात-दिन उनकी रक्षा करती थीं।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंदमूल फलफूल अहारी॥
धिग कैकेइ अमंगलमूला। भइसि प्रान प्रियतम-प्रतिकूला॥

वही श्रीरामचन्द्रजी अब वनमें पैदल घूमते और कंदमूल तथा फलफल खाकर रहते हैं। केकयीको धिक्कार है जो सब अनर्थोंका मूल है और जो अपने प्राणोंके सबसे अधिक प्यारेके भी प्रतिकूल हो गयी!

मैं धिगधिग अघउदधि अभागी। सब उतपात भयेउ जेहि लागी॥
कुलकलंकु करि सृजेउ बिधाता। साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता॥

मुझ अभागेको बार बार धिक्कार है जो पापका समुद्र है और जिसके कारण ही सब उत्पात हुआ! विधाताने मुझे कुलका कलङ्क बनाकर उत्पन्न किया! कुमाता केकयीने मुझे स्वामि-द्रोही कर दिया!

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिय कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं॥

भरतजीकी बातें सुनकर गुह निषाद प्रेमपूर्वक समझाने लगा कि हे नाथ, आप व्यर्थ ही शोक क्यों कर रहे हैं? श्रीरामचन्द्रजी आपको प्यारे हैं और आप श्रीरामचन्द्रजीको प्यारे हैं। अतः किसीको दोष नहीं, केवल प्रतिकूल दैवको ही दोष है!

छंद—बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतमु कहत हौं सौंहें किये।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिये धीरजु हिये॥

प्रतिकूल विधाताका यह कार्य बड़ा कठिन है जिसने माता केकयीको बावला बना दिया। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उस रातको बार बार आदरपूर्वक आपकी प्रशंसा करते थे। मैं सौगंद खाकर कहता हूँ कि—तुलसीदासजी कहते हैं—आपके समान श्रीरामचन्द्रजीको कोई प्यारा नहीं है। इसका परिणाम मङ्गलकर होगा, यह समझकर अपने हृदयमें धीरज रखिये।

सो०—अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय बिस्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥२०२॥

मनमें यह दृढ़विचार लाकर चलिये और विश्राम कीजिये कि श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्यामी, संकोची, प्रेममय और दयाके स्थान हैं।

सखावचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥

मित्र गुह निषादके वचन सुनकर और हृदयमें धीरज रखकर भरतजी श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करते हुए डेरेको चले। नगरकी स्त्रियों और पुरुषोंने जब यह संवाद पाया तब अत्यन्त दुःखी होकर वे सब देखनेको चल दिये।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बामबिधातहि दूषन देहीं॥

प्रदक्षिणा करके वे सब भरतजीको प्रणाम करने और केकयीको व्यर्थ दोष देने लगे। बार बार वे नेत्रोंमें आंसू भर लेने और प्रतिकूल दैवको दोष देने लगे।

एक सराहहिं भरतसनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥

कोई कोई भरतजीके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे और कोई कोई कहने लगे कि राजाने प्रेम निबाहा। सब निषादकी प्रशंसा करके अपनी निन्दा करने लगे, इनके दुःख और व्याकुलताको कौन कह सकता है?

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसारु गुदारा लागा॥
गुरुहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई॥
दंड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा॥

इस प्रकार सब लोग रातभर जागते रहे, फिर सवेरा हुआ और सब लोग गङ्गाजीके पार उतरने लगे। गुरुजीको एक सुहावनी नौकापर चढ़ाकर सब माताओंको नयी नौकापर चढ़ाया। चार घड़ीमें सब लोग गङ्गापार पहुँच गये, फिर भरतजीने पार उतरकर सबकी संभाल की।

दो०—प्रातक्रिया करि मातुपद बंदि गुरुहि सिरु नाइ।
आगे किये निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥२०३॥

प्रातःकृत्य समाप्त कर, माताके चरणोंकी वंदना करके भरतजीने गुरुको सिर नवाया और निषादोंको आगे कर सेनाको चलनेकी आज्ञा दे दी।

कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवन गुरु कीन्हा॥

निषादोंके स्वामी गुह निषादको अगुआ करके माताओंकी सब पालकियां

रवाना की। छोटे भाई शत्रुघ्नको बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणोंसमेत गुरु वशिष्ठने प्रस्थान किया।

आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषन सहित सियरामू॥
गवने भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहिं डोरिआये॥

भरतजीने स्वयं गङ्गाजीको प्रणाम किया और लक्ष्मणजीसमेत सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया। भरतजीने पांव-पैदल ही प्रस्थान किया। डोरीसे बंधे हुए कोतल घोड़े साथ जा रहे थे।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइय नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥

स्वामिभक्त सेवक बार बार कहते थे, हे नाथ, घोड़ेपर सवार हो जाइये। भरतजीने कहा कि श्रीरामचन्द्रजी तो पांव-पैदल ही वनको गये और हमारे लिये ये रथ, हाथी और घोड़े बनाये गये हैं!

सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवकधरमु कठोरा॥
देखि भरतगति सुनि मृदुबानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी॥

मुझे तो उचित यह है कि मैं सिरके बल जाऊं। सेवकका धर्म सबसे कठोर है! भरतजीकी दशा देखकर और मीठी वाणी सुनकर सब सेवक ग्लानिसे बड़े दुःखी हुए।

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥२०४॥

'सीताराम' 'सीताराम' कहते और प्रेममें बार बार उमँगते हुए भरतजीने तीसरे पहर प्रयागमें प्रवेश किया।

झलका झलकहिँ पायन्ह कैसे। पंकजकोस ओसकन जैसे॥
भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकलसमाजू॥

भरतजीके पैरोंमें छाले पड़ गये जो ऐसे चमकने लगे जैसे कमलकी कलियोंपर ओसकी बूँदें। आज भरतजी पैदल ही चलकर आये हैं, यह सुनकर सारा समाज दुःखी हुआ।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आये॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने॥

जब भरतजीने यह खबर ले ली कि सब लोग स्नान कर चुके तब उन्होंने

भी आकर त्रिवेणीजीको प्रणाम किया। उन्होंने विधिपूर्वक गंगा और यमुना-के जलमें स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणोंका सम्मान किया।

देखत स्यामल-धवल-हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल-काम-प्रद तीरथराऊ। बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥

गंगा और यमुनाके जलकी उज्ज्वल और श्यामल लहरें देखकर भरत-जीका शरीर पुलकित होगया और वे हाथ जोड़कर कहने लगे--हे तीर्थराज, आप सारी इच्छाएँ पूरी करनेवाले हैं। आपका प्रभाव वेदमें प्रसिद्ध है और संसारमें प्रकट है।

मागउँ भीख त्यागि निजधरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचकबानी॥

अपना धर्म छोड़कर मैं आपसे एक भीख मांगता हूं। दुःखी मनुष्य कौन कुकर्म नहीं करता। अपने मनमें यही जानकर चतुर और श्रेष्ठ दानी संसारमें याचकोंकी माँग पूरी किया करते हैं।

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन॥२०५॥

मेरी रुचि न अर्थमें हैं न धममें और न काममें, और न मैं मोक्ष पद ही चाहता हूं। जन्म जन्ममें श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रेम हो, यही वरदान मैं माँगता हूं, दूसरा नहीं।

जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु-साहिब-द्रोही॥
सीताराम-चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

श्रीरामचन्द्रजी मुझे दुष्ट ही क्यों न समझें और लोग मुझे गुरु-द्रोही और स्वामि-द्रोही क्यों न कहें, परन्तु आपके अनुग्रहसे सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें मेरी भक्ति दिन दिन बढ़ती रहे।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारऊ। जाचत जलु पबिपाहन डारउ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेमु सब भांति भलाई॥

चाहे मेघ जन्मभर पपीहेकी याद भुलाये रहे और जल माँगते ही वज्र और पत्थर गिरावे, चाहे पपीहेका रटना भी घटते घटते घट जाय; परन्तु प्रेमके बढ़नेमें ही सब प्रकार भलाई है।

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रिय-तम-पद नेम निबाहे॥
भरतबचन सुनि मांझ त्रिबेनी। भइ मृदुबानि सु-मंगल-देनी॥

जैसे तपानसे सोनेकी चमक बढ़ जाती है वैसे ही अपने अत्यन्त प्यारेके

चरणोंका प्रेम निबाहनेसे भी (मन दिव्य) होता है। भरतजीका वचन सुनकर त्रिवेणीके बीचसे सुन्दर मंगल देनेवाली कोमल वाणी हुई—

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम-चरन—अनुराग—अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं॥

हे तात, हे भरत, तुम सब प्रकारसे साधु हो। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम मनमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। श्रीरामचंद्रजी-को तुम्हारे समान और कोई प्यारा नहीं है।

दो०—तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनिबचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥ २०६॥

त्रिवेणीजीका अनुकूल वचन सुनकर भरतजीका हृदय आनन्दित और शरीर पुलकायमान हो गया। देवतागण भरतजीको बार बार धन्य धन्य कहकर प्रसन्नतासे फूल बरसाने लगे।

[भरत और भरद्वाज]

प्रमुदित तीरथ-राज-निवासी। बैषानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पांचा। भरतु सनेहु सीलु सुचि सांचा॥

तपस्वी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन—तीर्थराज प्रयाग-निवासी सभी आनन्दित हुए। दस-पांच मिलकर परस्पर कहने लगे कि भरतजीका प्रेम और शील पवित्र और सत्य है।

सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये। भरद्वाज मुनिबर पहिं आये॥
दंडप्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिवंत भाग निज लेखे॥

श्रीरामचंद्रजीके सुहावने गुणोंके समूहोंको सुनते हुए भरतजी मुनिवर भरद्वाजके पास आ गये। मुनिने भरतजीको दण्डवत्-प्रणाम करते हुए देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान भाग्य समझा।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥

मुनिने दौड़कर भरतजीको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। फिर मुनिने उन्हें आसन दिया जिसपर भरतजी सिर झुकाकर बैठ गये मानों भागकर वे संकोचके घरमें घुसना चाहते हों।

मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलसँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधिकरतब पर कछु न बसाई॥

भरतजीको इस बातका बड़ा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेंगे। भरतजीका

शील और संकोच देखकर ऋषि कहने लगे—हे भरत, सुनो। हमें सब हाल मालूम हो चुका है। विधाताकी करतूतपर कुछ वश नहीं चलता।

दो०—तुम्ह गलानि जिय जनि करहु समुझि मातुकरतूति।
तात कैकेइहि दोसु नहिं गई गिरा मतिधूति ॥२०७॥

माताकी करतूत समझकर तुम अपने मनमें ग्लानि मत करो। हे तात, कैकयीका भी दोष नहीं है। सरस्वतीने ही उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी।

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोक बेद बुधसंमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमलजसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥

यह कहनेसे भी कोई भला नहीं कहेगा; क्योंकि पण्डितोंको लोक और वेद, दोनोंकी ही बातें मान्य होती हैं। हे तात, तुम्हारा निर्मल यश गाकर लोक और वेद, दोनों ही बड़ाई पावेंगे।

लोक-बेद-संमत सब कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहिं बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥

सब कहते हैं कि लोक और वेद, दोनोंको ही यह बात मान्य है कि जिसको पिता देता है वही राज्य पाता है। सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथ तुम्हें बुलाकर यदि राज्य देते तो सुख, धर्म और बड़ाई, सब कुछ होता।

रामगवनु बन अनरथमूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावीबस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी॥

परन्तु अनर्थका मूल तो श्रीरामचन्द्रजीका वनको जाना हुआ जिसे सुनकर सारे संसारको पीड़ा हुई। यह भी होनहारके वश ही हुआ। अनजान रानी कैकेयी कुचाल करके अन्तमें तो पछतायी।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राजु तो तुम्हहिं न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥

उसमें भी जो कोई तुम्हारा थोड़ा भी अपराध कहे तो वह नीच, अनजान और दुष्ट है। यदि राज्य भी करते तो तुम्हें दोष नहीं होता और सुनते ही श्रीरामचंद्रजीको संतोष होता।

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल-मूल जग रघुबरचरन सनेहु ॥२०८॥

हे भरत, अब तुमने बहुत ही अच्छा किया। यही निश्चय तुम्हारे लिये उचित भी था। संसारमें सब शुभ मंगलोंका मूल श्रीरामचंद्रजीके चरणोंका प्रेम है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरि भाग को तुम्हहिं समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथसुअन राम-प्रिय-भ्राता॥

यही प्रेम तुम्हारा धन और जीवन-प्राण है! तुम्हारे समान बड़भागी और कौन है? हे तात, तुम्हारे लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम राजा दशरथके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघु-पति-मन माहीं। प्रेमपात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहिं अतिप्रीती। निसि सबु तुम्हहिं सराहत बीती॥

हे भरत, सुनो। श्रीरामचन्द्रजीके मनमें तुम्हारे समान प्रेमपात्र और कोई नहीं है। लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीका तुमपर बड़ा प्रेम है। उस दिन उनकी सारी रात तुम्हारी प्रशंसा करते ही बीती।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर के। सुख जीवनु जग जस जड़ नर के॥

प्रयाग-स्नान करते समय मैंने सारा भेद जान लिया। वे तुम्हारे प्रेममें मग्न हो जाते हैं। तुमपर श्रीरामचन्द्रजीका वैसा ही प्रेम है जैसा संसारमें मूर्ख मनुष्योंको जिन्दगीके सुखपर होता है।

यह न अधिक रघुबीरबड़ाई। प्रनत-कुटुंब-पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु रामसनेहू॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बड़ाई कुछ अधिक नहीं है; क्योंकि वे दीन भक्तोंके कुटुम्बोंके पालनेवाले हैं। हे भरत, मेरा मत यह है कि तुमने तो मानों श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमकी देह ही धारण की है।

दो०—तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम-भगति-रस-सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥२०१॥

हे भरत, तुम्हारे लिये यह कलंक और हम लोगोंके लिये उपदेश है। श्रीरामचन्द्रजीके भक्ति-रसकी सिद्धिके लिये यह समय श्रीगणेश हो गया।

नवबिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥

हे तात, तुम्हारा यश नवीन चन्द्रमाकी भाँति निर्मल है, जिसके चकोर और कुमुद हैं श्रीरामचंद्रजीके सेवक। यह चन्द्रमा सदैव उदय ही रहेगा, कभी अस्त नहीं होगा। संसाररूपी आकाशमें यह घटेगा नहीं, दिन दिन दूना होगा।

कोक तिलोक प्रीति अति करही। प्रभुप्रतापु रवि छबिहि न हरिही॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइकरतब राहू॥

तीनों लोक-रूपी चकवा इससे बड़ा प्रेम करेगा और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-का प्रताप-सूर्य इसकी शोभाका हरण न करेगा। रात और दिन, दोनोंमें ही यह सबको सदैव सुख देनेवाला होगा और केकयीकी करतूतरूपी राहु इसको ग्रस न सकेगा।

पूरन रामु-सु-प्रेम-पियूषा। गुरुअवमान दोख नहिं दूषा॥
रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हिहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥

यह चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतसे पूर्ण है और गुरुके अपमान-दोषसे दूषित नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीके भक्त अब इसके अमृतसे तृप्त हों; क्योंकि तुमने यह अमृत पृथिवीपर भी सुलभ कर दिया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल-सु-मंगल-खानी॥
दसरथ-गुन-गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥

राजा भगीरथ गङ्गाजीको लाये थे जिन्हें स्मरण करना सब शुभ मङ्गलों-की खान है। राजा दशरथके गुणोंका वर्णन करते नहीं बनता। अधिक क्या, जिनके समान संसारमें कोई नहीं है।

दो०—जासु सनेह-सकोच-बस राम प्रगट भये आइ।
जे हर-हिय-नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥ २१०॥

जिनके स्नेह और संकोचके वशमें होकर वही श्रीरामचन्द्रजी आकर प्रकट हुए जिन्हें अपने हृदयके नेत्रोंसे देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं होते।

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस रामु प्रेम-मृग-रूपा॥
तात गलानि करहु जिय जाये। डरहु दरिद्रहि पारस पाये॥

तुमने अपना सुयशरूपी चन्द्रमा अनुपम बनाया, जहाँ श्रीरामचन्द्र-जीका प्रेमरूपी मृग बसता है। हे तात, तुम अपने हृदयमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो, पारस पत्थर पाकर दरिद्रतासे डरते हो?

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधनु कर सुफलु सुहावा। लषनु राम-सिय-दरसनु पावा॥

हे भरत, सुनो, हम असत्य नहीं कहते, हम उदासीन हैं, तपस्वी हैं और बनमें रहते हैं। सब साधनोंका उत्तम फल यही है कि हमने लक्ष्मणजी, श्रीराम-चन्द्रजी और सीताजीके दर्शन पा लिये।

तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जगु जसु जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ॥

उस फलका भी फल तुम्हारा दर्शन है। प्रयाग-समेत हमारा सौभाग्य है। हे भरत, तुम धन्य हो। तुमने संसारमें यश जीत लिया। ऐसा कहकर मुनि प्रेममें मग्न हो गये।

सुनि मुनिबचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥

मुनिके वचन सुनकर सभासद प्रसन्न हुए और देवताओंने 'साधु' 'साधु' कह प्रशंसा करके फूल बरसाये। प्रयागराज धन्य हैं, ऐसी आकाशवाणी बार बार सुनकर भरतजी प्रेममें मग्न हो गये।

दो०—पुलकगात हिय रामु सिय सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनिमंडलिहिं बोले गदगद बयन॥२११॥

उनका शरीर पुलकायमान हो गया, हृदयमें सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी-का ध्यान बँध गया और कमल-नेत्रोंमें जल भर आया। मुनियोंकी मण्डलीको प्रणाम करके वे गद्गद कण्ठसे ये वचन बोले—

मुनिसमाजु अरु तीरथराजू। साचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥
एहि थल जौं किछु कहिय बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥

पहले तो मुनियोंका यह समाज और फिर तीर्थराज, यहां सच्ची सौगंद खानेसे भी व्यर्थ पाप लगता है। इस स्थानपर यदि कोई कुछ बनाकर कहे तो इसके बराबर अधिक पाप और नीचता दूसरी नहीं।

तुम्ह सर्वग्य कहउँ सतिभाऊ। उर-अंतर-जामी रघुराऊ॥
मोहि न मातुकरतब कर सोचू। नहिं दुख जिय जग जानहिं पोचू॥

मैं सच्चे भावसे कहता हूं, आप सर्वज्ञ हैं और श्रीरामचन्द्रजी हृदयके भीतरकी बात जाननेवाले हैं, मुझे माताकी करतूतका सोच नहीं है और न हृदयमें इसी बातका दुःख है कि संसार मुझे नीच समझेगा।

नाहिं न डरु बिगरहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजसु भरि भुवन सुहाये। लछिमन-राम-सरिस सुत पाये॥

परलोक बिगड़ जानेका डर भी नहीं है, और न मुझे पिताके मरने-का ही शोक है। उनका पुण्य और सुयश तो संसारमें छा रहा है कि उन्होंने लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र पाये—

रामबिरह तजि तन छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम-लषन-सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनिबेष फिरहिं बन बनहीं॥

और फिर श्रीरामचंद्रजीके वियोगमें यह क्षणभंगुर शरीर छोड़ दिया। उनके लिये सोच करनेको तो कोई बात ही नहीं है? श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी बिना जूता पहिने, मुनिका भेष बनाकर, वन वनमें घूम रहे हैं।

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरुतर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥२१२॥

मृगछालाके कपड़े पहिनते हैं, फलाहार करते हैं, कुश और पत्ते बिछाकर पृथिवीपर शयन करते हैं और पेड़के नीचे रहकर नित्य शीत, गर्म्मी, वर्षा और वायु सहते हैं।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥

इसी दुःखकी जलनसे मेरी छाती दिनभर जलती है, दिनमें भूख नहीं लगती और न रातमें नींद ही आती है। इस भयंकर रोगकी ओषधि नहीं है, मैंने अपने मनमें सारा संसार ढूँढ़ लिया है।

मातु कुमत बढ़ई अघमूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥

पापोंकी जड़ माताकी दुष्ट बुद्धि बढ़ई है। उसीने हमारे हितको अपना बसूला बनाया और पापरूपी बुरे काठको बनाया कुयंत्र, जिसे कठिन कुमंत्र पढ़कर अयोध्यामें गाड़ दिया।

मोहि लगि यह कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सबु जगु बारह बाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आये। बसइ अवध नहिं आन उपाये॥

उसीने मेरे लिये यह सब बुरा ठाठ रचा और सबका नाश कर संसारको बारहबाट कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेसे यह कुयोग मिट जायगा, और किसी दूसरे उपायसे अयोध्या न बसेगी।

भरत बचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहिं कीन्हि बहु भांति बड़ाई॥
तात करहु जनि सोचु बिसेखी। सब दुखु मिटिहि रामपग देखी॥

भरतजीके वचन सुनकर मुनिने सुख पाया और सभीने बहुत तरहसे भरतजीकी बड़ाई की। उन्होंने कहा, हे तात, अधिक शोक मत करो। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके दर्शनसे सब दुःख मिट जायँगे।

दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१३॥

मुनिवरने समझाकर कहा कि अब तुम हमारे प्रेमप्यारे अतिथि हो जाओ और जो कंद-मूल, फल-फूल हम देवें उन्हें कृपा कर ग्रहण करो।

सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसरु कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरुगिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥

मुनिके वचन सुनकर भरतजीके हृदयमें सोच हुआ कि यह कठोर अवसर बुरा आ गया। उन्हें बहुत संकोच हुआ। फिर गुरुजीकी वाणीको महत्व-पूर्ण समझकर भरतजी उनके चरणोंकी वंदना कर हाथ जोड़कर बोले।

सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरतबचन मुनिबर मन भाये । सुचि सेवक सिष निकट बोलाये ॥

हे नाथ, शिरपर रखकर हम आपकी आज्ञाका पालन करेंगे, क्योंकि हमारा यही परम धर्म है। मुनिवरको मनमें भरतजीके वचन बहुत प्यारे लगे। फिर मुनिने अपने पवित्र सेवकों और शिष्योंको अपने पास बुलाया।

चाहिय कीन्हि भरतपहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिरु नाये । प्रमुदित निज निज काज सिधाये॥

मुनिने कहा कि भरतजीका आतिथ्य करना चाहिये, इसलिये जाकर कंद, मूल और फल ले आओ। "बहुत अच्छा, स्वामी"—यह कहकर उन सबने शिर नवाये और आनंदित होकर अपना अपना काम करनेके लिये चले गये।

मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥
सुनि रिधिसिधि अनिमादिक आई । आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥

मुनिको इस बातका बड़ा सोच हुआ कि बड़े भारी मेहमानको न्योता दिया है। जैसा देवता हो उसकी पूजा भी वैसी ही होनी चाहिये। यह सुनकर सब ऋद्धियां और अणिमादिक सिद्धियां वहां आयीं और कहने लगीं कि हे स्वामी, जो आज्ञा हो वह हम करें।

दो०—रामबिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रमु कहा मुदित मुनिराज ॥ २१४ ॥

मुनिराज भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा कि छोटे भाई शत्रुघ्न और सब समाज-समेत भरतजी श्रीरामचंद्रजीके वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं। इन सबकी मेहमानी करके थकावट दूर कर दो।

रिधि सिधि सिर धरि मुनि-बर-बानी। बड़ भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधिसमुदाई। अतुलित अतिथि राम-लघु-भाई॥

मुनिकी सुन्दर वाणीको शिरपर रखकर ऋद्धियों और सिद्धियोंने अपनेको बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियां परस्पर कहने लगीं कि श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई अद्वितीय अतिथि हैं।

मुनिपद बंदि करिय सोइ आजू। होइ सुखी सब राजसमाजू॥
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥

मुनिके चरणोंकी वंदना कर आज वही कार्य करना चाहिये जिससे यह सब राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुतसे सुन्दर घर बनाये जिन्हें देखकर विमान भी लजा जावें।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे॥

उन घरोंमें भोगनेके लिये बहुतसी विभूतियां भर रक्खीं जिन्हें देखते ही देवता भी ललचा जायँ। सब सामग्री लिये हुए दास और दासियां मन लगाये हुए उनकी रुचिको पूरा करनेके लिये तैयार थीं।

सबु समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिये सब केही। सुंदर सुखद जथारुचि जेही॥

सिद्धियोंने पलभरमें वह सब सामान सजा दिया। देवलोकमें जो सुख स्वप्नमें भी नहीं होते वे वहां थे। पहिले तो सबको, जिसकी जैसी रुचि थी उसके अनुसार ठहरनेको सुन्दर, सुखदाई स्थान दिये।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि-बिसमय-दायक बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥२१५॥

फिर कुटुम्बियों-समेत भरतजीको ऋषिने ठहरनेकी आज्ञा दी। मुनिवरने वहां अपनी तपस्याके बलसे ब्रह्माको भी विस्मयमें डाल देनेवाला ऐश्वर्य फैला दिया।

मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥

भरतजीने जब मुनिका प्रभाव देखा तब उन्हें लोकपति और लोक, सब छोटे मालम हुए। उस सुखसामग्रीका वर्णन नहीं किया जाता। उसे देखते ही ज्ञानी भी वैराग्य भुला देवें।

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहंग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमियसमाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥

आसन, शय्या, सुन्दर वस्त्र, चांदनियां, वन, वाटिका, पक्षी और तरह तरहके हिरन, सुगंधित फूल, अमृतके समान फल, अनेक प्रकारके निर्मल जलाशय, सब वहां थे।

असन पान सुचि अमित अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुरसुरभी सुरतरु सबही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के ॥

अमृतके समान खाने-पीनेकी पवित्र और असीम सामग्रीको देखकर लोग संयमीकी भांति सकुचाये। सबके वासस्थानोंमें कामधेनु और कल्पवृक्ष थे, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणीके जी भी ललचाते थे।

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमयबस लोगा ॥

वसंत ऋतु हो गयी और शीतल, मंद, सुगन्धित, तीनों प्रकारकी वायु बहने लगी और सबको चारों पदार्थ सहज हो गये। मालाएँ, चंदन, स्त्रियां आदि भोग्य वस्तुएँ देखकर सब लोग आनन्द और आश्चर्यके वशमें हो गये।

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनिआयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रमपींजरा राखे भा भिनुसार ॥ २१६ ॥

खेल करनेवालेके समान मुनिकी आज्ञाने सम्पत्तिरूपी चकई और भरत-रूपी चकवेको उस रात आश्रमरूपी पिँजड़ेमें रखा और इसमें रहते हुए ही उन्हें सबेरा हो गया।

[प्रयागसे प्रयाण]

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
रिषिआयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाखी ॥

भरतजीने तीर्थराजमें स्नान किया और फिर समाज-समेत मुनिको शिर नवाया। उन्होंने ऋषिकी आज्ञा और आशीर्वादको शिरोधार्य किया और दण्डवत् करके बहुत विनती की।

पथ–गति–कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे ॥
रामसखा कर दीन्हे लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥

चित्रकूटमें मन लगाये हुए सब लोग रास्ता जानेवाले चतुर लोगोंको साथमें लेकर चल दिये। श्रीरामचंद्रजीके मित्र गुह निषादके हाथका सहारा लिये हुए भरतजी जा रहे हैं मानों देह धारण किये हुए प्रेम हो।

नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया। प्रेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लषन-राम-सिय-पंथ-कहानी। पूछत सखहि कहत मृदुबानी॥

भरतजीके पैरोंमें जूते नहीं हैं और न शिरपर छाया (छत्र) ही है। उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म, सब मायाशून्य है। लक्ष्मणजी, श्रीरामचंद्रजी और सीताजीके मार्गकी कहानियां वे मित्र गुह निषादसे पूछते हैं और वह कोमल वाणीसे कहता जाता है।

राम-बास-थल-बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगलमूला॥

श्रीरामचन्द्रजीके ठहरनेके स्थानोंके वृक्ष देखकर हृदयमें प्रेम रोके नहीं रुकता। दशा देखकर देवता फूल बरसाते हैं, इससे पृथिवी कोमल हो जानेसे मार्ग मंगलका मूल हो गया।

दो०—किये जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बरबात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात॥२१७॥

बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देनेवाली सुन्दर वायु बह रही है। चित्रकूटको जाते हुए भरतजीको मार्ग जैसा सुखदायी हुआ वैसा श्रीरामचंद्रजीको भी नहीं हुआ था।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम-पद-जोगू। भरतदरस मेटा भवरोगू॥

मार्गके जड़ और चेतन, दोनों ही प्रकारके वे सब बहुतसे जीव, जिन्होंने श्रीरामचंद्रजीको देख लिया अथवा जिन्हें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने देखा, परमपद पानेयोग्य हो गये। भरतजीके दर्शनसे उनका संसार-रोग मिट गया।

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं॥
बारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

भरतजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है जिन्हें श्रीरामचन्द्रजी मनमें स्मरण करते हैं। संसारमें जो मनुष्य एक बार भी 'राम' कहते हैं वे स्वयं भी तर जाते हैं और दूसरोंके तारनेवाले भी हो जाते हैं।

भरतु राम प्रिय पुनि लघुभ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहिं निरखि हरषु हिय लहहीं॥

भरतजी श्रीरामचंद्रजीको प्यारे हैं फिर उनके छोटे भाई हैं, उन्हें मार्ग मंगल देनेवाला क्यों न होवे? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि, सब ऐसा कहते हैं और भरतजीको देखकर हृदयमें आनन्द पाते हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहिं भरतहि भेंट न होई॥

भरतजीका प्रभाव देखकर इन्द्रको सोच हुआ। संसार भलेको भला और बुरेको बुरा है। इंद्रने अपने गुरुसे कहा कि हे प्रभु, वही कीजिये जिसमें श्रीरामचन्द्रजीसे भरतजीकी भेंट न होवे।

दो०—राम सकोची प्रेमबस भरतु सुप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति करिय जतनु छलु सोधि॥२१८॥

प्रेमके वश होकर श्रीरामचन्द्रजी संकोच कर जानेवाले हैं और भरतजी श्रेष्ठ प्रेमके समुद्र हैं। बनी हुई बात बिगड़ना चाहती है। कोई छल सोचकर उपाय कीजिये।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयनु बिनु लोचन जाने॥
कह गुरु बादि छोभु छलु छाड़ू। इहां कपट कर होइय भांड़ू॥

वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पति मुस्कुराने लगे और उन्होंने यह समझ लिया कि हजार नेत्र रखनेपर भी इन्द्र नेत्रहीन ही हैं। गुरुने कहा कि तुम्हारा क्षोभ व्यर्थ है। तुम छल छोड़ दो। यहां छलका भेद खुल जायगा।

मायापति-सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥
तब किछु कीन्ह रामरुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥

हे देवराज, माया-पतिके सेवकके साथ यदि माया की जायगी तो वह उलटी ही पड़ेगी। श्रीरामचन्द्रजीका रुख जानकर उस समय कुछ किया था परन्तु अब कोई कुचाल करनेसे हानि ही होगी।

सुनु सुरेस रघु-नाथ-सुभाऊ। निजअपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम-रोष-पावक सो जरई॥

हे देवराज इन्द्र, श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव सुनो। अपना अपराध करनेपर वे किसीपर भी क्रोधित नहीं होते; परन्तु उनके भक्तका जो कोई अपराध करता है वह श्रीरामचंद्रजीके क्रोधकी अग्निमें जल जाता है।

लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥
भरतसरिस को रामसनेही। जगु जप राम राम जप जेही॥

लोक और वेद, दोनोंमें ही इसकी कथा प्रसिद्ध है। इस महिमाको दुर्वासा ऋषि जानते हैं। भरतजीके समान श्रीरामचंद्रजीका प्रेमी और कौन है? संसार श्रीरामचन्द्रजीको जपता है और श्रीरामचन्द्रजी भरतजीको जपते हैं।

दो०—मनहुं न आनिय अमरपति रघुबर-भगत-अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोकसमाजु ॥२१९॥

हे देवताओंके स्वामी, श्रीरामचंद्रजीके भक्तका अनिष्ट मनमें भी मत लाओ। इससे लोकमें अपयश और परलोकमें दुःख होता है, और दिन दिन शोकका समूह बढ़ता है।

सुनु सुरेसु उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परमपियारा॥
मानत सुख सेवकसेवकाई। सेवकबैर बैरु अधिकाई॥

हे इन्द्र, हमारा उपदेश सुनो। श्रीरामचन्द्रजीको सेवक बहुत प्यारा होता है। सेवककी सेवा करनेपर वे स्वयं सुख मानते हैं और सेवकसे वैर करनेपर अधिक वैर!

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समदर्शी हैं; उन्हें न प्रेम है न क्रोध; वे पाप और पुण्य, गुण और दोष, ग्रहण नहीं करते; संसारको उन्होंने कर्म-प्रधान कर रखा है; जो जैसा करेगा उसे वैसा ही फल भी चखनेके लिये मिलेगा—

तदपि करहिं सम-बिषम-बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेख अमान एक रस। रामु सगुन भये भगत-प्रेम-बस॥

तथापि भक्त और अभक्तके हृदयके अनुसार सम और विषम भावसे वे विहार करते हैं। श्रीरामचंद्रजी यद्यपि निर्गुण, अनुमानसे परे, अभिमान-शून्य और एकरस हैं तथापि भक्तके प्रेमके वशमें होकर उन्होंने सगुणरूप धारण किया है।

राम सदा सेवकरुचि राखी। बेद-पुरान-साधु-सुर-साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत-पद-प्रीति सुहाई॥

श्रीरामचंद्रजीने सर्वदा अपने सेवककी रुचिको पूरा किया है। इसके साक्षी वेद, पुराण, साधुजन और देवता हैं। ऐसा हृदयमें जानकर दुष्टता छोड़ो और भरतजीके चरणोंमें सुहावना प्रेम करो।

दो०—रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल।
भगतसिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥ २२०॥

हे देवताओंकी रक्षा करनेवाले इन्द्र, भक्त-शिरोमणि भरतसे तुम मत डरो; क्योंकि वे श्रीरामचन्द्रजीके भक्त, परोपकार-मग्न, दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाले और दयाल हैं।

सत्यसंध प्रभु सुर-हित-कारी। भरत राम-आयसु-अनुसारी॥
स्वारथबिबस बिकल तुम्ह होहू। भरतदोसु नहिं राउर मोहू॥

देवताओंका हित करनेवाले प्रभु श्रीरामचंद्रजी सत्यप्रतिज्ञ हैं और भरतजी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं। स्वार्थके वशमें होकर तुम व्याकुल होते हो; परन्तु इसमें भरतजीका दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है।

सुनि सुरबर सुर-गुरु-बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरतसुभाऊ॥

देवगुरु बृहस्पतिकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवश्रेष्ठ इन्द्रको आनन्द हुआ; उनके मनकी ग्लानि मिट गयी। फूल बरसाकर देवराज प्रसन्नतापूर्वक भरतजीके स्वभावकी प्रशंसा करने लगे।

एहि बिधि भरत चले मगु जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥

इस प्रकार भरतजी मार्गमें चले जा रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुनि और सिद्धजन प्रशंसा कर रहे हैं। 'हे राम' कहकर जिस समय भरतजी लंबी सांस लेते हैं उस समय मानों चारों ओरसे प्रेम उमड़ने लगता है।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आये। निरखि नीरु लोचन जल छाये॥

उनके वचनोंको सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियोंके प्रेमका वर्णन नहीं किया जाता। बीचमें ठहरकर जब सब यमुनाजीपर पहुँचे तब जल देखकर उनके नेत्रोंमें आंसू आ गये।

दो०—रघु-बर-बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥ २२१॥

रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके वर्णवाला यमुनाजीका श्रेष्ठ जल देखकर सब समाजसमेत भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके वियोग-समुद्रमें डूबने लगे, पर विवेकरूपी जहाजपर चढ़ लिये।

जमुनतीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समयसम सबहिं सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥

उस दिन यमुनाजीके किनारे सबने बास किया। वहां सबको समयानुसार सुभीता रहा। रातमें ही बहुतसे घाटोंकी असंख्य नौकाएँ वहां आ गयीं जिनका वर्णन नहीं किया जाता।

प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥

सवेरे सब लोग एक ही खेवेमें पार उतर गये। श्रीरामचंद्रजीके मित्र गुह निषादकी सेवासे सब संतुष्ट हुए। फिर स्नान करके निषादोंके राजा गुहसमेत भरत शत्रुघ्न, दोनों भाई, यमुनाजीको शिर नवाकर चल दिये।

आगे मुनि-बर-बाहन आछे। राजसमाजु जाइ सबु पाछे॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे॥

आगे आगे वशिष्ठादि मुनिवरोंकी बढ़िया सवारियां थीं और उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा था। उसके पीछे दोनों भाई सादे भूषण-वस्त्र पहिने मामूली भेषसे पैदल ही चल रहे थे।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम-बास-बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥

सेवक, मित्र और मंत्रीके पुत्र उनके साथ थे और वे लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करते जाते थे। जहां जहां श्रीरामचन्द्रजीके बसने और विश्राम करनेके स्थल मिलते वहां वहां वे प्रेमपूर्वक प्रणाम करते थे।

दो०—मगबासी नरनारि सुनि धामकाम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह बस मुदित जनमफलु पाइ॥ २२२॥

मार्गमें बसनेवाले स्त्रीपुरुष सुनते ही अपना घर-बार और काम-काज छोड़ दौड़ दौड़कर आते और इनका स्वरूप देखकर जन्मफल पाते और स्नेहके वशमें होकर प्रसन्न हो जाते थे।

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामलषनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥

प्रेमके साथ सब स्त्रियां एक दूसरेसे कहने लगीं कि हे सखी, ये श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी हैं कि नहीं? हे सखी, इनकी आयु, शरीर, रंग, रूप, सब वही है, शील और स्नेह भी वैसा ही है और चाल भी उन्हींके समान है।

बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ येहि भेदा॥

परन्तु हे सखी, इनका भेष वैसा नहीं है और न इनके संगमें सीताजी ही हैं। इनके आगे चतुरंगिनी सेना जा रही है। इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, मन मलिन हैं। हे सखी, इसी भेदसे संदेह होता है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तोहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुरबचन तिय दूजी॥

उस स्त्रीके इस तर्कको स्त्रियोंने मनमें मान लिया और वे कहने लगीं कि तेरे समान चतुर कोई नहीं है। उस स्त्रीकी प्रशंसा कर उसकी यथार्थ बातका समर्थन करती हुई एक दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली।

कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम-राज-रस भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सीलु सनेहु सुभाय सुभागी॥

जिस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके राजतिलकका आनन्द-भंग हुआ, वह सब कथा-प्रसंग इसने बड़े प्रेमके साथ कह सुनाया। फिर वह सौभाग्यवती भरतजीकी और उनके शील, स्नेह और स्वभावकी प्रशंसा करने लगी।

दो०—चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरतसरिस को आजु॥ २२३॥

पिताका दिया हुआ राज्य छोड़कर, फल खाते हुए, ये पैदल ही चल रहे हैं और श्रीरामचंद्रजीको मनाने जा रहे हैं। भरतजीके समान आज दूसरा और कौन है?

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख-दूषन-हरनू॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। रामबंधु अस काहे न होई॥

भरतजीका भाईपन, उनकी भक्ति और उनका आचरण, कहने और सुननेसे, दुःख और दोषोंको दूर कर देनेवाला है। हे सखी, जो कुछ भी कहें, वही थोड़ा है। श्रीरामचंद्रजीके भाई होकर ये ऐसे क्यों न होवें?

हम सब सानुज भरतहिं देखे। भइन्हि धन्य जुवतीजन लेखे॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकेइ-जननि-जोग सुतु नाहीं॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत भरतको देखकर हम सब, स्त्रियोंकी गिनतीमें, धन्य हो गयीं। भरतजीके गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर वे सब पछताने लगीं कि केकयी माताके योग्य यह पुत्र नहीं हैं।

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिं न। बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन॥
कहँ हम लोक-बेद-बिधि-हीनी। लघुतिय कुल-करतूति-मलीनी॥

कोई कहने लगी कि रानीको दोष नहीं है। सब कुछ ब्रह्माने किया है जो हमें अनुकूल है। कहां तो हम हैं जो लोक और वेद-विधिसे हीन हैं, जो तुच्छ नारियाँ हैं, जिनके कुलके आचरण भी मलिन हैं,

बसहिं कुदेस कुगांव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्यपरिनामा॥
अस अनंद अचरजु प्रतिग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥

जो कुदेश और खोटे गांवमें बसती हैं और जो खोटी स्त्रियाँ हैं; और कहां पुण्योंके फलस्वरूप यह दर्शन है। ऐसा आनन्द और आश्चर्य प्रत्येक गांवमें हुआ मानों मरुस्थलमें कल्पवृक्ष उग आया हो।

दो०—भरतदरस देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंहलबासिन्ह भयउ बिधिबस सुलभ प्रयागु॥२२४॥

भरतजीके दर्शन करते ही मार्गमें बसनेवाले लोगोंके भाग्य खुल गये मानों दैववश सिंहल देशवासियोंके लिये प्रयाग सुलभ हो गया हो।

निज-गुन-सहित राम-गुन-गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनिआस्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥

अपने गुणोंसमेत श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा सुनते हुए भरतजी श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करते हुए जा रहे थे। मार्गमें जहां तीर्थ, ऋषियोंके आश्रम और देवताओंके मंदिर देखते वहां स्नानपूर्वक प्रणाम करते थे।

मनहीं मन मांगहिं बरु एहू। सीय-राम-पद-पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥

भरतजी मन ही मन यह वरदान मांगते थे कि सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंमें स्नेह होवे। किरात, कोल, वनवासी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, यती और उदासीन उन्हें मार्गमें मिलते थे।

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषनु रामु बैदेही॥
ते प्रभुसमाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनमफलु लहहीं॥

प्रणाम करके वे जिस-तिससे पूछते थे कि लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी किस वनमें हैं। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके सब समाचार वे सब सुनाते और भरतजीके दर्शन कर अपने जीवनका फल पाते थे।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम-लषन-सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बन-बास-कहानी॥

जो लोग यह कहते कि हमने उन्हें कुशलपूर्वक देखा है, उन्हें भरतजी श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके समान प्यारा समझते थे। सबको इसी प्रकार सुन्दर वाणीसे वे पूछते थे और श्रीरामचंद्रजीके वनवासकी कहानी सुनते थे

दो०—तेहि बासर बसि प्रातही चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥ २२५॥

उस दिन ठहरकर दूसरे दिन सवेरे ही भरतजी श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण कर चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेकी अभिलाषा भरतजीके ही समान सब साथियोंको थी।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुषदाहू॥

सब किसीको मंगल-सूचक शकुन होने लगे और सुख देनेवाले शुभ नेत्र और भुजाएँ फड़कने लगीं। इससे सब समाजसमेत भरतजीको बड़ा उत्साह हुआ कि श्रीरामचन्द्रजी मिलेंगे और दुःखदाह मिट जायगा।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेहसुरा सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेमबस बोलहिं॥

जैसा जिसके जीमें था वह वैसा ही मनोरथ करता था। सब प्रेम-मदिरासे छके हुए जा रहे थे। अंग शिथिल था, मार्गमें पांव डगमँगाते थे और प्रेमके वशमें होनेसे विह्वल वचन बोलने लगते थे।

रामसखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीयसमेत बसहिं दोउ बीरा॥

उसी समय श्रीरामचंद्रजीके मित्र गुह निषादने स्वभावसे ही सुहावना पर्वतोंमें शिरोमणि चित्रकूट दिखलाया जिसके पास मंदाकिनी नदीके किनारे श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी, दोनों वीर सीताजीसमेत, बसते हैं।

देखि करहिं सब दंडप्रनामा। कहि जय जानकिजीवन रामा॥
प्रेममगन अस राजसमाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

उसे देखकर सब 'जानकीजीवन श्रीरामचंद्रजीकी जय' कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। वह राज-समाज प्रेममें ऐसा मग्न हो गया मानों श्रीरामचन्द्रजी लौटकर अयोध्याको चल दिये हों।

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह-मम-मलिन-जनेषु॥ २२६॥

उस समय भरतजीको जैसा प्रेम हुआ उसे शेषनाग भी नहीं कह सकते, फिर कविके लिये तो वह अगम्य ही है, जैसे अहंकार और ममतासे मलिन लोगोंके लिये ब्रह्मानंद।

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरके॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते॥

श्रीरामचन्द्रजीके प्रेममें सब शिथिल हो रहे थे। वे सब सूर्य अस्त हो जानेपर भी दो कोस चले गये। फिर जलका स्थान देखकर वे सब ठहरे और श्रीरामचन्द्रजीके इन प्रेमियोंने रात बीतनेपर प्रस्थान किया।

[लक्ष्मण-मोह]

उहां रामु रजनी अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथबियोग ताप तन ताये॥

उधर रात रहते हुए ही श्रीरामचन्द्रजी जग गये। उस रातको सीताजीने यह स्वप्न देखा कि मानों स्वामी श्रीरामचंद्रजीके वियोगकी अग्निसे शरीर तपाये हुए भरतजी सब समाजसमेत आये हुए हैं।

सकल मलिनमन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भये सोचबस सोचबिमोचन॥

सब मनमलीन और दीन-दुःखी हो रहे हैं। सीताजीने सासुओंको कुछ और ही रूपमें देखा। सीताजीका स्वप्न सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें आंसू आ गये। शोकको दूर कर देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी शोकके वशमें हो गये।

लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधुसमेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

वे कहने लगे—हे लक्ष्मण, यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कठोर अनचाही बात कोई सुनायेगा। ऐसा कह भाई लक्ष्मणसमेत श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया और शिवजीकी पूजा कर साधुओंका सम्मान किया।

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रमु गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

देवताओं और मुनियोंका सम्मान करके श्रीरामचंद्रजी उनकी वंदना करके बैठ गये और उत्तर दिशाकी ओर देखने लगे। आकाशमें धूल छायी हुई थी, बहुतसे पक्षी और हिरन व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु श्रीरामचंद्रजीके आश्रममें आ गये थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचंद्रजी यह देखकर उठे कि इसका कारण क्या है। उनका चित्त चकित हो गया। उसी समय कोल-भीलोंने आकर सब समाचार कह सुनाये।

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरदसरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥ २२७ ॥

शुभ मंगल-वचन सुनते ही तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचंद्रजीका मन आनन्दित हो गया, शरीर पुलकायमान हो गया और शरदऋतुके कमलके समान नेत्र प्रेम-जलसे भर गये।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरतआगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥

फिर सीतारमण श्रीरामचन्द्रजी सोचमें पड़ गये कि भरतजीका आना किस कारण हुआ! फिर किसी एकने आकर ऐसा कहा कि उनके संगमें चतुरंगिनी सेना भी बहुत है!

सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। इत पितुवच उत बंधुसँकोचू॥
भरतसुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चितहित थिति पावत नाहीं॥

यह सुनकर श्रीरामचंद्रजीको बड़ा सोच हुआ—इधर पिताका वचन और उधर भाईका संकोच! मनमें भरतजीका स्वभाव समझकर प्रभु श्रीरामचंद्रजीके चित्तमें कोई बात जमने नहीं पाती।

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥
लषन लखेउ प्रभु-हृदय-खभारू। कहत समयसम नीतिबिचारू॥

फिर यह जानकर समाधान हो गया कि भरतजी आज्ञाके वशवर्त्ती, साधु और चतुर हैं। लक्ष्मणजीने देखा कि प्रभु श्रीरामचंद्रजीके हृदयमें सोच है, अतः वे समयानुसार नीतिपूर्ण विचार कहने लगे—

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समय न ढीठु ढिठाईं॥
तुम्ह सरबग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

हे स्वामी, बिना पूछे हुए कुछ कहता हूं। समयपर धृष्टता देनेवाला सेवक धृष्ट नहीं समझा जाता। हे स्वामी, आप सर्वज्ञ हैं, शिरोमणि हैं और मैं पीछे चलनेवाला सेवक हूं, अपनी समझसे कहता हूं।

दो०--नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील-सनेह--निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान ॥२२८॥

हे नाथ, आप शुद्धहृदय, अत्यन्त सरलचित्त तथा शील और स्नेहके भण्डार हैं। हृदयमें सबपर आपका प्रेम और विश्वास है, और सबको आप अपने ही समान जानते हैं।

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिं जनाई॥
भरतु नीतिरस साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेमु सकलजगु जाना॥

परन्तु विषयी जीव प्रभुता पाकर जान-बूझकर मूर्ख और अज्ञानके वशमें हो जाते हैं। भरतजी नीतिमें तत्पर, साधु और चतुर हैं। सारा संसार जानता है कि उन्हें स्वामीके चरणोंमें प्रेम है।

तेऊ आजु राजपदु पाई। चले धरममरजाद मिटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि रामु बनबास एकाकी॥

वह भी आज राज्यपद पाकर धर्मकी मर्यादा तोड़कर चलने लगे। दुष्ट, छोटा भाई (भरत) बुरा अवसर ताककर, यह जानकर कि श्रीरामचन्द्रजी वनवासकी अवस्थामें अकेले हैं,

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दलु बटोरि दोउ भाई॥

और मनमें कुमंत्रणा करके सब समाज सजाकर अकंटक राज्य करनेके लिये आया है। करोड़ प्रकारकी दुष्टताओंकी कल्पना करके भरत और शत्रुघ्न; दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं।

जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाये। जग बौराइ राजपदु पाये॥

यदि जीमें कपट और कुचाल न होती तो रथ, घोड़े और हाथियोंकी पंक्ति किसे भाती? भरतको व्यर्थ ही दोष कौन देवे। राज-पद पाकर संसार बावला हो जाता है।

दो०—ससि गुरु-तिय-गामी नहुष चढ़ेउ भूमि-सुर-जान।
लोकबेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥२२९॥

चंद्रमाने गुरुकी स्त्रीसे भोग किया, राजा नहुष ब्राह्मणोंकी पालकीपर चढ़े और राजा वेणुके समान लोक और वेदसे विमुख तथा नीच कोई दूसरा नहीं हुआ।

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥

सहस्रवाहु, इन्द्र और त्रिशंकु—किसको राज्यमदने कलंकित नहीं किया? भरतने यह उपाय उचित ही किया, शत्रु और ऋणको कभी तनिक भी नहीं रखना चाहिये।

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राममुखु पेखी॥

परन्तु भरतने एक काम अच्छा नहीं किया। असहाय जानकर श्रीरामचंद्रजीका निरादर किया। यह भी आज संग्राममें श्रीरामचंद्रजीका क्रोधपूर्ण मुख देखकर अच्छी तरह समझ पड़ेगा।

एतना कहत नीतिरस भूला। रन-रस-बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥

इतना कहते कहते लक्ष्मणजीको नीतिरस भूल गया और पुलकावलीके मिस युद्ध-रसके वृक्षमें फूल लगने लगे। प्रभु श्रीरामचंद्रजीके चरणोंकी वंदना कर और उनकी रजको अपने शिरपर रखकर लक्ष्मणजी अपना सच्चा और स्वाभाविक बल बतलाते हुए बोले—

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिय रहिय मनु मारें। नाथसाथ धनु हाथ हमारें॥

हे नाथ, मेरा कहना अनुचित न मानियेगा। भरतने हमारे लिये थोड़ा उपाय नहीं किया है। कहांतक सहें और मन मारे रहें। हे स्वामी, आप हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथमें है।

दो०—छत्रिजाति रघु-कुल-जनमु रामअनुज जगु जान।
लातहुं मारें चढ़ति सिर नीच को धूरिसमान॥ २३०॥

मैं क्षत्रिय जातिका हूं, रघुवंशमें मेरा जन्म हुआ है और संसार जानता है कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका छोटा भाई हूं। धूलके समान नीच और कौन है, परन्तु लात मारनेपर वह भी तो शिरपर चढ़ती है।

उठि कर जोरि रजायसु मांगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥
बांधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥

उठकर लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर आज्ञा मांगी मानों वीर-रस सोतेसे जाग गया हो। शिरपर जटाएँ बांधकर और कटिसे तरकस कसकर उन्होंने हाथमें धनुषबाण ले लिया।

आजु रामसेवक जसु लेऊं। भरतहिं समर सिखावन देऊं॥
रामनिरादर कर फलु पाई। सोवहु समरसेज दोउ भाई॥

लक्ष्मणजी कहने लगे—आज मैं श्रीरामचन्द्रजीका सेवक होनेका यश लूंगा और संग्राममें भरतको सीख दूंगा कि तुमने श्रीरामचन्द्रजीका जो निरादर किया, उसका फल पाकर दोनों भाई रणशय्यापर सोओ।

आइ बना भल सकलसमाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥

सब समाज आनेसे अच्छा मौका लग गया। पिछला क्रोध मैं आज प्रकट करूंगा। जैसे सिंह हाथियोंके समूहका मर्दन करता है और जैसे बाज झपटकर लवा पक्षीको ले जाता है।

तैसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउं खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउं रन रामदोहाई॥

वैसे ही सेना और छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत भरतको निरादर करके रणक्षेत्रमें मारूंगा। उनकी सहायता करनेके लिये यदि शिवजी आवें तो भी, हे श्रीरामचन्द्रजी, मुझे आपकी सौगंद है, मैं उन्हें मारूंगा।

दो०—अतिसरोष माषे लषनु लखि सुनि सपथप्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥ २३१॥

लक्ष्मणजी अत्यंत क्रोधमें यह सब कह गये। उन्हें देखकर और उनकी बातें सुनकर तथा उनकी सौगंदको सत्य मानकर सब लोक भयभीत हो गये और लोकपति भरभराकर भाग जानेकी इच्छा करने लगे।

जगु भयमगन गगन भइ बानी। लषन-बाहु-बलु बिपुल बखानी॥
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥

संसारमें डर छा गया। उसी समय लक्ष्मणजीकी भुजाओंके भारी बलका वर्णन करती हुई आकाशवाणी हुई कि हे तात! तुम्हारा प्रताप और तुम्हारा प्रभाव जाननेवाला कौन है, और कौन कह सकता है?

अनुचित उचित काजु कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

कुछ भी काम हो, उचित और अनुचित समझकर करना चाहिये, जिसमें सब कोई भला कहे। वेद बतलाते हैं कि जो पण्डितजन कोई काम सहसा करके फिर पीछे पछताते हैं, वे पण्डित नहीं है।

सुनि सुरबचन लषन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमदु भाई॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये। फिर श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया। श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे—हे भाई, तुमने बड़ी अच्छी नीति कही। हे तात, राजमद सबसे कठिन है।

जो अँचवत नृप मातहिं तेई। नाहिं न साधु सभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरतसरीसा। बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा॥

आचमन करते ही, राजपद पाते ही, जो राजा मतवाले हो जाते हैं, वे वही होते हैं जिन्होंने साधुजनोंकी सभाका सेवन नहीं किया। हे लक्ष्मण! सुनो, विधाताकी सृष्टिमें भरतजीके समान भला कोई दूसरा न तो देखा है और न सुना है।

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुं कि कांजीसीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ २३२॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवका पद पाकर भी भरतजीको राजमद न होगा। कांजीकी बून्दोंसे क्षीर समुद्र क्या कभी फट जाता है?

तिमिरुतरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥

अंधकार चाहे तरुण सूर्यको निगल जावे, चाहे आकाश प्रसन्नतासे बादलमें मिल जावे, गायके खुरके गढ़में भरे हुए जलमें चाहे कुम्भजऋषि डूब जावें, पृथिवी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा छोड़ देवे—

मसकफूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितुआना। सुचि सुबंधु नहिं भरतसमाना॥

और मच्छरकी फूंकसे चाहे मेरु पहाड़ उड़ जावे; परन्तु भाई, भरतजीको राजमद नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण, मुझे तुम्हारी और पिताजीकी सौगंद है, भरतजीके समान पवित्र और अच्छा कहीं भाई नहीं है।

सगुनषीरु अवगुनजलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरत हंसु रबिबंसु तड़ागा। जनमि कीन्ह गुनदोषु बिभागा॥

हे तात, उत्तम गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जलको मिलाकर विधाता यह संसार रचता है। सूर्यवंशरूपी सरोवरमें भरतजी हंसके समान हैं जिन्होंने जन्म लेकर गुण और दोषोंका विभाग किया है।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उँजियारी॥
कहत भरतु-गुन-सीलु-सुभाऊ। प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ॥

दूधरूपी गुणोंको ग्रहण कर और अवगुणरूपी जलको छोड़कर उन्होंने अपने यशसे संसारको उज्ज्वल कर दिया है। भरतजीका गुण, शील और स्वभाव कहते कहते श्रीरामचन्द्रजी प्रेमरूपी समुद्रमें मग्न हो गये।

दो०—सुनि रघुबरबानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों प्रभु को कृपानिकेतु ॥ २३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर और भरतजीपर उनका प्रेम देखकर सब देवता प्रशंसा करने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीके समान स्वामी और दयाका भण्डार और कौन है?

जौं न होत जग जनम भरतको। सकल-धरम-धुर धरनि धरत को॥
कबि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

संसारमें यदि भरतजीका जन्म न होता तो पृथिवीके सम्पूर्ण धर्मके भारको कौन धारण करता? भरतजीके गुणोंकी कहानी कविजनोंके लिये भी अगम्य है। हे रघुनाथजी, आपको छोड़कर उसे और कौन जानता है?

लषनु रामु सिय सुनि सुरबानी। अतिसुखु लहेउ न जाइ बखानी॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने बड़ा सुख पाया। उसका वर्णन नहीं किया जाता।

[भरतागमन]

इहाँ भरतु सब सहित सुहाये। मंदाकिनी पुनीत नहाये॥

इधर अपने सब सहायकोंसमेत भरतजीने पवित्र मंदाकिनीमें स्नान किया।

सरितसमीप राखि सब लोगा। माँगि मातु-गुरु-सचिव-नियोगा॥
चले भरतु जहँ सियरघुराई। साथ निषादनाथ लघुभाई॥

नदीके पासमें सब लोगोंको ठहराकर और माता, गुरु एवं मंत्रीकी आज्ञा मांगकर निषादोंके राजा गुह और छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत भरतजी वहांको चले जहां सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी थे।

समुझि मातुकरतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लषनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

माताकी करतूत समझकर भरतजी सकुचाने लगे। अपने मनमें वे करोड़ों कुतर्क करने लगे। वे सोचने लगे—मेरा नाम सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी अपना स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह न उठ जावें।

दो०—मातु मते महँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघअवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२३४॥

माताके मतमें मुझे मानकर वे जो कुछ भी करेंगे वह थोड़ा ही है; परन्तु अपनी ओर देखकर वे पापों और अवगुणोंको क्षमा करके मेरा आदर करेंगे।

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरे सरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोषु सब जनहीं॥

श्रीरामचन्द्रजी मुझे मलिनमन जानकर चाहे त्याग दें अथवा सेवक जानकर मेरा आदर करें—दोनों ही अवस्थाओंमें मुझे तो श्रीरामचन्द्रजीकी जूतियां ही शरण हैं। श्रीरामचन्द्रजी अच्छे स्वामी हैं, सब दोष सेवकका ही है।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नबीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥

संसारमें यशके पात्र तो पपीहे और मछलियां हैं, जो क्रमशः अपने नियम और प्रेमको नित्य नया रखनेमें चतुर हैं। मनमें ऐसा सोचते हुए भरतजी रास्ता चले जा रहे हैं। संकोच और स्नेहसे उनका सारा शरीर शिथिल हो रहा है।

फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥

माताकी की हुई दुष्टता भरतजीके मनको पीछे लौटाती है; परन्तु भक्तिके बलसे वे धीरजके मार्गपर चलने लगते हैं। किन्तु जब वे श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव समझते हैं तब मार्गमें उनके पैर जल्दी जल्दी उठने लगते हैं।

भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाह जल-अलि-गति जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

उस समय भरतजीकी दशा कैसी हो रही थी, जैसी जलके प्रवाहमें जल-भौंरेकी गति हुआ करती है। भरतजीका सोच और स्नेह देखकर उस समय गुह निषादको अपने शरीरकी सुध भूल गयी।

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम विषादु॥ २३५॥

इसी समय शुभ शकुन होने लगे जिन्हें सुनकर और समझकर गुह निषादने कहा कि सोच मिट जायगा और आनन्द हो जायगा, परन्तु परिणाममें फिर दुःख ही होगा।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आस्रमनिकट जाइ नियराने॥
भरत दीख बन-सैल-समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥

सेवक गुह निषादकी सब बातें भरतजीने सत्य समझीं और वे आश्रमके

समीप जा पहुँचे। भरतजीने वह पर्वत, वन और समाज देखा। वह सब देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुए मानों कोई भूखा अच्छा अन्न पा गया हो।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रहमारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरतगति तेहि अनुहारी॥

जैसे ईति (अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियोंसे हानि, चूहोंसे बरबादी, चिड़ियोंसे नाश, लूट-चढ़ाई और महामारी, कुल सातों प्रकारके उपद्रव), भीति, मारी ग्रहदशा और दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों तरहके दुःख, सबसे पीड़ित होकर कहींकी प्रजा दुःखी हो और फिर अच्छे देश और अच्छे राज्यमें जाकर सुखी हो जाय, उसीके समान भरतजीकी दशा हो गयी।

रामबास बनसंपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥

श्रीरामचंद्रजीके निवाससे वनकी सब सम्पत्तियाँ ऐसी शोभित हुईं मानों अच्छे राजाको पाकर प्रजा सुखी हुई हो। विवेक राजा है, वैराग्य मंत्री है, सुहावना वन पवित्र देश है।

भट जमनियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरनआस्रित चित चाऊ॥

संयम और नियम योद्धा हैं, पर्वत राजधानी है, शान्ति और सुबुद्धि पवित्र और सुन्दर रानियां हैं। सुन्दर राजा सर्वाङ्ग सम्पन्न है और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें आश्रित रहनेसे उसका चित्त सदैव प्रसन्न रहता है।

दो०—जीति मोह-महि-पालु-दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राज्य पुर सुख संपदा सुकालु॥ २३६॥

यह विवेकरूपी राजा, मोहरूपी राजाको सेनासमेत जीतकर अकंटक राज्य कर रहा है। इसकी राजधानीमें सदा सुख, सम्पत्ति और सुकाल रहता है।

बनप्रदेस मुनिबास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँगन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजासमाजु न जाइ बखाना॥

वन-प्रदेशमें मुनियोंके बहुतसे स्थान हैं जो मानों शहर, कस्बे, गांव और खेड़े हैं। तरह तरहके बहुतसे विचित्र पक्षी और हिरन ही प्रजाका समाज है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥

गैंड़ा, हाथी, सिंह, बाघ, शूकर, भैंसा, बैल, इनका समाज देखकर सराहनेयोग्य है। ये सब वैर छोड़कर जहां तहां एक संग चरते हैं। यही मानों चतुरंगिनी सेना है।

झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधबिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदितमन॥

झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी गर्जना करते हैं—यही मानों अनेक प्रकारसे नगारे बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता, कोयल और हंस—सबके झुण्ड मनमें प्रसन्न होकर बोल रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद-मंगल-मूला॥

भौंरोंके समूह गा रहे हैं और मोर नाच रहे हैं मानो अच्छे राज्यमें चारों ओर आनन्द-मंगल हो रहे हों। बेल, वृक्ष और घास; सब फूल-फल रहे हैं और सभी समाज आनन्द और मंगलका मूल हो रहा है।

दो०—रामसैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेमु।
तापस तपफलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु॥ २३७॥

श्रीरामचन्द्रजीके पर्वतकी शोभा देखकर भरतजीके हृदयमें बड़ा प्रेम हुआ, जैसे कोई तपस्वी अपनी तपस्याका फल पाकर नियमोंके समाप्त हो जानेपर सुखी हुआ हो।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखियहि बिटपबिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥

तब केवट गुह निषादने दौड़कर ऊँचेपर चढ़कर और बांह उठाकर भरतजीसे कहा—हे नाथ! पाकर, जामुन, आम और तमालके वे बड़े पेड़ देखिये।

तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसालु देखि मनु मोहा॥
नील सघन पलुव फल लाला। अबिचल छांह सुखद सब काला॥

उन श्रेष्ठ वृक्षोंके बीचमें जो वह सुन्दर विशाल बरगदका वृक्ष शोभित हो रहा है, जिसे देखकर मन मोहित हो जाता है, जिसके पत्ते नीले और घने हैं, फल लाल हैं, जिसकी अखण्ड छाया सब ऋतुओंमें सुखदायक है—

मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुखमासी॥
ए तरु सरितसमीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥

और मानों ब्रह्माने अन्धकार और ललाईके समूहका समेटकर उसे शोभा-

रूप ही रच दिया हो। हे स्वामी, इसी वृक्षके पास नदी है, जहां श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पर्णकुटीको छाया है !

तुलसी तरुवर विविध सुहाये। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाये॥
बटछाया बेदिका बनाई। सिय निज-पानि-सरोज सुहाई॥

वहां तुलसीके श्रेष्ठ वृक्ष शोभित हो रहे हैं जिन्हें कहीं कहीं सीताजीने और कहीं कहीं लक्ष्मणजीने लगाया है। सीताजीने अपने सुन्दर कर-कमलोंसे बरगदकी छायामें वेदीको बनाया है—

दो०—जहाँ बैठि मुनि-गन-सहित नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥२३८॥

जहां मुनियोंके समूह-समेत नित्य बैठकर सीताजी और सुजान श्रीरामचन्द्रजी वेद, शास्त्र और पुराण, सबका इतिहास और सबकी कथाएँ सुनते हैं।

सखाबचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

मित्रके वचन सुनकर और उस वृक्षको देखकर भरतजीके नेत्रोंमें पानी उमड़ आया। दोनों भाई उसे प्रणाम करते हुए चले। उनकी प्रीति कहते हुए सरस्वती भी सकुचाती हैं।

हरषहिं निरखि राम-पद-अंका। मानहुँ पारसु पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुबर-मिलन-सरिस-सुख पावहिं॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके चिन्ह देखकर वे प्रसन्न होते हैं मानों किसी गरीबने पारस पा लिया हो। उन चरण-चिन्होंकी धूलको शिरपर रखकर हृदय और नेत्रोंसे लगाते हैं और श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट होनेके समान सुख पाते हैं।

देखि भरतगति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़जीवा॥
सखहिं सनेहबिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥

भरतजीकी अत्यन्त अकथनीय दशा देखकर हिरन, पक्षी और जड़ पदार्थ भी प्रेममें मग्न हो गये। प्रेम-विवश होनेके कारण मित्र गुह निषाद रास्ता भूल गया, फिर देवताओंने सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेह सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

भरतजीको देखकर साधक और सिद्ध लोग प्रेममें भर गये और उनके

स्वाभाविक प्रेमकी प्रशंसा करने लगे कि यदि पृथिवीपर भरतका जन्म न होता तो अचरको सचर और चरको अचर कौन कर देता।

दो०—प्रेमु अमिय मंदरु बिरह भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटे सुर-साधु-हित कृपासिंधु रघुबीर॥ २३६॥

भरतरूपी गहरे समुद्रको विरहरूपी मंदराचलसे मथकर कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीने देवताओं और साधुओंके कल्याणके लिये प्रेमरूपी अमृत प्रकट कर दिया।

[बंधु-मिलाप]

सखासमेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभुआस्रमु पावन। सकल-सु-मंगलु-सदनु सुहावन॥

मित्र गुह निषादसमेत इस मनोहर जोड़ी—भरत और शत्रुघ्न—को घने वनकी आड़ होनेसे लक्ष्मणजीने नहीं देख पाया। भरतजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र कर देनेवाला सुन्दर आश्रम देखा जो सभी सुन्दर मङ्गलोंका भाण्डार था।

करत प्रबेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥
देखे भरत लषन प्रभुआगें। पूछे बचन कहत अनुरागें॥

उसमें प्रवेश करते ही दुःखकी पीड़ा मिट गयी मानों किसी योगीने परमार्थ पा लिया हो। भरतजीने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके आगे खड़े हैं और उन्होंने कुछ पूछा है जिसका उत्तर वे बड़े प्रेमसे दे रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनिपट बांधे। तून कसे कर सर धनु कांधे॥
बेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू॥

उनके शिरपर जटाएँ हैं, कमरमें मुनियोंका वस्त्र बांधे हुए हैं, तरकस कसा हुआ है, हाथमें बाण लिये हुए हैं और कंधेमें धनुष पड़ा हुआ है। वेदीपर मुनियों और साधुजनोंका समाज है जहां सीताजीसमेत श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा॥
करकमलनि धनुसायकु फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत॥

छालके कपड़े हैं, जटाएँ रखी हुई हैं, सांवला शरीर है, मानों रति और कामदेवने मुनिका भेष रखा हो। अपने करकमलोंसे वे धनुष और बाण घुमा रहे हैं। जिनकी ओर वे हँसकर देख लेते हैं उनके हृदयकी जलन मिट जाती है।

दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली-मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यानसभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु ॥ २४० ॥

मुनियोंकी सुन्दर मण्डलीके बीचमें सीताजीसमेत रघुवंशमें चन्द्रमाके समान श्रीरामचन्द्रजी शोभा पा रहे हैं मानों मूर्तिमान ज्ञानकी सभामें भक्ति और सच्चिदानन्द भगवान् शरीर धारण किये हुए हों।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥

छोटे भाई शत्रुघ्न और मित्र गुह निषादसमेत भरतजी प्रसन्न-मन होकर हर्ष-शोक और सुख-दुःख, सब भूल गये। वे यह कहकर दण्डकी भांति पृथिवी-पर गिर पड़े कि हे नाथ! मेरी रक्षा करो, हे स्वामी! मेरी रक्षा करो।

बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जिय जाने॥
बंधुसनेह सरस एहि ओरा। उत साहिबसेवा बरजोरा॥

प्रेमभरे भरतजीके ये वचन लक्ष्मणजीने पहिचान लिये और अपने हृदयमें यह जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर भाईका सरस प्रेम और उधर स्वामीकी सेवाका प्रबल आकर्षण!

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लषनमन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥

उनसे न तो मिला ही जाता है और न छोड़ते ही बनता है। अच्छे कवि लक्ष्मणजीके मनकी उस समयकी गतिका (इस प्रकार) वर्णन करते हैं कि मानों कोई खिलाड़ी चढ़ी हुई पतंगको खींच रहा हो। (अन्तमें) सेवाको महत्त्व देकर लक्ष्मणजी यथास्थान बने रहे।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

लक्ष्मणजी प्रेमके साथ कहने लगे कि हे श्रीरामचंद्रजी, पृथिवीपर मस्तक झुकाकर भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। सुनते ही श्रीरामचंद्रजी प्रेमसे अधीर होकर उठ बैठे! उस समय कहीं उनके वस्त्र रहे और कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण!

दो०—बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान ॥२४१॥

कृपानिधान श्रीरामचंद्रजीने भरतजीको बलपूर्वक उठा लिया और अपने

हृदयसे लगा लिया। भरतजी और श्रीरामचंद्रजीका मिलना देखकर सब अपनेको भूल गये।

मिलनिप्रीति किमि जाइ बखानी। कबि कुल अगम करम मन बानी ॥
परम—प्रेम—पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥

उस मिलापका प्रेम कैसे वर्णन किया जा सकता है। कविजनोंके लिये वह मन, वाणी और कर्मसे अगम्य है। दोनों भाई मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारको भुलाकर परम प्रेमसे परिपूर्ण हैं।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥
कबिहिं अरथ आखर बलु सांचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥

भला कहो, उस सुन्दर प्रेमको कौन व्यक्त कर सकता है? कविकी बुद्धि किसकी छायाका अनुसरण करे? कविको सच्चा बल अक्षरों और उनके अर्थका है जैसे नट तालकी गतिका अनुसरण करके नाचता है।

अगम सनेहु भरतरघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि-हरि-हर-को॥
सो मैं कुमति कहउँ केहि भांती। बाजु सुराग कि गाँडरतांती ॥

भरतजी और श्रीरामचंद्रजीका प्रेम अगम्य है जहां ब्रह्मा, विष्णु और शिवके मनकी भी पहुँच नहीं है! उस प्रेमका वर्णन मैं दुर्बुद्धि कैसे करूं? गाँडरकी तांतसे क्या अच्छा राग बज सकता है?

मिलनि बिलोकि भरतरघुबर की। सुरगन सभय धुकधुकी धरकी॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीका मिलना देखकर देवताओंकी छाती डरसे धड़कने लग गयी। परन्तु जब उन्हें देवगुरु बृहस्पतिने समझाया तब मूर्खोंको ज्ञान हुआ और फिर वे फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं केवट भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥ २४२ ॥

प्रेमके साथ शत्रुघ्नसे मिलकर श्रीरामचन्द्रजीने केवट गुह निषादसे भेंट की। लक्ष्मणजी बड़े भावसे प्रणाम करते हुए भरतजीसे मिले।

भेंटेउ लषन ललकि लघुभाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि-मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥

फिर लक्ष्मणजी अत्यन्त उत्कण्ठित होकर अपने छोटे भाई शत्रुघ्नसे मिले। फिर उन्होंने गुह निषादको हृदयसे लगा लिया। फिर दोनों भाइयोंने मुनिजनोंकी वंदना की और मनचाहा आशीर्वाद पाकर वे आनंदित हुए।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर करकमल परसि बैठाये॥

प्रेममें उमंगकर छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत भरतजी सीताजीके चरणकमलोंकी रजको शिरपर रखकर बारंबार प्रणाम करने लगे। सीताजीने उन्हें उठा लिया और उनके शिरपर अपना कमलके समान हाथ रखकर उन्हें बिठलाया।

सीय असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देहसुधि नाहीं॥
सबबिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥

सीताजीने अपने मनमें भरतजीको असीस दी, वे प्रेममें मग्न हो गयीं, उन्हें अपने शरीरकी सुध भूल गयी। सीताजीको सब प्रकारसे प्रसन्न देखकर भरतजीके हृदयका झूठा डर दूर हो गया और वे निश्चिन्त हो गये।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूछा। प्रेम भरा मनु निजगति छूछा॥
तेहि अवसरु केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥

न कोई कुछ कहता था और न कोई कुछ पूछता था, प्रेमसे भरा हुआ मन अपनी स्वाभाविक चंचलतासे शून्य हो गया। उस समय धीरज रखकर और हाथ जोड़कर केवट (गुह निषाद) प्रणाम करके विनती करने लगा—

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब आये बिकल बियोग॥ २४३॥

हे नाथ, मुनिनाथ वशिष्ठजीके साथ सब माताएँ, नगर-निवासी, सेवक, सेनापति और मंत्री, सब आपके वियोगसे व्याकुल होकर आये हैं।

सीलसिंधु सुनि गुरुआगवनू। सियसमीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर-धरमु-धुर दीनदयाला॥

शीलके समुद्र दीनदयालु, धीर और धर्मधुरंधर श्रीरामचंद्रजीने जब गुरुका आगमन सुना तब सीताजीके पास शत्रुघ्नको छोड़कर उसी समय वे शीघ्रताके साथ चल दिये।

गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंडप्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥

गुरुको देखते ही प्रभु श्रीरामचंद्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजी-समेत प्रेममें भर गये और दण्डवत्-प्रणाम करने लगे। मुनिवर वशिष्ठने दौड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रेममें उमंगकर दोनों भाइयोंसे मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंडप्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेहु समेटा॥

प्रेमसे पुलकायमान होकर केवटने अपना नाम कहकर दूरसे वशिष्ठजीको दण्डवत्-प्रणाम किया। ऋषिने जबर्दस्ती श्रीरामचंद्रजीके मित्र गुह निषादसे भेंट की मानों पृथिवीपर लोटते हुए स्नेहको समेट लिया हो।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहिं सुर बरिषहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठसम को जग माहीं॥

सुन्दर मंगलोंका मूल श्रीरामचंद्रजीकी भक्तिकी प्रशंसा कर देवता आकाशसे फूल बरसाने लगे। इस गुह निषादके समान निपट नीच कोई नहीं है और वशिष्ठजीके समान बड़ा संसारमें और कौन है?

दो०—जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीता-पति-भजन को प्रगट प्रतापप्रभाउ॥२४४॥

फिर भी जिसे देखकर मुनिराज वशिष्ठ आनन्दित होकर लक्ष्मणजीसे भी अधिक मिले, यह सब सीतापति श्रीरामचंद्रजीके भजनका ही प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।

आरत लोगु रामु सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥

करुणानिधान भगवान् श्रीरामचंद्रजी भलीभांति जाननेवाले हैं। उन्होंने जान लिया कि सब लोग दुःखी हैं, फिर जो जिस भावसे अभिलाषी था उसकी वैसी ही इच्छा उन्होंने पूरी की।

सानुज मिलि पलमहुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं॥

पलभरमें छोटे भाई-समेत सबसे मिलकर कठोर दुःख-दाह दूर कर दिया। श्रीरामचंद्रजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है जैसे करोड़ों घड़ोंमें एक क्षणमें एक ही सूर्यकी छाया पड़ जाती है।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारी। जनु सुबेलिअवलीं हिममारी॥

प्रेममें उमंगकर केवट गुह निषादसे मिलकर सब नगर-निवासी उसके भाग्यकी प्रशंसा करते हैं। श्रीरामचंद्रजीने देखा कि सब माताएँ बहुत दुःखित हैं मानों सुन्दर लताओंकी पंक्तियोंको पालेने मार दिया हो।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

स्वाभाविक सरलता और भक्ति-बुद्धिसे पहिले श्रीरामचंद्रजी कैकयीसे मिले। चरणोंमें पड़कर और फिर काल, कर्म और दैवके शिरपर दोष रखकर श्रीरामचंद्रजीने कैकयीको समझाया।

दो०—भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईसआधीन जगु काहु न देइय दोषु॥ २४५॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंसे भेंट की और उन्हें ज्ञान देकर संतुष्ट कर कहा कि हे माताओ, संसार ईश्वरके अधीन है। किसीको दोष नहीं देना चाहिये।

गुरु तिय-पद बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे संग आई॥
गंग-गौरि-सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदुबानी॥

फिर दोनों भाइयोंने ब्राह्मणोंकी स्त्रियों-समेत, जो संगमें आयीं थीं, गुरु वशिष्ठकी पत्नीके चरणोंकी वन्दना की और गंगा और पार्वतीके समान सबका सम्मान किया। ये सब अत्यन्त प्रसन्न होकर मीठी वाणीसे आशिष देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्राअंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननीचरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता॥

फिर चरण पकड़कर दोनों भाई सुमित्राकी गोदमें ऐसे लपट गये मानों अत्यन्त निर्धनसे सम्पत्ति आ मिली हो। फिर दोनों भाई (कौशल्या) माताके चरणोंमें आकर पड़ गये। उनका सारा शरीर प्रेममें व्याकुल हो गया।

अति अनुराग अंब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाये॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू॥

माताने उन्हें बड़े प्रेमसे हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके प्रेमाश्रुओंसे स्नान करवा दिया। उस समयके हर्ष और शोकका कवि कैसे वर्णन कर सकता है जैसे गूंगा अपने स्वादका।

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीसनियोगू। जल थल तकि तकि उतरे लोगू॥

भाई लक्ष्मणसमेत श्रीरामचन्द्रजी जब अपनी मातासे मिल चुके तब उन्होंने गुरुसे कहा कि पधारिये। मुनीश्वरकी आज्ञा पाकर नगर-निवासी सब लोग जल और स्थान देख देखकर उतरे।

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिये साथ।
पावनु आस्रमु गवन किय भरत लषन रघुनाथ॥ २४६॥

ब्राह्मण, मंत्री, माताओं और गुरु आदि गिने हुए प्रमुख लोगोंको भरतजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीने साथमें ले लिया और फिर पवित्र आश्रमके लिये प्रस्थान किया।

सीय आइ मुनि-बर-पग लागी। उचित असीस लही मनमांगी॥
गुरुपतिनिहिं मुनितियन्ह समेता। मिला प्रेमु कहि जाइ न जेता॥

आकर सीताजी मुनिवरके चरणोंमें पड़ गयीं और मनमाँगी उचित आशिष पायी। फिर सीताजी मुनिपत्नियोंसमेत गुरु वशिष्ठकी पत्नीसे मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूदे नयन सहमि सुकुमारी॥

सभीके चरणोंकी बार बार वंदना करके सीताजीने अपने जीको प्यारे लगनेवाले आशीर्वाद पाये। सुकुमारी सीताजीने जब सब सासुओंको देखा तब सहमकर अपने नेत्र बंद कर लिये—

परीं बधिकबस मनहु मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा सो सबु सहिय जो दैउ सहावा॥

मानों हंसिनियां वधिकके वशमें पड़ गयी हों। वे सोचने लगीं कि विधाताने यह क्या कुचाल कर दी। सीताजीको देखकर सासुओंने भी बड़ा दुःख पाया। दैव जो कुछ सहावे वह सब सहना ही पड़ता है।

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील-नलिन-लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

तब अपने हृदयमें धीरज रखकर और नील कमलके समान नेत्रोंमें जल-भरकर जिस समय राजा जनककी पुत्री सीताजी सब सासुओंसे जाकर मिलीं उस समय पृथिवीपर करुणा-रस छा गया।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेमबस रहिहहु भरी सोहाग॥ २४७॥

सबके चरणोंमें बारंबार पड़कर सीताजी बड़े प्रेमसे मिलने लगीं और वे वशमें होकर हृदयसे आशिष देने लगीं कि तुम अखण्ड सौभाग्यवती

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ग्यानी॥
कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथगाथा॥

सीताजीसमेत सब रानियां प्रेममें व्याकुल हो गयीं। ज्ञानी गुरुने सबसे बैठनेको कहा। फिर मायामय संसारकी गतिका वर्णन कर मुनिनाथ वशिष्ठजीने कुछ परमार्थकी कथाएँ कहीं।

नृप कर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥
मरनहेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी॥

फिर उन्होंने राजा दशरथके देवलोक सिधारनेका हाल सुनाया जिसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने दुःसह दुःख पाया। यह विचारकर कि राजा दशरथके मरनेका कारण मेरा प्रेम है, धीरधुरंधर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गये।

कुलिसकठोर सुनत कटुबानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥

राजाके स्वर्गवास-संबंधी बज्रसे भी कठोर कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी, सीताजी और सब रानियां विलाप करने लगीं। सारा समाज शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो गया मानों राजाका स्वर्गवास आज ही हुआ हो।

मुनिवर बहुरि रामु समुझाये। सहित समाज सुरसरित नहाये॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा॥

मुनिवर वशिष्ठने फिर श्रीरामचन्द्रजीको समझाया और सब समाजसमेत गङ्गाजीमें स्नान किया। उस दिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने निर्जलव्रत किया और वशिष्ठमुनिके कहनेपर भी किसीने जल ग्रहण नहीं किया।

दो०—भोरु भये रघुनंदनहिं जो मुनि आयसु दीन्ह।
स्रद्धा-भगति-समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह॥ २४८॥

प्रातःकाल होनेपर मुनिने श्रीरामचन्द्रजीको जो आज्ञा दी, वह सब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने श्रद्धा और भक्तिसमेत आदरपूर्वक किया।

करि पितुक्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी॥
जासु नाम पावक अघतूला। सुमिरत सकल-सु-मंगल-मूला॥

जैसा वेदमें वर्णन किया है, उसके अनुसार पिताकी क्रिया करके पापरूपी अंधकारके लिये सूर्यके समान श्रीरामचन्द्रजी पवित्र हुए। पापरूपी रूईके लिये जिनका नाम अग्नि है और जिनका स्मरण सभी शुभमङ्गलोंका मूल है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथआवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते॥

वे श्रीरामचन्द्रजी शुद्ध हुए, यह साधुसम्मत उसी प्रकार है जिस प्रकार गङ्गाजीमें तीर्थोंका आवाहन। शुद्ध हुए जब दो दिन बीत गये तब प्यारे श्रीरामचंद्रजी गुरुजीसे बोले--

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद-मूल-फल-अंबु-अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥

हे नाथ, सब लोग यहां अत्यन्त दुःखी हैं; क्योंकि वे सब कंद, मूल, फल और जलका ही भोजन करके रहते हैं। छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत भरत, मंत्री और सब माताएँ, इन सबको देखकर मुझे एक एक पल युगके समान बीत रहा है।

सबसमेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहां अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गोसाईं॥

सबको साथ लेकर आप अयोध्याको पधारिये। आप यहां हैं और राजा इंद्रपुरीमें! मैंने यह सब बहुत कहा और धृष्टता की। हे स्वामी! जैसा उचित हो, वैसा कीजिये।

दो०—धरमसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरसु देखि लहहिं बिस्राम॥२४६॥

वशिष्ठजी कहने लगे कि हे राम! आप धर्मकी मर्यादा हैं, करुणाके स्थान हैं, आप भला ऐसा क्यों न कहें? ये दुःखी लोग दो दिनसे आपके दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं।

रामबचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुरुगिरा सु-मंगल-मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया मानों समुद्रमें जहाज डूब रहा हो। फिर सुन्दर मंगलोंका मूल गुरुकी वाणी सुनी मानों डूबते जहाजको बचानेके लिये अनुकूल हवा चलने लगी हो।

पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥

जिसे देखकर पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं उस पवित्र जलमें वे सब तीनों कालमें स्नान करते हैं। मंगलमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीको नेत्र भर भरकर वे सब देखते और दण्डवत् कर करके प्रसन्न होते हैं।

राम-सैल-बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिधि-ताप-हर त्रिबिध बयारी॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके पर्वत और वनको देखने जाते हैं जहां सब सुख हैं, और सब दुःखोंमेंसे कोई भी नहीं है। जहां झरनोंसे अमृतके समान जल झरता है और जहां तीनों तरहके तापोंको दूर कर देनेवाली शीतल, मंद और सुगंधित वायु बहती है.

बिटप बेलि त्रिन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भांती॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥

जहां असंख्य जातियोंके वृक्ष, बेलें और घासें हैं, बहुत प्रकारके फल, फूल और पत्ते हैं, शिलाएँ सुन्दर हैं और वृक्षोंकी छाया सुखद है। बनकी शोभाका वर्णन किससे किया जा सकता है ?

दो०—सरनि सरोरुह जल बिहँग कूजत गुंजत भृंग।
बैरबिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥ २५०॥

सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं, जलके पक्षी बोल रहे हैं, भौंरे गूंज रहे हैं और अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर रंग-विरंगे पक्षी और हिरन वनमें विहार कर रहे हैं।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परनपुटी रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥

वनमें रहनेवाले कोल किरात और भील मीठे, पवित्र, सुन्दर और अमृतके समान स्वादिष्ट कंद, मूल, फल और अंकुर इकट्ठे करके दोनोंमें भर भरकर उन्हें अच्छी तरह सजाकर—

सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादभेदु गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥

विनती और प्रणाम करके सबको देते और उसका स्वाद, भेद, गुण और नाम कह कहकर बतलाते हैं; लोग बहुतेरा देते हैं; परन्तु वे कीमत नहीं लेते और जब कोई दी हुई चीज लौटाने लगता है तब श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ दिलाते हैं।

कहहिं सनेहमगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु रामप्रसादा॥

तब वे स्नेहमें मग्न होकर मीठी वाणीसे कहते हैं और उत्तम प्रेम पहिचानकर मान जाते हैं। वनवासीजन कहने लगे--आप पुण्यवान् हैं और हम-सब हैं नीच निषाद। श्रीरामचंद्रजीके प्रसादसे हम सबने भी दर्शन पा लिये।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरुधरनि देव-धुनि-धारा॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥

आपके दर्शन हम सब लोगोंके लिये अत्यन्त अलभ्य थे जैसे मरुभूमिमें गंगाजीकी धारा। श्रीरामचन्द्रजी कृपालु हैं, निषादोंपर दया करनेवाले हैं। जैसा राजा हो वैसा ही उसकी प्रजा और कुटुम्बियोंको भी होना चाहिये।

दो०—यह जिय जानि सँकोचु तजि करिय छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि फल त्रिन अंकुर लेहु॥२५१॥

हृदयमें यह जानकर संकोच छोड़कर हमपर दया कीजिये और हमारा प्रेम देखकर हमें कृतार्थ करनेके लिये ये फल, तृण और अंकुर लीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवाजोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताई॥

आप प्यारे पाहुने हैं और वनमें पधारे हैं। आपकी सेवा करनेयोग्य हमारे भाग्य नहीं हैं! हे स्वामी, आपको हम क्या देंगे? किरातोंकी मित्रता ईंधन और पत्तोंकी होती है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासनबसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव-गन-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥

हमारी बहुत बड़ी सेवा यही है कि आपके कपड़ों और बर्त्तनोंको चुरा नहीं लेते! अनेक जीवोंकी हत्या करनेवाले हम सब मूर्ख प्राणी हैं और दुष्ट, दुर्बुद्धि, खोटी चालवाले और बुरी जातिके हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघु-नंदन-दरस प्रभाऊ॥

हमें पाप करते हुए दिनरात बीतते हैं। हमारी कमरमें न कपड़ा है और न पेट ही अघाता है। स्वप्नमें भी धर्म-बुद्धि हम लोगोंमेंसे किसीको कैसे हो। यह जो कुछ है वह श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंका प्रभाव है।

जब तें प्रभु-पद-पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे॥

जबसे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको देखा है तबसे हमारे सब दुःसह दुःख और दोष मिट गये। वनवासियोंके ये वचन सुनते ही अयोध्यापुरीके रहनेवाले सब लोग प्रेममें भर गये और उनके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे।

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन-सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नरनारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनिकी गिरा।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लेइ लौका तिरा॥

सब लोग उनके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे और प्रेमसे भरे हुए वचन सुनाने लगे। वे उनका बोलना, मिलना और सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम देखकर सुखी होने लगे। कोल और भीलोंकी वाणी सुनकर पुरुष और स्त्रियां सब अपने प्रेमका निरादर करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुवंशमें मणिके समान श्रीरामचन्द्रजीकी यह कृपा है जो नौकाको लेकर लोहा तिर गया।

सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम॥२५२॥

प्रतिदिन सब लोग आनन्दित होकर वनमें चारों ओर विहार करते हैं। वे सब ऐसे पुष्ट हो गये जैसे बरसातमें पहिला पानी पड़ते ही मेंढक और मोर हो जाते हैं।

पुर नर नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलकसम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥

अयोध्यामें रहनेवाले पुरुष और स्त्रियां, सब गहरे प्रेममें मग्न रहते हैं। उनके दिन पलक बंद करनेके समान बीत जाते हैं। सीताजी प्रतिवेष बनाकर, कई सीता बनकर, आदरपूर्वक सब सासुओंकी एक समान सेवा करती हैं।

लखा न मरमु राम बिनु काहू। माया सब सियमाया माहू॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥

श्रीरामचंद्रजीको छोड़कर यह भेद और किसीने भी नहीं जाना। सीताजीकी मायामें सारी माया निवास करती है। सीताजीने सासुओंको अपनी सेवाके वशमें कर लिया। सासुओंने सुख पाकर सीताजीको सीख और आशिष दी।

लखि सियसहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहिं जांचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥

सीताजीसमेत दोनों भाइयोंकी सरलता देखकर दुष्ट रानी केकयी बहुत ही पछताने लगी। केकयी पृथिवीसे और यमराजसे याचना करती है परन्तु न तो पृथिवी बीच देती है और न देव ही मृत्यु देता है।

लोकहु बेद बिदित कवि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यह संसउ सबके मन माहीं । रामगवँनु बिधि अवध कि नाहीं ॥

लोक और वेद दोनोंमें प्रसिद्धि है और कविजन भी कहते हैं कि श्रीरामचंद्रजीके प्रतिकूल आचरण करनेवालेको नरकमें भी स्थान नहीं मिलता। सबके मनमें यह संदेह था कि हे दैव ! श्रीरामचन्द्रजीका लौटना अयोध्याको होगा कि नहीं।

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुठि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहिं सलिल सँकोच ॥२५३॥

भरतजी इसी बातके भारी सोचमें व्याकुल हो रहे हैं जैसे पानी कम हो जानेपर मछलियां तलके कीचड़में मग्न रहती हैं। उन्हें न रातको नींद आती है और न दिनको भूख लगती है।

[सभाका आरंभ]

कीन्हि मातुमिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि बिधि होइ रामअभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥

भरतजी सोचने लगे—माताके मिससे कालने कुचाल की है जैसे पकते हुए धानकी दशा ईति और भीतिसे होती है। अब श्रीरामचंद्रजीका राज्याभिषेक किस प्रकार हो ? मुझे एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता।

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी । मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी ॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुकी आज्ञा मानकर अवश्य ही लौट चलेंगे, परन्तु मुनि भी तो उनकी रुचि जानकर ही उनसे कहेंगे। माताके कहनेसे भी श्रीरामचन्द्रजी लौट चलेंगे परन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी माता क्या कभी हठ करेंगी ?

मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हरगिरि तें गुरु सेवकधरमू ॥

मुझ सेवककी बात ही कितनी है, उसमें भी बुरा समय है और दैव प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करूं तो यह निपट कुकर्म होगा। सेवकके धर्मकी गुरुता शिवजीके पर्वत कैलाशसे भी अधिक है।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रयनि बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिर नाई । बैठत पठये रिषय बोलाई ॥

मनमें एक भी युक्ति नहीं जमी और इस प्रकार सोचते हुए भरतजीको

रात बीतने आयी। सवेरे स्नान करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको शिर नवाकर बैठे ही वशिष्ठ ऋषिने उन्हें बुला भेजा।

दो०—गुरु-पद-कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥ २५४॥

गुरुके चरणकमलोंको प्रणाम करके और आज्ञा पाकर भरतजी बैठ गये। ब्राह्मण, महाजन, मंत्री, सब सभासद आकर इकट्ठे हुए।

बोले मुनिबरु समयसमाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरमधुरीन भानु-कुल-भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥

फिर समयके अनुसार मुनिवर वशिष्ठजी बोले कि हे चतुर सभासदो और हे भरत! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य राजा श्रीरामचन्द्रजी धर्म-धुरंधर, स्वतंत्र और उत्पत्ति, मृत्यु, सद्गति, दुर्गति, विद्या और अविद्या, सबको जाननेवाले भगवान् हैं।

सत्यसंध पालक स्रुतिसेतू। रामजनमु जग मंगल हेतू॥
गुरु-पितु-मातु-बचन-अनुसारी। खल-दल-दलन देव-हित-कारी॥

ये सत्यप्रतिज्ञ और वेदकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले हैं। श्रीरामचन्द्रजीका जन्म संसारके कल्याणके लिये हुआ है। ये गुरु, पिता और माताके आज्ञानुसार चलनेवाले और दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले तथा देवताओंका हित करनेवाले हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न रामसम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥

नीति, प्रीति, स्वार्थ और परमार्थको श्रीरामचन्द्रजीके समान यथार्थ कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सम्पूर्ण कर्म, काल—

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जिय देखहु नीकें। रामरजाइ सीस सबही कें॥

शेषनाग और राजा आदि जहांतक प्रभुता और योगकी सिद्धि वेदों और शास्त्रोंने बतलायी है, हृदयमें भलीभांति विचारकर देखो, श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा सभीके शिरपर है।

दो०—राखे राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥२५५॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा और रुख रखनेसे ही हम सबका भला होगा। यह समझकर अब सब चतुर मिलकर यही निश्चय करो।

सब कहुँ सुखद रामअभिषेकू। मंगल-मोद-मूल मगु एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥

श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक सभीको सुखदायी है। मंगल और आनन्दका मूलमार्ग एक ही है। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याको किस तरह चलेंगे? सब लोग समझकर कहो, वही उपाय किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिबर-बानी। नय–परमारथ–स्वारथ–सानी॥
उतरु न आव लोग भये भोरे। तब सिरुनाइ भरत कर जोरे॥

मुनिवर वशिष्ठजीकी नीति, परमार्थ और स्वार्थसे सनी हुई वाणी सब लोगोंने आदरपूर्वक सुनी। लोगोंसे उत्तर नहीं देते बना, वे भोले जैसे हो गये। तब शिर नवाकर भरतजीने हाथ जोड़े।

भानुबंस भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितुमाता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥

वे कहने लगे---सूर्यवंशमें एक एकसे बढ़ चढ़कर बहुतसे राजा हुए हैं। सबके जन्म देनेका कारण माता-पिता होते हैं और शुभाशुभ कर्म दैव ही देता है।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। असि असीस राउरि जग जाना॥
सोइ गोसाइँ बिधि गति जेहि छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दुःखोंको नष्ट कर सारे कल्याण प्रस्तुत कर देता है। आप वही स्वामी हैं जिन्होंने दैवकी गतिको भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी है उसे कौन टाल सकता है?

दो०—बूझिय मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय-बचन गुरु उर उमगा अनुरागु॥ २५६॥

आप मुझे अब उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य ही है। भरतजीके प्रेमभरे वचन सुनकर गुरु वशिष्ठजीके हृदयमें प्रेम उमड़ आया।

तात बात फुरि राम कृपाहीं। रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबसु जाता॥

हे तात! सत्य बात है, परन्तु यह सब श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे ही है; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके विमुख स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात, एक बात कहते हुए सकुचाता हूँ। पण्डित लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड़ देते हैं।

तुम्ह कानन गवँनहु दोउ भाई। फेरियहि लषनु सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद-परि-पूरन गाता॥

तुम दोनों भाई वनको जाओ और लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको हम लौटा ले जावें। वशिष्ठजीके ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए, उनका शरीर आनन्दसे परिपूर्ण हो गया।

मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। जनु जिये राउ रामु भये राजा॥
बहुत लाभु लोगन्ह लघु हानी। सम दुखसुख सब रोवहिं रानी॥

उनके मन प्रसन्न हो गये और शरीरपर तेज छा गया, मानों राजा दशरथ जी उठे हों और श्रीरामचन्द्रजी राजा हो गये हों। सब लोगोंको लाभ बहुत अधिक था और हानि कम; परन्तु रानियोंको इससे दुःख और सुख समान ही था, इससे वे सब रोने लगीं।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

भरतजी कहने लगे कि मुनिने जो कुछ कहा है उसे करनेसे संसारमें जन्म लेनेका फल और अभीष्ट-सिद्धि है। मैं वनमें जन्मभर निवास करूंगा। इससे अधिक भलाई मेरे लिये और कुछ नहीं है।

दो०—अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिय बचन प्रवानु॥२५७॥

सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्यामी हैं और आप सुजान और सर्वज्ञ हैं। यदि आप सत्य ही कह रहे हैं तो हे नाथ, अपने वचनोंको पूरा कर दिखलाइये।

भरतबचन सुनि देखि सनेहू। सभासहित मुनि भयउ बिदेहू॥
भरत-महा-महिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सभासमेत मुनिवर वशिष्ठजीको देहकी सुध भूल गयी। भरतजीकी महामहिमा सागरके समान है, जिसके किनारेपर मुनिकी बुद्धि अबला स्त्रीके समान खड़ी रह गयी।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिन्धु समाई॥

वह पार जाना चाहती है। उसने अपने हृदयमें उपायोंको खोजा, परन्तु उसे न नाव मिलती है, न जहाज और न बेड़ा ही। भरतजीकी बड़ाई और कौन कर सकता है? तालाबकी सीपमें क्या समुद्र समा सकता है?

भरतु मुनिहिं मनभीतर भाये। सहितसमाज राम पहिं आये॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनिअनुसासनु॥

वशिष्ठजीको अपने मनमें भरतजी बहुत अच्छे लगे और सब समाजसमेत वे श्रीरामचन्द्रजीके पास आये। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिया और मुनिकी आज्ञा सुनकर सब लोग बैठ गये।

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम-नीति-गुन-ग्यान-निधाना॥

फिर देश, काल और अवसरके अनुसार विचार करके मुनिवर वशिष्ठजी ये वचन बोले--हे श्रीरामचन्द्रजी, सुनिये। आप सर्वज्ञ हैं; सुजान हैं; धर्म, नीति और ज्ञान, सबके भाण्डार हैं।

दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी-भरत-हित होइ सो कहिय उपाउ॥२५८॥

आप सबके हृदयके भीतर बसते हैं और अच्छे-बुरे भावोंको जानते हैं। अब वह उपाय कहिये जिसमें नगर-निवासियों, माताओं और भरतजीका कल्याण होवे।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनिबचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

दुःखी मनुष्य कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरीको अपना ही दाव दिखलायी पड़ता है। मुनिके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि हे नाथ, उपाय आपके ही हाथ है।

सब कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥

आपका रुख रखनेमें ही सबका हित है। सत्य बोलने और आज्ञा करनेसे सबको प्रसन्नता होगी। सबसे पहिले जो आज्ञा मुझे हो, जो सीख हो, उसको मैं अपने मस्तकपर रखकर करूं।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भांति घटिहि सेवकाईं॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा। भरत-सनेह-बिचारु न राखा॥

हे स्वामी, फिर आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब प्रकारसे कर लायगा। वशिष्ठ मुनि कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी, आपने सब सत्य कहा; परन्तु भरतजीके प्रेमका विचार नहीं रखा।

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत-भगति-बस भइ मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी॥

उसीके कारण मैं आपसे बारम्बार कहता हूं। भरतजीकी भक्तिके वशमें मेरी बुद्धि हो गयी है। मेरी सम्मतिसे भरतजीकी रुचि रखकर जो कुछ भी किया जायगा वह शुभ ही होगा, इसके साथी शिव भगवान् हैं।

दो०—भरतबिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥ २५६॥

आदरके साथ आप भरतजीकी विनती सुनिये और फिर उसपर विचार कीजिये। राजनीति और शास्त्रोंके सारको समझकर लोकमत और साधुजनोंके मतको कीजिये।

गुरुअनुरागु भरत पर देखी। रामहृदय आनंदु बिसेखी॥
भरतहिं धरम-धुरं-धर जानी। निजसेवक तन-मानस-बानी॥

भरतजीपर गुरुका प्रेम देखकर श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयमें विशेष आनन्द हुआ। भरतजीको धर्मधुरन्धर और मन, वाणी और शरीरसे अपना सेवक जानकर—

बोले गुरु-आयसु-अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरतसम भाई॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुकी आज्ञाके अनुकूल सुन्दर, कोमल और मंगल-मूल वचन बोले—हे नाथ, मुझे आपकी सौगद है और पिताजीके चरणोंकी सौगंद है। संसारमें भरतजीके समान भाई नहीं हुआ।

जे गुरु-पद-अंबुज-अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥

गुरुके चरणकमलोंमें जिनका प्रेम हो वे लोक और वेद, दोनोंमें ही बड़भागी हैं। भरतजीके भाग्यको कौन कह सकता है, जिनपर आपका ऐसा प्रेम है।

लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरतबड़ाई॥
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

अपना छोटा भाई देखकर भरतजीकी प्रशंसा मुंहपर करते हुए बुद्धिको संकोच होता है। भरतजी जो कुछ कहें, वही करनेमें भलाई है। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी उदासीन हो गये।

दो०—तब मुनि बोले भरतसन सबु सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन कहहु हृदय कइ बात॥ २६०॥

तब मुनिने भरतजीसे कहा कि हे तात, सब संकोच छोड़कर कृपासागर प्यारे भाईको हृदयकी सब बात सुनाओ।

सुनि मुनिबचन रामरुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सब छरुभारू। कहि न सकहिं किछु करहिं बिचारू॥

मुनिके वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर और गुरु तथा स्वामीकी अनुकूलतासे संतुष्ट होकर, अपने ही शिरपर सब तरहका भार देखकर भरतजी कुछ कह नहीं सके। वे विचार करने लगे।

पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा॥

पुलकित—शरीर होकर वे सभामें खड़े हुए। उनके कमलनेत्रोंमें प्रेमके आंसुओंका वेग बढ़ आया। वे कहने लगे-—जो कुछ मुझे कहना था, वह सब मुनिनाथ वशिष्ठजीने कह दिया। इससे अधिक मैं और क्या कहूं?

मैं जानउँ निजनाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मोपर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी॥

मैं अपने स्वामीका स्वभाव जानता हूं। अपराधीपर भी वे कभी क्रोध नहीं करते। मुझपर तो उनकी विशेष कृपा और प्रीति है। मैंने खेलमें भी कभी उनका क्रोध नहीं देखा है।

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

बचपनसे मैंने उनका संग नहीं छोड़ा परन्तु उन्होंने कभी मेरे जीको तोड़ा नहीं। प्रभुकी कृपा करनेकी रीतिको मैंने हृदयमें समझ लिया है। हार जाने-पर भी मुझे खेलमें ये जिता देते थे।

दो०—महूँ सनेह-सकोच-बस सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नयन॥ २६१॥

स्नेह और संकोचके वशमें होनेके कारण मैंने भी सामने कभी वचन नहीं कहे। आजतक दर्शनोंसे तृप्ति नहीं हुई। ये नेत्र प्रेमके प्यासे बने ही हुए हैं।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिसु पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥

मेरा यह दुलार दैव नहीं सह सका। नीचने माताके बहाने अंतर डाल दिया। यह कहते हुए भी आज मेरी शोभा नहीं है। अपनी समझसे साधु और पवित्र कौन हुआ है ?

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥

माता अधम है और मैं साधु तथा अच्छे चलनका हूँ—हृदयमें ऐसा लाते ही करोड़ कुचालें उत्पन्न हो जाती हैं। कोदोंकी बालीमें क्या उत्तम अन्न लग सकता है ? तालाबकी सीपसे क्या मोती निकल सकता है ?

सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधिअवगाहू॥
बिनु समझें निज-अघ-परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू॥

यह सब मेरे अभाग्यके समुद्रका स्नान है। किसीको स्वप्नमें भी दोष और क्लेश नहीं। अपने पापोंके फलको समझे बिना मैंने बुरा-भला कहकर माताको जाकर जलाया।

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भांति भलेहि भल मोरा॥
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

सब ओरसे अपने हृदयमें खोजकर हार गया हूँ। एक ही प्रकारसे भले ही मेरा भला हो। मेरे गुरु समर्थ हैं और सीताजी तथा श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, इसलिये मुझे परिणाम अच्छा प्रतीत होता है।

दो०—साधु-सभा-गुरु-प्रभु-निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥२६२॥

अच्छे स्थानपर, साधुजनोंकी सभामें, गुरु और स्वामीके सामने सच्चे भावसे कहता हूँ। मुनि और श्रीरामचन्द्रजी जानते हैं कि यह सब प्रेम है या छल और सत्य है या झूठ !

भूपतिमरनु प्रेमु पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर-नर-नारीं॥

राजाकी मृत्यु प्रेम और प्रतिज्ञा रखनेके लिये हुई। माताकी दुर्बुद्धिका साक्षी तो सारा संसार है। व्याकुल माताएँ देखी नहीं जातीं। नगरके स्त्री-पुरुष दुःसह दाहसे जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला॥
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लषनु-सिय-साथा॥

इस सब अनर्थका मूल मैं ही हूँ, यह सुनकर और समझकर मैंने सब

दुःख सह लिये। फिर यह सुनकर कि मुनिका भेष बनाकर लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये—

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पायें। संकरु साखि रहेउँ एहि घायें॥
बहुरि निहारी निषादसनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥

मैं नंगे पैरों और पांवपैदल इधर दौड़ा, इसके साक्षी शंकरजी हैं। फिर गुह निषादका प्रेम देखकर भी वज्रके समान कठोर हृदयमें छेद नहीं हुआ।

अब सबु आंखिन्ह देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहिं निरखि मग सांपिनि बीछीं। तजहिं बिषमबिष तामस तीछीं॥

अब आकर सब कुछ आंखों देख लिया। इस मूर्ख जीवने सब कुछ जीते-जी ही सहन कर लिया। जिन्हें मार्गमें देखकर सांपिनी और बीछीं भी अपना कठोर विष और तमोगुणी तीक्ष्णस्वभाव छोड़ देती हैं।

दो०—तेइ रघुनंदनु लषनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावइ काहि॥२६३॥

वही श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी जिसे शत्रु मालम हुए उसके पुत्रको छोड़कर दैव और किसे दुःसह दुःख सहन करावे?

सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी। आरति-प्रीति-बिनय-नय-सानी॥
सोकमगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमलबन परेउ तुषारू॥

अत्यन्त व्याकुल भरतजीकी दुःख, प्रेम, नम्रता और नीतिसे सनी हुई सुन्दर वाणी सुनकर सब लोग शोकमग्न हो गये। सारी सभामें क्षोभ छा गया मानो कमलके वनपर पाला पड़ गया हो।

कहि अनेकबिधि कथा पुरानी। भरतप्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिन-कर-कुल-कैरव-बन-चंदू॥

अनेक प्रकारकी पुरानी कथाएँ कहकर ज्ञानी मुनिने भरतजीको ज्ञानोपदेश किया। फिर सूर्यवंशरूपी कुमुद-वनके लिये चंद्रमाके समान श्रीरामचंद्रजी उचित वचन बोले।

तात जाय जिय करहु गलानी। ईसअधीन जीवगति जानी॥
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥

हे तात, जीवकी गति ईश्वरके अधीन जानकर तुम अपने जीमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। तीनों कालों और तीनों लोकोंमें मेरे मतसे जो पवित्र कीर्तिवाले हैं वे सब हे तात, तुम्हारे नीचे हैं।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोष देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिं सेई ॥

तुम्हारे विषयमें किसी तरहकी दुष्टताकी बात हृदयमें लाते ही लोक और परलोक दोनों ही व्यर्थ नष्ट हो जाते हैं । माता केकयीको वही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरुजनों और साधुजनोंकी सभाका सेवन नहीं किया ।

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोकु सुजसु परलोकु सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे सारे अशुभ-समूह और पापके सारे प्रपंच नष्ट हो जायँगे, और इस लोकमें यश और परलोकमें सुख मिलेगा ।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जायें । बैर प्रेमु नहिं दुरइ दुरायें ॥

मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूं। इसके साक्षी शिवजी हैं । हे भरत, तुम्हारे रखनेसे ही पृथिवी रहेगी। हे तात, व्यर्थ ही कुतर्क मत करो। बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपता ।

मुनि गुनि निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना । मानुषतनु गुन-ग्यान-निधाना ॥

मुनि समझकर पक्षी और हिरन पास चले जाते हैं परन्तु बहेलियोंके बाधकोंको देखकर वे भाग जाते हैं। पशु और पक्षी भी अपना शत्रु और मित्र पहिचानते हैं। फिर मनुष्यका शरीर तो गुण और ज्ञानका स्थान है ।

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीकें । करउँ काह असमंजस जी कें ॥
राखेउ राव सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेम पनु लागी ॥

हे तात, तुम्हें मैं भलीभांति जानता हूं; परन्तु क्या करूं, जीमें बड़ा असमंजस हो गया है। मुझे त्यागकर राजाने सत्यको रखा और अपनी प्रतिज्ञा और प्रेमके लिये शरीर त्याग दिया ।

तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

उनके वचनको मेटते हुए मनको शोक होता है, और उससे भी अधिक होता है तुम्हारा संकोच ! उसपर गुरुजीने मुझे आज्ञा दी है—तुम जो कुछ कहो उसे ही मैं अवश्य करना चाहता हूं ।

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्य-संध-रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२६५॥

मन प्रसन्न करके संकोच छोड़कर कहो। उसे ही मैं आज करूंगा। सत्य-प्रतिज्ञ श्रीरामचंद्रजीके ये वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

सुरगन-सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होत अकाजू॥
करत उपाउ बनत कछु नाहीं। रामसरन सब गे मन माहीं॥

उधर देवताओं-समेत देवराज इन्द्र भयभीत हो गये और सोचने लगे कि अब काम बिगड़ना चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता, इसलिये वे सब मनमें श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये।

बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति-भगत-भगति-बस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निराशा॥

फिर विचार करके परस्पर कहने लगे कि श्रीरामचंद्रजी भक्तकी भक्तिके वशमें हैं। राजा अंबरीष और दुर्वासा मुनिकी बात स्मरण कर सब देवता और इन्द्र बिलकुल निराश हो गये।

सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरतके हाथा॥

पहिले देवताओंने बहुत समयतक दुःख सहन किये, तब प्रहलादने नृसिंह भगवानूको प्रकट किया था। सब देवता एक दूसरेके कानसे लग लगकर अपना अपना शिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओंका काम भरतजीके हाथ है।

आन उपाउ न देखिय देवा। मानत रामु सु-सेवक-सेवा॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। निज-गुन-सील रामबस करतहिं॥

हे देवताओ, और कोई उपाय नहीं दिखलायी पड़ता। अच्छे सेवककी सेवाको श्रीरामचंद्रजी मानते हैं। इसलिये सब लोग अपने हृदयमें प्रेमके साथ भरतजीका स्मरण करो जिन्होंने अपने गुण और शीलसे श्रीरामचंद्रजीको अपने वशमें कर लिया है।

दो०—सुनि सुरमत सुरगुरु कहेउ भल तुम्हार बड़भागु।
सकल सु-मंगल-मूल जग भरत-चरन-अनुरागु॥२६६॥

देवताओंका मत सुनकर देव-गुरु बृहस्पतिने कहा कि यह अच्छा है। तुम्हारा बड़ा भाग्य है। संसारमें भरतजीके चरणोंका प्रेम सभी शुभमंगलोंका मूल है।

सीतापति सेवक सेवकाई। काम-धेनु-सय-सरिस सुहाई॥
भरतभगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके सेवककी सेवा सौ कामधेनुओंके समान सुहावनी है। तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति उत्पन्न हो गयी है, इसलिये अब सोच छोड़ दो। देवने बात बना दी है।

देखु देवपति भरतप्रभाऊ। सहज-सुभाय-बिबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहिं जानि रामपरछांही॥

हे देवराज इन्द्र, भरतजीका प्रभाव तो देखो, जिनके सहज-स्वभावके वशमें श्रीरामचन्द्रजी हो रहे हैं। भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीकी परछाईं जानकर, हे देवताओ, अपना मन स्थिर करो, अब डर नहीं है।

सुनि सुरगुरु-सुर-संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं संकोचू॥
निज सिर भारु भरत जिय जाना। करत कोटिबिधि उर अनुमाना॥

देवगुरु बृहस्पति और देवताओंकी सम्मति और चिन्ताकी बात सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको संकोच हुआ। इधर भरतजीने अपने हृदयमें जब सारा भार अपने ही शिरपर समझा तब वे अपने हृदयमें करोड़ों तरहके अनुमान लगाने लगे।

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। रामरजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥

विचार करके उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया कि अपना भला श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञामें ही है। श्रीरामचन्द्रजीने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा है और कृपा और स्नेह भी कम नहीं किया है।

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज-जुग-हाथ॥२६७॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजीने मुझपर सब प्रकारसे अत्यन्त असीम दया की है। कमलके समान अपने दोनों हाथ जोड़कर भरतजी प्रणाम करके बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटा मलिन मनकलपित सूला॥

हे स्वामी, अब क्या कहूं और क्या कहलाऊँ? आप कृपासागर और अंतर्यामी हैं। गुरुजीको प्रसन्न और स्वामीको अनुकूल देखकर मेरे मैले मनकी कल्पित पीड़ा दूर हो गयी।

अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोषु देव दिसि भूले॥
मोर अभागु मातुकुटिलाई। बिधिगति बिषम कालकठिनाई॥

मैं झूठे डरसे डर गया था। मेरी चिन्ता निर्मूल थी। हे देव, कोई दिशा भूल जाय तो उसके लिये सूर्य दोषी नहीं। मेरा अभाग्य, माताकी कुटिलता, दैवकी प्रतिकूल गति और कालकी कठोरता…

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई ॥

सबने मिलकर पैर रोपकर मेरा नाश कर दिया; परन्तु दीनोंको पालनेवाले आपने अपना प्रण पूरा किया। यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है। लोक और वेद, दोनोंमें ही प्रकट है, छिपी हुई नहीं।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिय होइ भल कासु भलाईं ॥
देव देव-तरु-सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥

हे स्वामी! संसार बुरा है, एक आप ही भले हैं। फिर, भला कहिये, किससे भलाई हो? हे देव, आपका स्वभाव कल्पवृक्षके समान है जो सामने होनेपर कभी किसीसे विमुख नहीं होता।

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच।
मांगत अभिमत पाव जगु राउ रंक भल पोच ॥२६८॥

पास जाकर, कल्पवृक्षको पहिचानकर, जिसकी छाया सब सोच दूर कर देती है, मांगते ही राजा-रंक और भले-बुरे, सारा संसार उससे मनचाहा फल पा जाता है।

लखि सब बिधि-गुरु-स्वामि-सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभुचित छोभु न होई ॥

गुरु और स्वामीका सब प्रकार प्रेम देखकर मेरा क्षोभ मिट गया। अब मेरे मनमें संदेह नहीं है। हे करुणानिधान, अब आप वही कीजिये जिससे मुझ सेवकका भला हो और आपके चित्तको क्षोभ न हो।

जो सेवकु साहिबहिं सँकोची। निजहित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवकहित साहिबसेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥

जो सेवक स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भला करना चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवकका हित स्वामीकी सेवामें ही है जो उसे सब सुख और सारा लोभ छोड़कर करनी चाहिये।

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। कियें रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ-परमारथ-सारू। सकलसुकृत फल सुगति सिंगारू ॥

हे नाथ, आपके लौटनेमें सभीका स्वार्थ है और आपकी आज्ञाका पालन

करना करोड़ तरहसे अच्छा है। यह स्वार्थ और परमार्थका सार है, सब पुण्योंका फल है और सद्गतिका श्रृंगार भी यही है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिय सुफल प्रभु जौं मनमाना॥

हे देव, मेरी एक विनती सुन लीजिये; फिर जैसा उचित हो वैसा कीजियेगा। राजतिलकका सब सामान सजाकर लेता आया हूँ। हे प्रभो, यदि हृदय स्वीकार करता हो तो उसे सफल कीजिये।

दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥ २६९॥

छोटे भाईसमेत मुझे वनको भेज दीजिये और आप सबको सनाथ कीजिये, नहीं तो हे नाथ, दोनों भाइयोंको अयोध्याको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलता हूँ।

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीयसहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥

नहीं तो तीनों भाई वनको चले जावें और हे श्रीरामचंद्रजी, सीताजी-समेत आप लौट जाइये। हे प्रभो, हे दयासागर, जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न होवे, वही कीजिये।

देव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथहेतू। रहत न आरत कें चित चेतू॥

हे देव, यद्यपि आपने मेरे शिरपर सब भार डाल दिया है तथापि मुझे नीति और धर्मका विचार नहीं है। मैं तो सारी बातें स्वार्थके लिये कहता हूँ। दुःखी मनुष्यके चित्तमें चेतना नहीं रहती।

उतरु देइ सुनि स्वामिरजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥

स्वामीकी आज्ञा सुनकर जो सेवक उत्तर देता है उसे देखकर लज्जाको भी लज्जा आती है। मैं अवगुणोंका ऐसा अथाह समुद्र हूँ और स्वामी मेरे स्नेहकी अच्छी सराहना करते हैं।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु-पद-सपथ कहउँ सतिभाऊ। जग मंगल-हित एक उपाऊ॥

हे कृपालु, अब मुझे वही बात अच्छी लगती है जिससे स्वामीका मन

संकोच न पावे। मुझे प्रभुके चरणोंकी सौगंद है। मैं सच्चे भावसे कहता हूं कि संसारका मंगल होनेके लिये एक उपाय है।

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥२७०॥

हे प्रभो, प्रसन्न मनसे संकोच छोड़कर आप जिसको जो आज्ञा देंगे उसे अपने शिरोंपर रख रखकर सब लोग करेंगे और यह अनुचित कुपेच मिट जायगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजसबस अवधनिवासी। प्रमुदित मन तापस-बन-बासी॥

भरतजीके पवित्र वचन सुनकर देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने अच्छी तरह प्रशंसा कर पुष्पवृष्टि की। अयोध्यापुरीके रहनेवाले असमंजसमें पड़ गये और तपस्वी तथा वनवासी लोग मनमें आनन्दित हो गये।

चुपहिं रहे रघुनाथ संकोची। प्रभुगति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहि अवसर आये। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाये॥

संकोचमें पड़कर श्रीरामचन्द्रजी चुप ही रहे। उनकी यह दशा देखकर सब सभा सोचमें पड़ गयी। उसी समय राजा जनकके दूत वहां आये। सुनते ही वशिष्ठ मुनिने उन्हें जल्दीसे बुलाया।

करि प्रनामु तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भये निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥

प्रणाम करके उन्होंने जब श्रीरामचंद्रजीको देखा तब उनका भेष देखकर वे अत्यन्त दुःखी हुए। मुनिवर वशिष्ठने दूतोंसे यह बात पूछी कि भला कहो, राजा जनक कुशलसे तो हैं?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसलहेतु सो भयउ गोसाईं॥

सुनकर संकोचसे पृथिवीकी ओर शिर झुकाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़े हुए बोले—हे स्वामी, आदरके साथ आपका पूछना ही कुशलका कारण हुआ—

दो०—नाहिं त कोसलनाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयेउ अनाथ॥२७१॥

नहीं तो हे नाथ, कोशलपति राजा दशरथके साथ ही कुशलता चली गयी। सारा संसार और विशेषकर मिथिला और अयोध्या उनके बिना अनाथ हो गयी।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सब लोक सोकबस बौरा ॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू । नामु सत्य अस लाग न केहू ॥

कोशलपति राजा दशरथकी गति सुनकर जनकपुरमें सब लोग शोकके वशमें होकर बावले हो गये। उस समय राजा विदेहको जिन्होंने देखा उनमेंसे किसीको भी ऐसा न प्रतीत हुआ कि उनका नाम 'विदेह' सत्य है।

रानि-कु-चालि सुनत नरपालहि । सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ॥
भरतराजु रघुबर-बन-बासू । भा मिथिलेसहि हृदय हरासू ॥

रानी केकयीकी खोटी चाल सुनते ही राजाको कुछ भी न सूझ पड़ा जैसे मणिके बिना सर्पको नहीं दिखलायी पड़ता। भरतजीको राजतिलक दिया और श्रीरामचंद्रजीको बनवास, इससे मिथिलेशको हृदयमें बड़ा ही खेद हुआ।

नृप बूझे बुध-सचिव-समाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ ॥

राजाने पण्डितों और मंत्रियोंसे पूछा कि विचारकर कहिये कि आज क्या करना उचित है? अयोध्याकी ओर दोनों ही बातोंको बेमेल समझकर किसीने कुछ नहीं कहा कि चलना चाहिये या रहना चाहिये।

नृपहि धीर धरि हृदय बिचारी । पठये अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ । आयेहु बेगि न होइ लखाऊ ॥

फिर राजाने ही धीरज रखकर हृदयमें विचार किया और चार चतुर दूत अयोध्याको भेजे, और आज्ञा दी कि भरतजीके सद्भाव और दुर्भावको जानकर जल्दी लौट आना, यह प्रगट न होने पावे।

दो०—गये अवधचर भरतगति बूझि देखि करतूति ।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तिरहूति ॥ २७१ ॥

दूत अयोध्याको गये। (फिर) वहां भरतजीकी दशाको जानकर और उनकी करतूत देखकर दूत तो इधर तिरहुतके लिये चले और इधर भरतजी चित्रकूटको बिदा हुए।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी । जनकसमाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥

दूतोंने आकर अपनी बुद्धिके अनुसार भरतजीकी करनी राजा जनककी सभामें वर्णन की। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मंत्री, राजा, सब सोच और स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये।

धरि धीरज करि भरत बड़ाई। लिये सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥

धीरज रखकर और भरतजीकी बड़ाई कर राजा जनकने अच्छे अच्छे योद्धा और सेनापति बुला लिये; और उन्हें राजभवन, नगर और देशकी रखवालीका काम सौंपकर हाथी, घोड़ा, रथ और बहुतसी सवारियां तैयार करायीं।

दुघरी साधि चले ततकाला। किये बिस्राम न मगु महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

द्विघटिका मुहूर्त साधकर वे उसी समय चल दिये। राजाने मार्गमें भी विश्राम नहीं किया। आज सवेरे ही प्रयाग-स्नान कर बिदा हुए और जब सब लोग यमुनाजीके पार उतरने लगे—

खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायेउ माथा॥
साथ किरात छसातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा कर कीन्हे॥

तब हे नाथ, खबर लानेके लिये हम लोगोंको आगे भेज दिया। ऐसा कहकर उन दूतोंने पृथिवीकी ओर शिर झुका लिया। मुनिवर वशिष्ठने छः-सात किरातोंको साथ कर दिया और तुरन्त ही दूतोंको बिदा किया।

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवधसमाजु।
रघुनंदनहिं सकोचु बड़ सोचबिबस सुरराजु॥ २७३॥

राजा जनकका आगमन सुनते ही अयोध्याका सारा समाज प्रसन्न हो गया; परन्तु श्रीरामचंद्रजीको बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो सोचमें डूब गये।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

दुष्टा कैकयी ग्लानिसे गली जा रही थी। वह किससे कहे और किसे दोष लगावे! स्त्री और पुरुष, सब मनमें यह जानकर प्रसन्न हुए कि फिर चार दिनके लिये रहना हो गया!

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नरनारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥

इस प्रकार वह दिन भी बीत गया। सवेरे सब लोगोंने नहाना आरंभ किया। स्त्रियां और पुरुष, सब लोग स्नान करके गणेशजी, पार्वतीजी, शिवजी और सूर्यकी पूजा करने लगे।

रमा-रमन-पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी॥
राजाराम जानकीरानी। आनँदअवधि अवधरजधानी॥

फिर वे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके चरणोंकी वंदना करके अंजलि बांधकर और अंचल पसारकर विनती करने लगे कि श्रीरामचंद्रजी राजा और सीताजी रानी हों, आनन्दकी सीमा अयोध्या राजधानी हो।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं रामु करहु जुबराजा॥
एहि सुखसुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग-जीवन-लाहू॥

सब सम जसमेत वे फिर अच्छी तरह वहां बसें और श्रीरामचंद्रजी भरतजीको युवराज बनावें, इस सुखरूपी अमृतसे सब किसीको सींचकर हे देव, संसारमें जीवन धारण करनेका लाभ दीजिये।

दो०—गुरुसमाज भाइन्ह सहित रामराजु पुर होउ।
अछत रामराजा अवध मरिय मांग सबु कोउ॥ २७४॥

सब कोई यह मांगते थे कि गुरु, समाज और भाइयोंसमेत अयोध्यापुरीमें श्रीरामचंद्रजीका राज्य होवे और अयोध्यामें श्रीरामचंद्रजीके राजा रहते ही हमारी मृत्यु होवे।

सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन॥

अयोध्यावासियोंकी प्रेमभरी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और बैराग्यकी भी निन्दा करने लगे। इस प्रकार नित्यकर्म करके नगरवासी पुलकित-शरीर होकर श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करते हैं।

ऊच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निजु अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥

उत्तम, मध्यम और अधम, सभी स्त्री-पुरुष अपनी अपनी रुचिके अनुसार श्रीरामचंद्रजीका दर्शन पाते हैं। कृपानिधान श्रीरामचंद्रजी सबका यथोचित आदर करते हैं और सब लोग श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करते हैं।

लरिकाइहि तें रघुबरबानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील-सँकोच-सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरलसुभाऊ॥

बचपनसे ही श्रीरामचंद्रजीका यह स्वभाव है कि वे नीति और प्रीतिको पहिचानकर पालते हैं। श्रीरामचंद्रजी शील और संकोचके समुद्र हैं। उनका मुख और नेत्र सुन्दर हैं और स्वभाव सरल है।

कहत राम-गुन-गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिन्हहिं रामु जानत करि मोरे॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंके समूहको कहते कहते वे सब प्रेममें भर गये और अपना भाग्य सराहने लगे कि हमारे समान पुण्यवान संसारमें कम ही हैं जिन्हें श्रीरामचंद्रजी अपना करके जानते हों।

[जनकका आगमन]

दो०—प्रेममगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबि-कुल-कमल-दिनेसु॥२७५॥

उस समय सब लोग यह सुनकर कि मिथिलानरेश जनकजी आ रहे हैं, प्रेममें मग्न हो गये। सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचंद्रजी सभासमेत सहसा उठकर खड़े हो गये।

भाइ-सचिव-गुरु-पुरजन-साथा। आगे गवन कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

भाई, मंत्री, गुरु और अयोध्याके नागरिक, सबके साथ श्रीरामचंद्रजी आगे बढ़कर गये। उधर राजा जनकको जबसे वह श्रेष्ठ पर्वत चित्रकूट दिखलायी पड़ा, तभीसे उन्होंने उसे प्रणाम करके रथ छोड़ दिया।

रामदरसु लालसा उछाहू। पथस्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबरबैदेही। बिनु मन तन दुखु सुख सुधि केही॥

सबको श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करनेकी लालसा और उत्साह था। किसीको रास्तेकी थकावट और क्लेशका लेश भी न था। सबका मन वहां था जहां सीताजी और श्रीरामचंद्रजी थे और जब मन ही न था तब शरीरको दुःख है या सुख, इसकी सुध किसे होती?

आवत जनकु चले एहि भांती। सहितसमाज प्रेम मति मांती॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥

राजा जनक इस प्रकार चले आ रहे थे। सब समाजसमेत उनकी बुद्धि प्रेमसे पगली हो रही थी। समीप आ जानेपर देखकर सब लोग प्रेममें भर गये और आदरपूर्वक परस्पर मिलने लगे।

लगे जनकु मुनि-जन-पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत

राजा जनक मुनिजनोंके चरणोंकी वंदना करने लगे और

ऋषियोंको प्रणाम किया। भाइयोंसमेत श्रीरामचंद्रजी राजा जनकसे मिलकर उन्हें सब समाजसमेत लेकर चले।

दो०—आस्रम सागर सांतरस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुनासरित लियें जात रघुनाथ॥ २७६॥

आश्रमरूपी समुद्र शांतिरसके पवित्र जलसे भरा हुआ है, उसमें श्रीरामचंद्रजी मानों राजा जनककी सेनारूपी करुणाकी नदी लिये हुए जा रहे हैं।

बोरति ग्यान बिराग करारें। बचन ससोक मिलत नद नारें॥
सोच उसास समीरतरंगा। धीरज तट-तरु-बर कर भंगा॥

करुणाकी यह नदी अपने ज्ञान और वैराग्यके किनारोंको डुबाती हुई जाती है। शोकभरे वचनरूपी नदी और नाले उसमें आकर मिलते हैं, शोकभरी हुई लंबी सांसें ही हवाके झोंकेसे उठनेवाली तरंगें हैं, धीरजरूपी किनारेके बड़े बड़े वृक्षोंको यह गिराती जा रही है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा॥
केवटु बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥

विषम दुःख ही उस नदीकी वेगवान धारा है, भय भँवर और भ्रम अपार चक्र हैं, पण्डितजन केवट हैं और विद्या बड़ी नाव है; परन्तु वे उसे पार नहीं ले जा सकते, क्योंकि उसका खेना एकको भी नहीं आता।

बनचर कोल किरात बेचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे॥
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥

वनके फिरनेवाले बेचारे कोल और किरात ही रास्ता चलनेवाले हैं, जो उस नदीको देखकर थक गये और अपने मनमें हार मान गये। जब यह नदी आश्रमरूपी समुद्रमें जाकर मिली तब मानों समुद्र व्याकुल हो उठा हो।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यान न धीरज लाजा॥
भूप-रूप-गुन-सील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही॥

दोनों ही राज-समाज शोकमें व्याकुल हो गये! उन्हें न ज्ञान रहा, न धैर्य और न लज्जा! सब राजा दशरथके रूप, गुण और शीलकी प्रशंसा करने लगे, रोकर शोकके समुद्रमें डुबकियां लगाने लगे।

छंद—अवगाहि सोकसमुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
देइ दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की॥

स्त्री और पुरुष, सब अत्यन्त व्याकुल होकर शोकके समुद्रमें डुबकियां लगाते और सोचते हैं। वे सब प्रतिकूल दैवको दोष देकर क्रोधके साथ कहते हैं कि उसने यह क्या किया! तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्धजन, तपस्वी, योगी और मुनि, सबमें ऐसा सामर्थ्यवान् कोई न था जो राजा जनककी दशा देखकर उस स्नेहकी नदीको पार कर सकता हो।

सो०—किये अमित उपदेस जहँतहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिय नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥ २७७॥

श्रेष्ठ मुनियोंने जहां-तहां लोगोंको असंख्य उपदेश दिये और वशिष्ठजीने राजा जनकसे कहा कि हे राजा, धीरज रखिये।

जासु ग्यानरवि भवनिसि नासा। बचनकिरन मुनि-कमल-बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय-राम-सनेह बड़ाई॥

जिसके ज्ञानरूपी सूर्यसे संसाररूपी रात्रि नष्ट हो जाती है और जिसके वचनरूपी किरणोंसे मुनिजनरूपी कमल खिल जाते हैं, उसके पास क्या मोह और ममता जा सकती है? परन्तु जो कुछ हुआ, यह सीताजी और श्रीरामचंद्रजीकी महिमा है।

बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम-सनेह-सरस मन जासू। साधुसभा बड़ आदर तासू॥

वेदोंने संसारमें तीन प्रकारके जीव बतलाये हैं—विषयी, साधक और चतुर सिद्ध। इनमें जिसका मन श्रीरामचन्द्रजीके स्नेह-रससे भरा हुआ है उसीका सज्जनोंकी सभामें बड़ा आदर होता है।

सोह न रामप्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाये। रामघाट सब लोग नहाये॥

ज्ञान न हो तो श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम शोभा नहीं पाता, जैसे कर्णधारके बिना नाव। वशिष्ठ मुनिने राजा जनकको बहुत प्रकारसे समझाया और फिर सब लोगोंने रामघाटपर जाकर स्नान किया।

सकल-सोक-संकुल नरनारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवनु बिचारू॥

स्त्रियां और पुरुष, सब शोकमें भरे हुए थे। उनका वह दिन जल ग्रहण किये बिना ही बीत गया। पशु, पक्षी और हिरन, किसीने भी कुछ न खाया, फिर प्यारे लोगों और कुटुम्बियोंका विचार ही क्या है?

दो०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात।
बैठे सब बट-बिटप-तर मन मलीन कृसगात॥ २७८॥

निमिराज जनक और रघुराज श्रीरामचन्द्रजी, तथा दोनों समाजोंने प्रातःकालमें स्नान किया और मनमलीन तनक्षीण दशामें बरगदके वृक्षके नीचे आकर बैठे।

जे महिसुर दसरथ-पुर-बासी। जे मिथिला-पति-नगर-निवासी॥
हंस-बंस-गुरु जनकपुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥

ब्राह्मण, जो राजा दशरथके नगर अयोध्याके रहनेवाले हैं और जो मिथिलानरेश जनककी राजधानी जनकपुरीके निवासी हैं, सूर्यवंशके गुरु वशिष्ठ-मुनि और राजा जनकके पुरोहित सतानन्द, जिन्होंने संसारमें परमार्थका मार्ग शोध रखा है,

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरमु नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी॥

धर्म, नीति, विवेक और वैराग्यसमेत अनेक उपदेश देने लगे। विश्वामित्रने पुरानी कथाएँ कह कहकर सुन्दर वाणीसे सब सभाको समझाया।

तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रसे कहा कि हे नाथ, कल सब लोग जल ग्रहण किये बिना ही रहे हैं। मुनिने कहा कि श्रीरामचन्द्रजी उचित कहते हैं। अब ढाई पहर दिन बीत चुका है।

रिषि रुख लखि कह तिरहुतिराजू। इहां उचित नहिं असनु अनाजू॥
कहा भूप भल सबहिं सुहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥

ऋषिका रुख देखकर राजा जनक कहने लगे कि यहां अन्नका भोजन उचित नहीं है। राजा जनककी कही हुई यह अच्छी बात सबको अच्छी लगी और वे सब आज्ञा पाकर स्नान करनेके लिये चले।

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लेइ आये बनचर बिपुल भरि भरि कांवरि भार॥ २७९॥

उसी समय वनमें भ्रमण करनेवाले कोल-किरात आदि बहुत लोग अनेक प्रकारके फलों, फूलों, पत्तों और जड़ोंको बड़ी बड़ी कांवरोंमें भर भरकर ले आये।

कामद भे गिरि रामप्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे पर्वत सब कामनाएँ पूर्ण कर देनेवाले हो गये, जिन्हें देखते ही सब दुःख दूर हो जाते हैं। सरोवर, नदी, वन और पृथिवीके अन्य भाग, सब मानों आनन्द और प्रेमसे उमँग रहे हों।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥

बेल और वृक्ष, सब फूलों और फलोंसे लदे हुए रहने लगे; पक्षी, हिरन और भौंरे अनुकूल बोलने लगे; उस समय वनमें बड़ा उत्साह रहने लगा, सब किसीको सुख देनेवाली शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहने लगी।

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥

मनको हर लेनेवाली सुन्दरताका वर्णन नहीं किया जाता मानों पृथिवी राजा जनककी मेहमानी कर रही हो। तब सब लोग नहा नहाकर और श्रीरामचन्द्रजी, राजा जनक और वशिष्ठ मुनिकी आज्ञा पाकर--

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥

अपने अपने प्रेमके अनुसार सुन्दर वृक्ष देख देखकर जहां तहां नगरनिवासी लोग उतरने लगे। फिर पवित्र, सुन्दर और अमृतके समान अनेक प्रकारके पत्ते, फल, मूल और कंद--

दो०—सादर सब कहँ रामगुरु पठये भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फलहार॥२८०॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुरु वशिष्ठजीने डालियोंमें भर भरकर आदरपूर्वक सबके पास भेज दिये; और सब लोग पितर, देवता, अतिथि और गुरु, सबकी पूजा करके फलाहार करने लगे।

एहि बिधि बासर बीते चारी। राम निरखि नरनारि सुखारी॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सियराम फिरब भल नाहीं॥

इस प्रकार चार दिन बीत गये। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर स्त्री और पुरुष, सब सुखी थे। दोनों ही ओरके लोगोंके मनमें यह रुचि थी कि सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके बिना लौटना भला नहीं।

सीताराम संग बनबासू। कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥

सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके सङ्ग वनवासमें भी करोड़ अमरावतीके समान आराम है। सीताजी श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर जिसे घर अच्छा लगे उसे विधाता ही प्रतिकूल है।

दाहिन दैव होइ जब सबहीं। रामसमीप बसिय बन तबहीं॥
मंदाकिनिमज्जनु तिहुँकाला। रामदरसु मुद-मंगल-माला॥

जब सब प्रकारसे दैव दाहिना होवे तभी वनमें श्रीरामचन्द्रजीके पास बसना हो सके! तीनों कालमें मंदाकिनीके जलमें स्नान और श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन, यह आनन्द और मङ्गलका समूह है।

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमियसम कंद मूल फल॥
सुखसमेत संबत दुइ साता। पलसम होहिं न जनियहि जाता॥

श्रीरामचन्द्रजीके पर्वत, वन और तपस्वियोंके स्थानोंका भ्रमण होगा, और अमृतके समान कंद, मूल और फलोंका भोजन मिलेगा। चौदह वर्ष सुखके साथ पलके समान बीत जायँगे और जाते हुए मालूम भी न होंगे।

दो०—एहि सुख जोगु न लोग सब कहहिं कहां अस भागु।
सहज सुभाय समाज दुहु राम-चरन-अनुरागु॥२८१॥

सब लोग कहते हैं कि यह सुख पानेके योग्य हम सब नहीं हैं। ऐसा भाग्य कहां है? दोनों ही समाजोंमें सहज-स्वभावसे श्रीरामचन्द्रजीके चरणों-का प्रेम छाया हुआ है।

[दोनों रनिवासोंका मिलन]

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीयमातु तेहि समय पठाईं। दासी देखि सुअवसरु आईं॥

सब लोग इस प्रकार मनोरथ कर रहे हैं। प्रेमके साथ कहे हुए उनके वचन सुनते ही मन हर जाते हैं। उसी समय सीताजीकी माताकी भेजी हुई दासी सुन्दर अवसर देखकर आ गयी।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनक-राज-रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समय सम आनी॥

फिर यह सुनकर कि अवकाश है, राजा जनकका रनवास सीताजीकी सब सासुओंके पास आया। कौशल्याने सबका आदरपूर्वक सम्मान किया और सबको लाकर समयानुसार आसन दिये।

सील सनेहु सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महिनख लिखन लगीं सब सोचन॥

दोनों ही ओर सब लोगोंमें इतना शील और स्नेह था कि उसे देख और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाय। सबका शरीर पुलकायमान और शिथिल हो गया; नेत्रोंसे जल बहने लगा और वे सब पैरके नखसे पृथिवीपर लिखने और सोचने लगीं।

सब सिय-राम-प्रीति किसि मूरति। जनु करुना बहुबेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधिबुधि बांकी। जो पयफेनु फोर पबिटांकी॥

वे सब सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रीतिकी मूर्ति जैसी थीं मानों करुणा बहुतसे भेष धारण किये हुए सोच रही हो। सीताजीकी माताने कहा कि विधाताकी बुद्धि ही टेढ़ी है, जो दूधके फेनको वज्रकी टांकी लगाकर फोड़ता है।

दो०—सुनिय सुधा देखियहि गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥ २८२॥

विधाताकी सारी करनी बड़ी भयंकर है। अमृत तो सुनते ही है, परन्तु देखनेमें आता है विष! कौए, उल्लू बगले जहां तहां सर्वत्र पाये जाते हैं, परंतु हंस केवल मानसरोवरमें ही मिलते हैं।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल-केलि-सम बिधिमति भोरी॥

सुनकर सुमित्रादेवी शोकके साथ कहने लगीं कि विधाताकी गति बड़ी विचित्र और विपरीत है जो बालकके खेलके समान पहिले रचकर पालन करता और फिर संहार कर डालता है! दैवकी बुद्धि बड़ी भोली है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करमबिबस दुखु सुखु छति लाहू॥
कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥

कौशल्या कहने लगीं कि किसीको भी दोष नहीं है। दुःख-सुख, हानि-लाभ, सब कर्मके अधीन हैं। कर्मकी गति बड़ी कठोर है। उसे विधाता ही जानता है जो शुभ और अशुभ, सब तरहका फल देनेवाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमीकें॥
देबि मोहबस सोचिय बादी। बिधिप्रपंचु अस अचल अनादी॥

ईश्वरकी आज्ञा सभीके शिरपर है। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अमृत-

और विष, सबके कार्य उसीकी आज्ञासे होते हैं। हे देवि, मोहके वश होकर शोक करना व्यर्थ है। विधाताका ऐसा प्रपंच अटल और अनादि है।

भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिय सखि लखि निज-हित-हानी॥
सीयमातु कह सत्य सुबानी। सुकृतीअवधि अवधपति-रानी॥

राजाके जीने और मरनेकी बात हृदयमें लाकर हे सखी, अपने हितकी हानि होते देखकर सोच होता है। सीताजीकी माताने कहा कि यह सुन्दर वाणी सत्य है। पुण्यवानोंकी सीमारूप अयोध्याके राजाकी आप रानी हैं।

दो०—लषनु रामु सिय जाहु बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हिय कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥२८३॥

शोकसे हृदय भरकर कौशल्याजी कहने लगीं कि श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी वनको चले जावें, इसका परिणाम भला ही होगा, बुरा नहीं। परन्तु मुझे भरतजीका सोच है।

ईसप्रसाद असीस तुम्हारी। सुत-सुत-बधू-बिबुध-सरि-बारी॥
रामसपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ॥

ईश्वरके प्रसाद और आपके आशीर्वादसे सब पुत्र और पतोहुएँ गंगाजीके जलके समान निर्मल हैं। मैंने कभी श्रीरामचन्द्रजीकी सौगंद नहीं खायी, परन्तु हे सखी, वह खाकर सच्चे भावसे कहती हूँ—

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥

भरतजीका, शील, गुण, नम्रता, बड़ाई, भाईपन, भक्ति, भरोसा और भलाई, सबका वर्णन करते हुए सरस्वतीकी भी बुद्धि हिचकती है। सीपसे क्या समुद्र उलीचे जा सकते हैं?

जानउँ सदा भरत कुल दीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसे कनकु मनि पारिखि पायें। पुरुषु परिखियहि समय सुभायें॥

मैं सदासे ही जानती हूँ कि भरतजी कुलदीपक हैं। राजाने मुझसे ऐसा बारंबार कहा था। जिस प्रकार कसनेपर सोनेकी और पारखी मिल जानेपर मणिकी जांच हो जाती है, इसी प्रकार पुरुषका स्वभाव समय आ पड़नेपर ही परखा जाता है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुर-सरि-सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है, क्योंकि शोक और स्नेहसे सया-

बापस कम हो गया है। कौशल्याजीको गंगाजीके समान यह पवित्र वाणी सुनकर सब रानियां स्नेहसे व्याकुल हो गयीं।

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेक-निधि-बल्लभहि तुम्हहिं सकइ उपदेसि ॥२८४॥

कौशल्याजीने फिर धीरज रखकर कहा कि हे देवि मिथिलेश्वरी, सुनिये। आप विवेकके भण्डार राजा जनककी प्यारी हैं। आपको कौन उपदेश कर सकता है?

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भांति कहब समुझाई॥
रखियहि लषनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानइ महीपमन॥

हे रानी, अवसर पाकर राजासे अपनी ओरसे समझाकर कहना कि वे लक्ष्मणजीको तो रख लें और भरतजी वनको चले जावें। यदि राजाके मनको मेरी यह सलाह जँच जाय,

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरे सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेहु भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥

तो भलीभांति विचारकर भलाईका यत्न करना। मुझे भरतजीका भारी सोच है। भरतजीके मनमें गूढ़ प्रेम है, उनके रहनेमें मुझे अच्छाई नहीं लगती।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइँ मगन करुनरस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥

स्वभाव देखकर और सुन्दर, सरल वाणी सुनकर सब रानियां करुणारसमें मग्न हो गयीं। आकाशसे फूल बरसने लगे, धन्य धन्य ध्वनि होने लगी और सिद्ध, योगी और मुनि, सब लोग स्नेहसे शिथिल हो गये।

सबु रनिवास बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥
देबि दंडजुग जामिनि बीती। राममातु सुनि उठी सप्रीती॥

सब रनवास थककर देखता ही रह गया, तब धीरज रखकर सुमित्राजी कहने लगीं—हे देवि, दो घड़ी रात बीत गयी है! यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्याजी बड़े प्रेमके साथ उठीं।

दो०—बेगि पाउ धारिय थलहिं कह सनेह सतिभाय।
हमरें तौ अब ईसगति कै मिथिलेसु सहाय॥ २८५॥

कौशल्याजी कहने लगीं—आप अब अपने स्थानपर शीघ्र पदार्पण

करें। मैं स्नेहपूर्वक सच्चे भावसे कहती हूँ कि हमारी शरण तो अब ईश्वर ही हैं या मिथिलाके राजा हमारे सहायक हैं।

लखि सनेहु सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गहे पाय पुनीता॥
देबि उचित अस बिनय तुम्हारी। दसरथ-घरिनि राम-महतारी॥

स्नेह देखकर और विनीत वचन सुनकर राजा जनककी प्यारी रानी सुनयना कौशल्याजीके पवित्र पाँव पकड़कर कहने लगीं—हे देवि, आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है, क्योंकि आप राजा दशरथकी गृहिणी और श्रीरामचन्द्रजीकी माता हैं।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम-मन-बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥

स्वामी अपने नीच जनोंका भी आदर करते हैं जैसे अग्नि धुएँको और पर्वत तिनकोंको अपने शिरपर धारण करते हैं। राजा (जनक) तो मन, वाणी और कर्मसे सेवक ही हैं और पार्वतीसमेत शिवजी सदा ही सहायक हैं।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुरकाजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥

आपकी सहायता करनेयोग्य संसारमें कौन है? सूर्यका सहायक दीपक क्या शोभा पाता है? वनमें जाकर और वहां देवताओंका कार्य करके श्रीरामचंद्रजी अयोध्यामें अचल राज्य करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहु-बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाखा॥

देवता, नाग और मनुष्य, सब श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलसे सुखपूर्वक अपने अपने स्थानपर बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनिने कह रखा है। हे देवि, मुनिका कहा हुआ असत्य नहीं हो सकता।

दो०—अस कहि पग परि प्रेम अति सियहित बिनय सुनाइ।
सियसमेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥ २८६॥

ऐसा कहकर पैरोंमें पड़कर अत्यंत प्रेमसे सीताजीको डेरेपर साथ ले जाने देनेके लिये विनती सुनायी और फिर सुन्दर आज्ञा पाकर सीताजीकी माता सीताजीसमेत बिदा हुईं।

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भांति तेहि तेही॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेखी॥

प्यारे कुटुम्बियोंमें जो जिसयोग्य था उससे उसी प्रकार सीताजी

मिलीं। तपस्वीके भेषमें सीताजीको देखकर सब लोग व्याकुल हो गये, उन्हें बड़ा शोक हुआ।

जनक रामगुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुरु वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर राजा जनक डेरेको चल दिये और वहां पहुँचकर सीताजीको देखा। प्रेम और प्राणोंकी पवित्र पाहुनी अपनी पुत्री जानकीको राजा जनकने हृदयसे लगा लिया।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूपमनु मनहु पयागू॥
सियसनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम-प्रेम-सिसु सोहा॥

उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ आया, उस समय राजाका मन मानों प्रयागराज हो गया हो, जिसमें सीताजीका प्रेमरूपी बटवृक्ष बढ़ता हुआ दीखने लगा। उस बटवृक्षपर मानों श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमरूपी बालक शोभित हो।

चिरजीवी मुनि ग्यानु बिकल जनु। बूड़त लहेउ बालअवलंबनु॥
मोहमगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय-रघुबर-सनेह की॥

उस समुद्रमें मानों व्याकुल होकर डूबते हुए राजा जनकके ज्ञानरूपी चिरंजीवी मार्कण्डेयमुनिने उस बालकका सहारा पा लिया हो। राजा जनककी बुद्धि मोहमें डूबनेवाली नहीं; परन्तु यह जो कुछ हुआ वह सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमको महिमा है।

दो०—सिय पितु-मातु-सनेह-बस बिकल न सकी संभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥२८७॥

पिता और माताके स्नेहके वशमें होकर सीताजी व्याकुल हो गयीं, वे अपनेको संभाल नहीं सकीं। फिर समय और अपना धर्म विचारकर पृथिवीकी पुत्री सीताजीने धीरज रखा।

तापसवेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजसु धवल जगु कह सबु कोऊ॥

राजा जनकने जब सीताजीको तपस्वीके भेषमें देखा तब उन्हें बड़ा प्रेम और सन्तोष हुआ। वे कहने लगे—हे पुत्री, तुमने दोनों कुलोंको पवित्र कर दिया, तुम्हारा उज्वल यश संसारमें सब कोई कह रहा है।

जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनिथल तीनि बड़ेरे। एहि किये साधुसमाज घनेरे॥

तुम्हारी कीर्तिरूपी नदीने गंगाजीको भी जीत लिया, जिसकी धाराने करोड़ ब्रह्माण्डोंमें होकर गमन किया। पृथिवीपर गंगाजीके बड़े बड़े स्थल तीन ही हैं, परन्तु इसने तो साधुजनोंके बहुतसे समूहोंको अपना स्थान बनाया है।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि महि मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥

पिता राजा जनक स्नेहके साथ यह सुन्दर वाणी सत्य ही कह रहे थे, परन्तु सीताजी संकोचसे मानों पृथिवीमें समा गयी हों। माता और पिताने उन्हें फिर हृदयसे लगा लिया और उन्हें हित करनेवाली सुन्दर सीख और आशिष दी।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ॥

सीताजी अपने मनमें सकुचाकर कुछ कहती नहीं, परन्तु वे यह विचार करने लगीं कि रात्रिको यहां बसना अच्छा नहीं। सीताजीका यह रुख देखकर रानीने राजाको बतला दिया और दोनोंने हृदयमें शील और स्वभावकी प्रशंसा की।

दो०—बारबार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरतगति रानि सुबानि सयानि॥२८८॥

बारंबार मिल भेंटकर और सम्मान करके उन्होंने सीताजीको बिदा किया, फिर चतुर रानीने अवसर पाकर सुन्दर वाणीसे भरतजीकी दशा कह सुनायी।

सुनि भूपाल भरतब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन॥

भरतजीका व्यवहार सुनकर राजा जनकने उसे सोनेमें सुगंध और चंद्रमाका सार अमृत समझा। उन्होंने अपने सजल नेत्र बंद कर लिये, शरीर पुलकायमान हो गया और वे मनमें प्रसन्न होकर भरतजीके सुयशकी प्रशंसा करने लगे।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरतकथा भव-बंध-बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥

हे सुन्दर मुखवाली सुनयना, सावधान होकर सुनो। भरतजीकी कथा संसारके बंधनोंको छुड़ा देनेवाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार, इनमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरा प्रवेश है।

सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहइ काह छलि छुअति न छाहीं॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धिबिसारद॥

यह मेरी बुद्धि भरतजीकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, किसी बहाने उसकी छायाको भी नहीं छूती है। ब्रह्मा, गणेश, शेषनाग, शिवजी, सरस्वती, कवि, पण्डित, चतुर और बुद्धिमान्—

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

सबको भरतजीका चरित्र, सुयश, कार्य, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझनेमें सुख देनेवाला है। यह गंगाजीके समान पवित्र और स्वादमें अमृतका भी निरादर करनेवाला है।

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरतसम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम कबि-कुल-मति सकुचानि॥२८६॥

भरतजीके गुणोंकी सीमा नहीं है। वे उपमारहित पुरुष हैं। अतः भरतजीके समान भरतजीको ही जानना चाहिये। कवि-जनोंकी बुद्धि इसलिये सकुचा गयी कि सुमेरु पर्वत भी क्या सेरके समान कहा जा सकता है?

अगम सबहिं बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

भरतजीकी उज्ज्वल महिमा वर्णन करना सभीके लिये अगम्य है जैसे जलहीन पृथ्वीपर मछलीका चलना। हे रानी सुनो, भरतजीकी महिमा असीम है। श्रीरामचंद्रजी उसे जानते हैं, पर वर्णन नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जियकी रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखन भरत बन जाहीं। सब कर भल सबके मन माहीं॥

प्रेमके साथ भरतजीका अनुभव वर्णन कर राजा जनक स्त्रीके मनकी रुचि देखकर कहने लगे कि लक्ष्मणजी लौट जावें और भरतजी वनको जावें, इसीमें सबका भला है और सबके मनमें भी यही है।

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सींव समता की॥

परन्तु हे देवि, भरतजी और श्रीरामचंद्रजीकी प्रीति और प्रतीतिके विषयमें तर्क नहीं किया जा सकता। यद्यपि श्रीरामचंद्रजी समताकी सीमा हैं तथापि भरतजी स्नेह और ममताकी मर्यादा हैं।

परमारथु स्वारथु सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू॥

परमार्थ, स्वार्थ और समस्त सुखोंको स्वप्नमें भी भरतजीने मनमें नहीं सोचा। मुझे भरतजीका मत यह देख पड़ता है कि सब साधनोंकी सिद्धि श्रीरामचंद्रजीके चरणोंका प्रेम ही है।

दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ रामरजाइ।
करिय न सोचु सनेहबस कहेउ भूप बिलखाइ॥ २९०॥

राजा जनक बिलखकर कहने लगे कि भरतजी भूलकर भी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको मनसे भंग न करेंगे; इसलिये प्रेमके वशमें होकर सोच न करना चाहिये।

[राज-सभा]

राम भरतु गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहिं पलकसम बीती॥
राजसमाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥

प्रेमके साथ श्रीरामचंद्रजी और भरतजीके गुणोंको गिनते-गिनते राजा जनक और रानी सुनयनाको वह रात पलकके समान बीत गयी। सवेरा होनेपर दोनों ही राज-समाज जागे और नहा-नहाकर देवताओंकी पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारीं। सोकबिकल बनबास दुखारीं॥

श्रीरामचंद्रजी नहाकर गुरुके पास गये और उनका रुख पाकर चरणोंकी वंदना कर बोले, हे नाथ! भरतजी, नगरनिवासी और माताएँ सब शोकमें व्याकुल और वनवाससे दुःखी हैं।

सहितसमाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिय नाथा। हित सब ही कर रउरें हाथा॥

सब समाज-समेत राजा जनकको भी क्लेश सहते हुए बहुत दिन हो गये। हे नाथ, जो उचित हो वही कीजिये। सभीका हित आपके हाथमें है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरकसरिस दुहुँ राजसमाजा॥

ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजी अत्यंत सकुचा गये। श्रीरामचंद्रजीका शील और स्वभाव देखकर मुनि पुलकायमान हो गये और कहने लगे कि हे रामचन्द्रजी, आपके बिना समस्त सुखोंकी सामग्री भी दोनों राज-समाजोंके लिये नरकके समान है।

दो०—प्रान प्रानके जीवके जिव सुखके सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम॥२६१॥

हे रामचन्द्रजी, आप प्राणोंके प्राण, जीवके जीव और सुखके सुख हैं। हे तात, आपको छोड़कर जिन्हें घर अच्छा लगता हो उन्हें दैव प्रतिकूल है।

सो सुखु धरमु करमु जरि जाऊ। जहँ न राम-पद-पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जह नहिं रामप्रेमु परधानू॥

वह सुख, धर्म और कर्म जल जाय जिसमें श्रीरामचंद्रजीके चरण-कमलोंमें भाव न हो! वह योग कुयोग और वह ज्ञान अज्ञान है जिसमें श्रीरामचंद्रजीका प्रेम प्रधान नहीं है।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके॥

आपके बिना सब दुःखी हैं और आपसे सब सुखी हैं। जिसके हृदयमें जो कुछ है उसे आप अपने मनमें जानते हैं। आपकी आज्ञा सभीके शिरपर है। हे कृपालु, आपको सब गति भलीभांति मालूम है।

आपु आस्रमहिं धारिय पाऊ। भयउ सनेहसिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥

अब आप आश्रममें पदार्पण कीजिये। मुनिराज वशिष्ठ यह कहकर स्नेहसे शिथिल हो गये। फिर, श्रीरामचन्द्रजी प्रणाम करके बिदा हुए और वशिष्ठ ऋषि धीरज रखकर राजा जनकके पास आ गये।

रामबचन गुरु नृपहि सुनाये। सील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धरमसहित हित होई॥

गुरु वशिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीके शील, स्नेह और स्वभावसे ही सुहावने वचन राजाको सुनाये और कहा—महाराज, अब वही कीजिये जिसमें धर्मसमेत सबका हित होवे।

दो०—ग्यान निधान सुजान सुचि धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजससमन को समरथ एहिकाल॥२६२॥

हे राजन्, आप ज्ञानके भाण्डार हैं, सुजान हैं, पवित्र हैं और धर्ममें धीर हैं। आपको छोड़कर इस समय दुबिधाको दूर कर देनेवाला और कौन समर्थ है?

सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आये इहां कीन्ह भल नाहीं॥

मुनिके वचन सुनकर राजा जनक प्रेममें भर गये ! उनकी गति देखकर ज्ञान और वैराग्यको भी वैराग्य हो गया। स्नेहसे शिथिल होकर वे मनमें सोचने लगे कि यहां आये, यह अच्छा नहीं किया।

रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई॥

राजाने श्रीरामचन्द्रजीको वन जानेकी आज्ञा दी है और स्वयं प्यारेके प्रेमको सच्चा कर दिखलाया। अब हम अपना ज्ञान बढ़ाकर श्रीरामचन्द्रजीको एक वनसे दूसरे वनमें भेजकर आनंदित होकर लौटेंगे !

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेमबस बिकल बिसेखी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहितसमाजा॥

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण, सब राजा जनकको देख और सुनकर प्रेमके वशमें होकर विशेष व्याकुल हो गये। समय समझकर और धीरज रखकर राजा जनक सब समाजसमेत भरतजीके पास चले।

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसरसरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तिरहुतिराऊ। तुम्हहिं बिदित रघुबीरसुभाऊ॥

भरतजीने आकर आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और समयके अनुसार सुन्दर आसन दिये। राजा जनक कहने लगे कि हे तात, हे भरत, तुम्हें श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव मालूम है।

दो०—राम सत्यब्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सकोचबस कहिय जो आयसु देहु॥ २९३॥

श्रीरामचन्द्रजी सत्यव्रती हैं और धर्ममें तत्पर हैं, उन्हें सबका शील और स्नेह भी है। वे संकोचमें पड़कर सब संकट सह रहे हैं। अब जो आज्ञा हो, वह कहिये।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू। कुल-गुरु-सम हित माय न बापू॥

सुनकर भरतजीका शरीर पुलकायमान हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया और वे भारी धीरज रखकर बोले---प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्यारे और पूज्य हैं, आप पिताके समान हैं, कुलगुरु वशिष्ठजीके समान हितकारी तो मातापिता भी नहीं हैं।

कौसिकादिमुनि सचिवसमाजू। ग्यान-अंबु-निधि आपुन आजू॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइय स्वामी॥

विश्वामित्र आदि मुनियों और मंत्रियोंका समाज और ज्ञानसागर आप, सब यहां आज एकत्र हैं। हे स्वामिन्, मुझे बालक, सेवक और अपनी आज्ञाका अनुयायी समझकर सीख दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥

इस समाजमें, इस स्थलपर आपका पूछना! मैं गूँगा, मैला और बावला क्या कहूंगा? छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूं। हे तात, विधाताको प्रतिकूल समझकर क्षमा कीजिये।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बइरु-अंधु प्रेमहिं न प्रबोधू॥

वेद, शास्त्र और पुराण, सबमें प्रसिद्ध है और संसार भी जानता है कि सेवाधर्म बहुत कठिन है। स्वामि-धर्म और स्वार्थका विरोध है, जैसे बहिरे और अंधे मनुष्यको प्रेमका ज्ञान नहीं होता।

दो०—राखि राम रुख धरमुब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब के संमत सर्बहित करिय प्रेम पहिचानि॥ २६४॥

श्रीरामचन्द्रजीके रुख, धर्म और व्रतको रखकर और मुझे पराधीन जानकर तथा प्रेम पहिचानकर आप वही कीजिये जो सबका हित करनेवाला हो और जिसके लिये सबकी सलाह हो।

भरतबचन सुनि देखि सुभाऊ। सहितसमाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सब समाजसमेत राजा जनक उनकी प्रशंसा करने लगे। भरतजीके वचन सुगम (सरल) किन्तु अगम (गंभीर) थे, सुन्दर और कोमल किन्तु कठोर थे। उनमें अक्षर कम थे, परन्तु उनका अर्थ अत्यन्त असीम था।

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निजपानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूपु भरतु मुनिसाधु समाजू। गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विजराजू॥

भरतजीकी वाणी ऐसी अद्भुत थी कि उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता, जैसे अपने ही हाथमें दर्पण होनेपर भी उसमें दिखलायी पड़नेवाला मुँह! राजा जनक, भरतजी, मुनिजन और साधुओंका समूह, सब लोग वहां गये जहां देवतारूपी कुमुदोंके चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी थे।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नवजल जोगा॥
देव प्रथम कुल-गुरु-गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी॥

यह बात सुनकर सब लोग शोकमें व्याकुल हो गये जैसे नये जलके योगसे मछलियोंका समूह। देवताओंने पहिले सूर्यकुलके गुरु वशिष्ठजीकी दशाको देखा और फिर राजा जनकके विशेष प्रेमको देखा।

राम-भगति-मय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भये अलेख सोचबस लेखा॥

जब स्वार्थी देवताओंने देखा कि भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे पूर्ण हो रहे हैं तब अपने हृदयमें घबड़ाकर वे हार गये। सब किसीने श्रीरामचन्द्रजीको प्रेममय देखा और चिन्ताके वशमें होकर सब देवता लोग चित्र लिखेसे रह गये।

दो०—रामु सनेह-संकोच-बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥ २९५॥

चिन्तित होकर देवराज इन्द्र कहने लगे कि श्रीरामचंद्रजी स्नेह और संकोचके वशमें हैं। सब पंच मिलकर कोई प्रपंच रचो, नहीं तो काम बिगड़ा जाता है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरतमति करि निज माया। पालु बिबुधकुल करि छलछाया॥

देवताओंने सरस्वतीको स्मरण किया और स्तुति की कि हे देवि, सब देवता आपके शरणागत हैं। आप इनकी रक्षा करें। अपनी माया करके भरतजीकी बुद्धिको आप पलट दीजिये और अपने छलकी छाया करके देवताओंके समूहको पालिये।

बिबुधबिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥

चतुर सरस्वती देवीजी देवताओंकी विनय सुनकर और यह जानकर कि देवता स्वार्थी और मूर्ख हैं, इन्द्रको संबोधन कर बोलीं—मुझसे कह रहे हो कि भरतजीकी बुद्धि पलट दो। तुम्हारे हजार नेत्र हैं, पर तुम्हें सूझता सुमेरु पर्वत भी नहीं है।

बिधि-हरि-हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरतमति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकी माया बड़ी भारी है; किन्तु वह भी भरतजी-

की बुद्धिकी ओर देख नहीं सकती। उसी बुद्धिको मुझसे कहते हो कि पलटा दो। चांदनी क्या सूर्यकी चोरी कर सकती है ?

भरतहृदय सियरामु निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधिलोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

भरतजीके हृदयमें सीताजी और श्रीरामचंद्रजीका निवास है। जहां सूर्यका प्रकाश हो वहां क्या अंधकार हो सकता है ? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको गयीं और सब देवता ऐसे व्याकुल हो गये जैसे रातमें चकवा।

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्रु कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥ २९६॥

स्वार्थी देवताओंका मन मैला है। उन्होंने खोटी सलाह कर बुरी रचना की। अपनी प्रबल मायासे प्रपंच रचकर उन्होंने भय, भ्रम, दुःख और उच्चाटन उत्पन्न कर दिया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरतहाथ सब काजु अकाजू॥
गये जनकु रघुनाथसमीपा। सनमाने सब रबि-कुल-दीपा॥

बुरी रचना करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि कामका बनना और बिगड़ना सब भरतजीके हाथमें है। राजा जनक श्रीरामचंद्रजीके पास गये। सूर्यकुलके दीपक श्रीरामचंद्रजीने सबका सम्मान किया।

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस-पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥

तब रघुकुलके पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्मके अनुसार बोले। पहिले उन्होंने राजा जनक और भरतजीकी बातचीत सुनायी और फिर भरतजीका सुन्दर कहना भी कह सुनाया।

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥

वे कहने लगे—हे तात, हे राम, मेरा मत भी यही है कि आप जैसी आज्ञा देवें वैसा सब लोग करें। वशिष्ठजीका कथन सुनकर और दोनों हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी सत्य, सरल और मीठी वाणी बोले।

बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू। मोर कहब सब भांति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरिसपथ सही सिर सोई॥

आप और राजा जनककी विद्यमानतामें मेरा कुछ कहना सभी प्रकार

अयोग्य होगा। आपकी और राजा जनककी जो आज्ञा होगी, मुझे आपकी सौगंद है, वही ठीक है और मेरे शिरपर है !

दो०—रामसपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभासमेत।
सकल बिलोकत भरतमुखु बनइ न ऊतरु देत॥ २९७॥

श्रीरामचंद्रजीकी सौगंद सुनकर वशिष्ठमुनि और राजा जनक सब सभासमेत सकुचा गये और सब लोग भरतजीके मुखकी ओर देखने लगे। उनसे उत्तर नहीं देते बनता।

सभा सकुचबस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥

भरतजीने देखा कि सभाजन संकोचके वशमें हो रहे हैं। तब श्रीरामचंद्रजीके भाई भरतजीने भारी धीरज रखकर और कुसमय देखकर अपने स्नेहके वेगको रोक लिया जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचलको अगस्त्यमुनिने रोक लिया था।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल-गुन-गन जगजोनी॥
भरतबिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥

शोकरूपी हिरण्याक्षने जब बुद्धिरूपिणी पृथिवीका हरण कर लिया, तब भरतजीके निर्मल गुणसमूहरूपी ब्रह्मासे उनका विवेकरूपी विशाल बाराह उत्पन्न हुआ जिसने अनायास उसी समय उद्धार कर दिया।

करि प्रनामु सबु कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥

भरतजीने प्रणाम करके सबको हाथ जोड़े और श्रीरामचंद्रजी, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ और साधुजनोंकी विनती की। उन्होंने कहा—आज मेरा यह अत्यन्त अनुचित कार्य क्षमा कीजिये। कोमल मुखसे मैं कठोर वचन कहता हूं।

हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुखपंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरतभारती मंजु मराली॥

भरतजीने अपने हृदयमें सुन्दर सरस्वतीजीका स्मरण किया जो मनरूपी मानसरोवरसे मुखरूपी कमलमें आ गयीं। विशुद्ध विवेक, धर्म और नीतिसे भरी हुई भरतजीकी वाणी सुन्दर हंसिनीके समान है।

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥२९८॥

ज्ञान-नेत्रोंसे सब समाजको स्नेहसे शिथिल देखकर सीताजी और श्रीरामचंद्रजीको स्मरण कर भरतजी प्रणाम करके बोले—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सीलनिधानू। प्रनतपालु सरबग्य सुजानू॥

हे प्रभो, आप पिता, माता, मित्र, गुरु और स्वामी हैं, पूज्य हैं, अत्यंत हितकारी हैं और अंतर्यामी हैं। आपका स्वभाव सरल है, आप अच्छे स्वामी हैं और शीलके स्थान हैं। आप दीनोंके पालनेवाले, सर्वज्ञ और सुजान हैं।

समरथु सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन-अघ-हारी॥
स्वामि गोसाईंहिं सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाई॥

आप समर्थ हैं, शरणागतका हित करनेवाले हैं, गुणोंके ग्राहक और पापों और अवगुणोंको नष्ट कर देनेवाले हैं। हे स्वामी, आपके समान आप ही हैं और स्वामीकी सौगंद है, मेरे समान मैं ही हूँ।

प्रभु-पितु-बचन मोहबस पेली। आयेउँ इहां समाजु सँकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू॥

हे प्रभो, मोहके वश होकर पिताजीके वचनोंका उल्लंघन करके मैं सब समाजको इकट्ठा करके यहां आया हूँ। संसारमें अच्छा और बुरा, ऊँचा और नीचा, अमृत और विष, अमरत्व और मृत्यु, सभी हैं।

रामरजाइ मेटि मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सबु बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

ऐसा कहीं कोई नहीं देखा और सुना जिसने श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा मनसे भी मेट दी हो। मैंने सब प्रकार वही ढिठाई की, किन्तु प्रभुने उसे स्नेहकी सेवा मान लिया।

दो०—कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषनसरिस सुजसु चारु चहुँ ओर॥ २६६॥

हे नाथ, आपने अपनी कृपा और भलाईसे मेरा भला किया। मेरे दोष मेरे भूषणोंके समान हो गये और सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया।

राउरिरीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥

आपकी रीति, सुन्दर वाणी और बड़ाई संसारमें विख्यात है तथा वेदों और शास्त्रोंने उसे गाया है। जो लोग क्रूर, कुटिल, दुष्ट, दुर्बुद्धि, कलंकित, नीच, शीलहीन, निर्भय और नास्तिक हैं—

तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनामु किये अपनाये॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधुसमाज बखाने॥

वे भी सुनकर जब सामने होकर शरणमें आये तब एक बार प्रणाम करते ही आपने उन्हें अपना लिया। आपने देखकर भी अपने हृदयमें उनके दोषोंका विचार कभी नहीं किया, परन्तु सुनकर ही उनके गुणोंका बखान साधुजनोंके समाजमें किया।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥

ऐसा कौन स्वामी है जो सेवकपर कृपा करके उसका सब साज अपने ही समान सजा देवे, अपने कार्योंको स्वप्नमें भी कुछ न समझे और सेवकके संकोचसे अपने हृदयमें सोच करे?

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

वह स्वामी आप ही हैं और दूसरा कोई भी नहीं है—मैं भुजा उठाकर और प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। पशु नाचते और तोते पढ़नेमें चतुर हो जाते हैं, परन्तु उनकी गति और गुण नचानेवाले नट और पढ़ानेवालेके अधीन हैं।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमौर।
को कृपाल बिनु पालिहइ बिरदावलि बरजोर॥ ३००॥

इस प्रकार आपने अपने सेवकोंको सुधारकर और उनका आदर करके उन्हें साधुजनोंमें शिरोमणि बना दिया। हे कृपालु, आपके बिना अत्यन्त प्रबल विरुदावलीकी रक्षा कौन करेगा?

सोक सनेह कि बाल सुभायँ। आयेउँ लाइ रजायसु बायँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भांति भल मानेउ मोरा॥

शोक, स्नेह या बालस्वभावसे मैं आपकी आज्ञाके प्रतिकूल काम करके यहां आया। फिर भी हे दयानिधान, आपने अपनी ओर देखकर सब प्रकार मेरा भला ही माना।

देखेउँ पाय सु-मंगल-मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिबअनुरागू॥

सुन्दर मंगलोंके मूल आपके चरणोंके दर्शन मैंने कर लिये और यह जान लिया कि स्वामी स्वभावसे ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाजमें मैं अपने इस भाग्यको देखता हूँ कि इतनी बड़ी भूल होनेपर भी स्वामीका मुझपर प्रेम है।

कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभाय भलाईं॥

आपकी कृपा और अनुग्रहसे मेरे सब अंग भर गये। हे कृपानिधान, आपने सब कुछ अधिकता ही की। हे स्वामी, आपने अपने शील, स्वभाव और भलाईसे मेरा दुलार रखा।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोचु बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहिं देव अति आरत जानी॥

स्वामी और समाजके संकोचको छोड़कर हे नाथ, मैंने बड़ी ढिठाई की है। हे देव, मेरी जैसी रुचि हुई उसके अनुसार कही हुई नम्र और कठोर वाणीको यह जानकर क्षमा करेंगे कि मैं अत्यंत दुःखी हूँ।

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबुइ सुधारिय मोरि॥ ३०१॥

सुहृद, सुजान और अच्छे स्वामीसे अधिक कहना बड़ा अपराध है। हे देव, अब आप आज्ञा दीजिये और मेरी सब बातोंको सुधार लीजिये।

प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुखसीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥

जो सत्य, पुण्य और सुखकी सुहावनी सीमा है, उन्हीं प्रभुके चरणकमलोंकी रजकी सौगंद है। इस सौगंदको खाकर मैं अपने हृदयकी बात कहता हूँ जो जागते, सोते या स्वप्न देखते हुए, प्रत्येक समयकी मेरी रुचि है।

सहज सनेह स्वामिसेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्यासम न सुसाहिबसेवा। सो प्रसादु जनु पावइ देवा॥

स्वार्थ, छल और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल छोड़कर स्वाभाविक स्नेहसे स्वामीकी सेवा करनी चाहिये। स्वामीकी आज्ञा पालन करनेके समान दूसरी सेवा नहीं है। हे देव, सेवकको वही प्रसाद मिले।

अस कहि प्रेमबिबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥

ऐसा कहकर भरतजी अत्यंत प्रेमके वशमें हो गये, उनका शरीर पुलकायमान हो गया, नेत्रोंमें जल छा गया। उन्होंने व्याकुल होकर प्रभु श्रीरामचंद्रजीके चरणकमल पकड़ लिये। उस समयके स्नेहका वर्णन नहीं किया जाता।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

सुन्दर वाणीसे आदर करके कृपासागर श्रीरामचंद्रजीने हाथ पकड़कर भरतजीको पास बिठलाया। भरतजीकी विनती सुनकर और स्वभाव देखकर सब सभासमेत श्रीरामचंद्रजी स्नेहसे शिथिल हो गये।

छंद—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महुँ सराहत भरत-भायप-भगति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानसमलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिनसे॥

श्रीरामचंद्रजी, साधुजनोंका समाज, वशिष्ठमुनि और मिथिलापति राजा जनक, सब स्नेहसे शिथिल हो गये, और मनमें भरतजीके बन्धुभाव और भक्तिकी प्रगाढ़ महिमाकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी मलिन चित्तसे भरतजीकी प्रशंसा करने लगे और फूल बरसाने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर व्याकुल हो गये और सकुचा गये जैसे रात्रिके आनेपर कमल।

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नरनारि सब।
मघवा महामलीन मुयेहिं मारि मंगल चहत॥ ३०२॥

दोनों समाजोंकी स्त्रियों और पुरुषों, सबको दीन और दुःखी देखकर भी महामलीन इन्द्र मरेको मारकर अपना भला चाहता है!

कपट-कुचालि-सीवँ सुरराजू। पर-अकाज-प्रिय आपन काजू॥
काकसमान पाक-रिपु-रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥

देवराज इन्द्र कपट और खोटी चालकी सीमा हैं। दूसरोंका काम बिगाड़ना और अपना काम बनाना उन्हें प्यारा है। पाक दैत्यके शत्रु इन्द्रकी रीति कौएके समान है जो छली है, मलीन है और जिसका विश्वास किसीपर भी नहीं है।

प्रथम कुमति करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सब के सिर मेला॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। रामप्रेम अतिसय न बिछोहे॥

पहिले खोटी सलाह करके कपट इकट्ठा किया जिसने सबके शिरपर उच्चाटन डाल दिया। इससे यद्यपि सब लोग देवताओंकी मायासे मोहित हो गये तथापि वे श्रीरामचंद्रजीके प्रेमसे बहुत अधिक वियुक्त नहीं हुए।

भये उचाटबस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥

सब लोग उच्चाटनके वशमें हो गये, उनका मन अस्थिर हो गया, एक क्षणमें उनकी रुचि वनमें रहनेको होती और दूसरे ही क्षण उन्हें घर अच्छा लगता। मनमें दुविधा होनेसे प्रजाजन ऐसे दुःखी हुए जैसे नदी और समुद्रके संगमपर जल।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥

दुविधा होनेसे कहीं भी उन्हें संतोष नहीं मिलता। वे परस्पर अपना भेद भी नहीं बतलाते। यह सब देखकर अपने हृदयमें हँसकर कृपानिधान श्रीरामचंद्रजी कहने लगे कि श्वान् (कुत्ता) युवन् (युवा) और मघवन् (इन्द्र) एक ही समान हैं।

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं जथाजोगु जनु पाइ॥ ३०२॥

भरतजी, राजा जनक, मुनिजन, मंत्री, साधु और सावधान लोगोंको छोड़कर देवताओंकी माया सब मनुष्योंको जिसे जिस योग्य पाया उसे वैसी ही लग गयी।

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुर-पति-छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरतुभगति सब कै मति जंत्री॥

कृपासागर श्रीरामचंद्रजीने अपने प्रेम और देवराज इन्द्रके छलके बोझसे सब लोगोंको दुःखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ, ब्राह्मण और मंत्री, सबकी बुद्धिको भरतजीकी भक्तिने बांध दिया।

रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत-प्रीति-नति-बिनय-बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

वे सब श्रीरामचंद्रजीको ऐसे देखते हैं मानों चित्रमें लिखे हुए हों, मुँहसे कुछ वचन बोलते हुए वे सब ऐसे सकुचाते हैं मानों सिखलाये हुए हों। भरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनती और बड़ाई सुननेमें सुखदायक है परन्तु वर्णन करनेमें वह कठिन है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥

जिनकी भक्तिका लवलेश देखकर ही मुनियोंके समूह और राजा जनक

प्रेममें मग्न हो गये, उनकी महिमाको यह तुलसी कैसे कहे क्योंकि भक्तिके स्वभावसे ही मेरे हृदयमें भी सुबुद्धि उमड़ रही है।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बालबचन की नाईं॥

अपनेको छोटा और महिमाको बड़ा जानकर और कविजनोंकी मर्यादा मानकर मेरी बुद्धि सकुचा गयी। रुचि तो अधिक है परन्तु भरतजीके गुणोंको वह कह नहीं सकती, बुद्धिकी गति बालकके वचनोंकी भांति हो गयी।

दो०—भरत-बिमल-जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जनहृदय नभ एकटक रही निहारि॥३०४॥

भरतजीके उज्ज्वल यशके निर्मल चंद्रको भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें उदय हुआ देखकर सुबुद्धिरूपी चकोरकी कन्या एकटक रह गयी।

भरतसुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघुमति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय-राम-पद होइ न रत को॥

भरतजीका स्वभाव वेदोंके लिये भी सुगम नहीं है। हे कविजनो, मेरी छोटी बुद्धिकी चंचलता क्षमा करना। भरतजीके सच्चे भावको कहते और सुनते कौन है जो श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें अनुरक्त न हो जावे?

सुमिरत भरतहिं प्रेमु रामुको। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बामको॥
देखि दयालु दसा सबही की। रामु सुजान जानि जन जी की॥

भरतजीको स्मरण करनेसे जिसे श्रीरामचंद्रजीका प्रेम सुलभ न हो जाय, उसके समान मंदभाग्य कौन है? सभीकी दशा देखकर और अपने भक्त भरतजीकी अवस्था जानकर दयालु और सुजान—

धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस काल लखि समयसमाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू॥

धर्मधुरंधर, धीर, नीतिमें चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुखके समुद्र, नीति और प्रीति, दोनोंकी ही रक्षा करनेवाले और रघुवंशके स्वामी श्रीरामचंद्रजी देश, काल और उस समयके समाजको देखकर—

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से॥
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना। लोक बेद बिद प्रेमप्रबीना॥

वाणीके सर्वस्वके समान वचन बोले, जिनका परिणाम हितकारी है और जो सुननेमें चंद्रमाके रस अमृतके समान हैं। वे कहने लगे—हे तात, हे भरत, तुम धर्मधुरंधर हो और लोक और वेद, दोनोंको ही जाननेवाले परम चतुर हो।

दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरुसमाज लघु-बंधु-गुन कुसमय किमि कहि जात॥३०५॥

हे तात, तुम्हारे समान मन, वाणी और कर्मसे निर्मल स्वयं तुम्हीं हो। कुसमयमें गुरुजनोंके इस समाजमें छोटे भाईके गुणोंको कैसे कहा जा सकता है?

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥

हे तात, सूर्यवंशकी रीति और सत्यप्रतिज्ञ पिताके सुयश और प्रेमको जानते हो। समय, समाज, गुरुजनोंकी लज्जा, शत्रु, मित्र और उदासीन लोगोंके मनकी बात—सबको तुम जानते हो।

तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भांति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसरअनुसारा॥

तुम्हें सभीका कर्म मालूम है। अपना तथा मेरा परमहित धर्म भी मालूम है। यद्यपि मुझे सब प्रकार तुम्हारा भरोसा है तथापि अवसरके अनुसार बतलाता हूं।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुल-गुरु-कृपा सँभारी॥
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सबु होत खुआरू॥

हे तात, पिताजीके बिना हमारी बात कुलके गुरु केवल वशिष्ठजीकी कृपाने ही संभाल रखी है, नहीं तो हम लोगों-समेत प्रजा, कुटुम्बी और नगर-निवासी, सबकी ख्वारी हो जाती।

जौं बिनु अवसरु अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

यदि असमयमें ही सूर्यास्त हो जावे तो कहो, संसारमें किसे क्लेश न होगा? हे तात, दैवने वैसा ही उत्पात किया था, पर वशिष्ठ-मुनि और राजा जनकने सबकी रक्षा कर ली।

दो०—राजकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहिं भल होइहि परिनाम॥३०६॥

राज-काज, सम्पूर्ण लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथिवी, धन और भवन, सबकी रक्षा गुरुजीका प्रभाव करेगा और परिणाम भला होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरुप्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनी धरु सेसू॥

वनमें और घरमें, सर्वत्र सब समाज-समेत हमारा और तुम्हारा रक्षक गुरुकी कृपा ही है। माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञा पालन करना सभीका धर्म है। इसीके लिये शेषनाग भी पृथिवीको धारण किये हुए हैं।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि-कुल-पालक होहू॥
साधन एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥

उसे ही तुम पालन करो और मुझसे भी पालन कराओ, और हे तात, सूर्यवंशको पालन करनेवाले बनो। साधकोंको सब सिद्धियोंको देनेवाली यही एक बात है जो कीर्ति, सद्गति और ऐश्वर्यरूपी त्रिवेणी है।

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥
बांटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुमहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥

यही विचारकर भारी संकटोंको सहकर प्रजाजनों और कुटुम्बियोंको सुखी बनाओ। विपत्ति सभीके हिस्सेमें पड़ी है और वही मुझपर भी है। मेरे वनवासकी अवधि समाप्त होनेतक तुम्हें बड़ी कठिनाई है।

जानि तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठाँयँ सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनिहु के घाये॥

तुम्हें कोमल जानकर भी मैं कठोर वचन कहता हूं। हे तात, कुसमय है; मेरी कोई अनुचित बात नहीं है। बुरे स्थानमें अच्छे भाई ही सहायक होते हैं, जैसे तलवारका घाव लगनेपर भी हाथ ही उसे रोकनेके लिये आगे बढ़ाया जाता है।

दो०—सेवक कर पद नयन से मुखु सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥३०७॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक तो हाथ, पैर और नेत्र जैसे हों और स्वामी हो मुखके समान। उसीकी प्रीतिकी रीति सुनकर उत्तम कविजन प्रशंसा करते हैं।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम-पयोधि अमिय जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥

सब सभाजनोंने श्रीरामचन्द्रजीकी वाणी सुनी जो मानों प्रेमरूपी समुद्रसे निकले हुए अमृतसे ढबी हुई थी। सब समाज शिथिल हो गया, उसे स्नेहकी समाधि लग गयी और दशा देखकर सरस्वतीजी भी मौन हो गयीं।

भरतहिं भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥

स्वामीके सामने दुःख और दोष दूर हो जानेसे भरतजीको बड़ा संतोष हुआ। उनका मुख प्रसन्न हो गया, मनका शोक मिट गया मानों गूंगेपर सरस्वतीकी कृपा हो गयी।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानिपंकरुह जोरी॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनमु भये को॥

भरतजीने प्रेमके साथ फिर प्रणाम किया और कमलके समान अपने हाथ जोड़कर बोले—हे नाथ, साथ जानेका सुख मिल गया, संसारमें जन्म लेनेका लाभ पा लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहिं देई। अवधि पारु पावउँ जेहि सेई॥

हे कृपालु, अब जैसी आज्ञा होवे, शिरोधार्य कर आदर पूर्वक वही करूं। हे देव, मुझे वही सहारा दीजिये जिसे पकड़कर मैं आपके बनवासकी अवधिके पार पा जाऊं।

दो०—देव देवअभिषेक हित गुरुअनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथसलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥ ३०८॥

हे देव, आपका अभिषेक करनेके लिये गुरुजीकी आज्ञा पाकर सब तीर्थोंका जल लेता आया हूं उसके लिये क्या आज्ञा है?

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभुआयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥

मनमें एक बड़ी इच्छा है, पर वह आपके भय और संकोचके कारण कही नहीं जाती। श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीसे कहा कि हे तात, कहो। तब भरतजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर प्रेमके साथ यह सुहावनी वाणी बोले—

चित्रकूट मुनि थल तीरथ बन। खग मृग सरि सर निर्झर गिरिगन॥
प्रभु-पद-अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी॥

हे प्रभो, यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट पर्वत, मुनियोंके आश्रम, तीर्थ, वन, पक्षी, हिरन, नदी, सरोवर, झरना और पर्वतोंके समूह और विशेषकर वह पृथिवी, जिसपर स्वामीके चरण पड़ चुके हैं, सबको देख आऊं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू॥
मुनिप्रसाद बन मंगलदाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि हे तात, अवश्य ही तुम अत्रि मुनिकी आज्ञाको

अपने शिरपर धारण करके निर्भय होकर वनमें विचरण करो। हे भाई, मुनिकी कृपासे यह सुहावना वन अत्यंत पवित्र है और मंगलोंको देनेवाला है।

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथजल थल तेहीं॥
सुनि प्रभुबचन भरत सुखु पावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिरुनावा॥

ऋषिराज जहांके लिये आज्ञा देवें, उसी स्थानपर तीर्थों का जल रखना। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर भरतजीने सुख पाया और प्रसन्न होकर मुनिके चरण-कमलोंको शिर नवाया।

दो०—भरत-राम-संबादु सुनि सकल-सुमंगल-मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुर-तरु-फूल॥ ३०६॥

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीकी बातचीत, जो सभी शुभ मंगलोंका मूल है, सुनकर स्वार्थी देवता लोग उनकी प्रशंसा करके कल्पवृक्षके फूल बरसाने लगे।

[राम-बन-अटन]

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू। भरत बचन सुनि भयेउ उछाहू॥

हे भरत, आप धन्य हैं; हे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी, आपकी जय हो, ऐसा कहकर देवता बार बार प्रसन्न होने लगे। गुरु वशिष्ठ, राजा जनक और सभा-जन, सबको भरतजीके वचन सुनकर उत्साह हुआ।

भरत—राम-गुन—ग्राम—सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥

राजा जनक पुलकित होकर भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंके समूह और प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे--सेवक और स्वामी, दोनोंका ही स्वभाव सुहावना है। इनका नियम और प्रेम अत्यंत पवित्र है और पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करनेवाला है।

मतिअनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम-भरत-संबादू। दुहु समाज हिय हरषु बिषादू॥

मंत्री और सभासद लोग, सब प्रेममें भरकर अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार प्रशंसा करने लगे। श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी बातचीत सुन सुनकर दोनों ही समाजोंके लोगोंके हृदयोंमें आनंद और शोक, दोनों ही हुए।

राममातु दुख-सुख-सम जानी। कहि गुन दोष प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीरबड़ाई। एक सराहत भरतभलाई॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माताने दुःख और सुख, दोनोंको समान जानकर गुण और दोष, सब बातें कहकर रानियोंको समझाया। फिर, कोई रानी श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करने लगी और कोई भरतजीकी भलाईकी प्रशंसा करने लगी।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैलसमीप सुकूप।
राखिय तीरथतोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥ ३१०॥

तब अत्रि मुनिने भरतजीसे कहा कि पर्वतके पासमें एक सुंदर कुआँ है वहीं अमृतके समान पवित्र और अनुपम तीर्थोंका जल रखिये।

भरत अत्रिअनुसासन पाई। जलभाजन सब दिये चलाई॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू॥

अत्रि मुनिकी आज्ञा पाकर भरतजीने जलके सब पात्र भेज दिये, फिर अत्रि मुनि, अन्य मुनिजन और साधुजन तथा शत्रुघ्न-समेत स्वयं भरत वहां गये जहां वह अथाह कुआँ था।

पावनु पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥

उस पवित्र जलको जब पवित्र स्थानपर रख दिया तब प्रेमसे प्रसन्न होकर अत्रि मुनि इस प्रकार कहने लगे—हे तात, यह सिद्धस्थान अनादि है। किसीको भी इसका समय नहीं मालूम है क्योंकि यह लुप्त हो गया है।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा॥
बिधिबस भयेउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥

तब सेवकोंने जलमय स्थान देखकर सुन्दर जलके लिये कुएँको और भी अधिक ठीक कर दिया। दैववश संसारका उपकार हो गया। धर्मका विचार अत्यंत कठिन है, परन्तु वहां यह सहज हो गया।

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अतिपावन तीरथजलजोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करममनबानी॥

अत्रि मुनि कहने लगे—इसे लोग सब 'भरतकुआँ' कहकर पुकारेंगे। तीर्थोंके जलके योगसे यह अत्यंत पवित्र हो गया। प्रेम और स्नेहके साथ इसमें स्नान करते ही सब प्राणी मन, वाणी और कर्मसे निर्मल हो जायँगे।

दो०—कहत कूपमहिमा सकल गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं तीरथ—पुन्य—प्रभाउ॥ ३११॥

कुएँकी महिमा कहते हुए सब लोग वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे। अत्रि मुनिने श्रीरामचन्द्रजीको तीर्थकी पवित्र महिमा सुनायी।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयेउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई। राम-अत्रि-गुरु आयसु पाई॥

प्रीति-समेत धर्म और इतिहास कहते हुए सवेरा हो गया और वह रात सुखसे बीत गयी। नित्य क्रिया करके श्रीरामचन्द्रजी, अत्रि मुनि और गुरु वशिष्ठकी आज्ञा पाकर दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न—

सहित समाज साज सब सादें। चले राम-बन-अटन पयादें॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं॥

सब समाज-समेत सब साधारण सामग्री लेकर पैदल ही श्रीरामचन्द्रजीके वनमें भ्रमण करनेके लिये चल दिये। कोमल चरणोंमें नंगे पैर चलनेसे पृथिवी अपने मनही मन सकुचाकर कोमल हो गयी।

कुस कंटक काँकरी कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥

कुश, कांटे, कंकड़, गढ़े आदि कड़वी, कठोर और बुरी चीजोंको छिपाकर पृथिवीने मार्गको कोमल और सुन्दर बना दिया। सुखपूर्वक शीतल, मंद और सुगंधित पवन चलने लगा।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि त्रिन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल रामप्रिय जानी॥

देवता फल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल और फलकर, घास कोमल होकर, हिरन दर्शन करके और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर, सब भरतजीकी सेवा यह जानकर कि वे श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे हैं, करने लगे।

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम-प्रान-प्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात॥ ३१२॥

जमुहाई लेते हुए 'राम' कहनेसे ही साधारण मनुष्योंको भी सब सिद्धियां सुलभ हो जाती हैं, फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीको प्राणोंके समान प्यारे हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माँहीं। नेम प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु त्रिन गिरि बन बागा॥

इस प्रकार भरतजी वनमें फिरते हैं। उनके नियम और प्रेमको देखकर

मुनिजन भी सकुचाते हैं। पवित्र सरोवर, भूखण्ड, पक्षी, हिरन, वृक्ष, घास, पहाड़, वन और बाग—

चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिब्य सबु देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥

सबको सुन्दर, विचित्र, विशेष पवित्र और अलौकिक देखकर भरतजी पूछते हैं और सुनकर ऋषिराज मनमें प्रसन्न होकर उनके कारण, नाम, गुण, पुण्य और महिमा बतलाते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनिआयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥

भरतजी कहीं स्नान करते हैं और कहीं प्रणाम; कहीं वे मनोहर स्थानोंको देखते हैं और मुनिकी आज्ञा पाकर कहीं बैठकर वे सीताजी-समेत दोनों भाइयों, श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी, का स्मरण करते हैं।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गयें दिन पहर अढ़ाई। प्रभु-पद-कमल बिलोकहिं आई॥

स्नेह, स्वभाव और सुन्दर सेवा-वृत्ति देखकर वनके देवता प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। ढाई पहर दिन चढ़नेपर वे लौटते हैं और आकर श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंका दर्शन करते हैं।

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पांच दिन मांझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु गयेउ दिवस भइ सांझ॥३१३॥

पांच दिनमें भरतजीने उस स्थानके सभी तीर्थ देख लिये। पांचवां दिन भी भगवान् विष्णु और शिवका सुन्दर यश कहते और सुनते बीत गया और संध्या हो गयी।

[अन्तिम सभा]

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपालु कहत सकुचाहीं॥

सवेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण लोग, राजा जनक और सब समाज एकत्र हुआ। मनमें यह जानकर कि आज इन सबके विदा होनेके लिये अच्छा दिन है, दयालु श्रीरामचन्द्रजी कहते हुए सकुचाते हैं।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सीलु सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥

गुरु वशिष्ठ, राजा जनक, भरतजी और सभाजनोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजी सकुचा गए और फिर नीचे पृथिवीकी ओर देखने लगे। श्रीरामचन्द्रजीके शीलकी प्रशंसा करके सब सभाके लोग सोचने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीके समान संकोच करनेवाला स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान रामरुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥

सुजान भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर बहुत धीरज रखकर प्रेमके साथ उठे और दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ, आपने मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण की हैं।

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥

मेरे ही कारण सबने क्लेश उठाया और आपने भी बहुत प्रकारका दुःख पाया। हे स्वामी, अब मुझे आज्ञा दीजिये जिससे जाकर आपके वनवासकी अवधि समाप्त हो जानेतक अयोध्यापुरीमें ही सेवा करूं।

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जनु देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥ ३१५॥

हे दीनदयालु, हे कोशल देशके पालक, कृपालु, जिस उपायसे यह सेवक आपके चरणोंके फिर दर्शन करे, वही सीख आप मुझे अपने वनवासकी अवधिके लिये दीजिये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं॥
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू॥

हे स्वामी, नगर-निवासी, कुटुम्बी और प्रजाजन, सब पवित्र हैं और सबका आपसे सरस स्नेह-संबंध है। आपका कहलाकर मुझे संसारके सब दुःख और दाह अच्छे हैं, परन्तु आपके बिना मोक्षकी प्राप्ति भी व्यर्थ है।

स्वामि सुजानु जान सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपालु पालहिं सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥

हे स्वामी, आप सुजान हैं। सभीकी और अपने भक्तके हृदयकी रुचि, लालसा और स्थिति जानते हैं। आप दीनोंको पालनेवाले होकर भी सबकी रक्षा करते हैं। हे देव, मेरा निबाह तो दोनों ही ओरसे होगा।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। कियें बिचारु न सोचु खरो सो॥
आरति मोरि नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥

सब प्रकार मुझे ऐसा भारी भरोसा है। विचार करनेसे मुझे कुछ भी सोच नहीं है। हे नाथ, आपके प्रेम और मेरे दुःख, दोनोंने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ कर दिया।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोचु सिखइअ अनुगामी॥
भरतबिनय सुनि सबहि प्रसंसी। खीर नीर बिबरन मति हंसी॥

हे स्वामी, यह बड़ा दोष हुआ। इसे दूर करके संकोच छोड़कर मुझ अनुचरको सीख दीजिये। दूध और पानी अलग अलग कर देनेका गुण रखनेवाली हंसिनीके समान भरतजीकी यह विनती सुनकर सब लोगोंने उनकी प्रशंसा की।

दो०—दीनबंधु सुनि बंधुके बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसर-सरिस बोले रामु प्रबीन॥ ३१५॥

भाईके दीनतासे भरे हुए छलहीन वचन सुनकर दीनबन्धु चतुर श्रीरामचन्द्रजी देश, काल और अवसरके योग्य वचन कहने लगे।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरुहिं नृपहिं घर बन की॥
माथेपर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहु न कलेसू॥

हे तात, तुम्हारी, मेरी, कुटुम्बियोंकी, घरकी और वनकी—सबकी चिन्ता गुरुजी और राजा जनकको है। शिरपर जब गुरुजी वशिष्ठ मुनि और मिथिलेश्वर राजा जनक हैं तब हमें और तुम्हें स्वप्नमें भी क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परमपुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिअ दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥

मेरा और तुम्हारा यही परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ है कि दोनों भाई पिताजीकी आज्ञाका पालन करें, जिसमें लोक और वेद, दोनोंकी मर्यादाकी रक्षा हो। और राजाकी भलाई हो।

गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिख पालें। चलेहु कु-मग पग परहि न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी सीख पालन करनेके लिये यदि कुमार्गमें भी चलना पड़े तो नीचा पैर नहीं पड़ता। ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर जाओ और अवधि समाप्त होनेतक अयोध्यापुरीके राज्यका पालन करो।

देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुरुपद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि-मातु-सचिव-सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

देश, कोष, नगर निवासी और कुटुम्बी, सबका भारी भार गुरुजीके

चरणोंकी रजसे लगा हुआ है। तुम गुरु वशिष्ठ मुनि, माताओं और मंत्रियों-की सीख मानकर पृथिवी, प्रजाजन और राजधानी, सबकी रक्षा करना।

दो०—मुखिया मुखु सों चाहिये खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥ ३१६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखियाको मुखके समान होना चाहिये जो खाने और पीनेके लिये एक ही है और जो विवेकके साथ सब अङ्गोंका पालन-पोषण करता है।

राज-धरम-सरबसु एतनोई। जिमि मन मांह मनोरथ गोई ॥
बंधुप्रबोध कीन्ह बहु भांती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥

राजाके धर्मका सार इतना ही है। इसे छिपाकर रखो, जैसे मनमें मनोरथ। भाई भरतको श्रीरामचंद्रजीने बहुत तरहसे ज्ञानोपदेश किया, परन्तु आधारके बिना मनको न तो संतोष हुआ और न शान्ति ही।

भरतु सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥

भरतजीके शील और गुरु, मंत्री तथा समाजके संकोच और स्नेहके वशमें श्रीरामचंद्रजी पड़ गये। फिर, प्रभु श्रीरामचंद्रजीने कृपा करके अपनी खड़ाऊँ दीं जिन्हें भरतजीने अपने शिरपर रखकर ग्रहण किया।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरतसनेह रतन के। आखर जुग जनु जीवजतनके ॥

करुणानिधान श्रीरामचन्द्र जीके चरणोंकी दोनों खड़ाऊँ मानों प्रजाके प्राणोंके दो पहरुआ हैं, भरतजीके स्नेहरूपी रत्नके लिये डिबिया हैं, जीवोंके उद्धारके लिये मानों दो अक्षर 'रा' और 'म' हैं।

कुलकपाट कर कुसल करम के। बिमलनयन सेवा-सु-धरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें ॥

कुलकी रक्षाके लिये किवाड़ हैं, शुभ कर्मोंके लिये दो हाथ हैं और सेवा तथा सुन्दर धर्मके लिये निर्मल नेत्र हैं। यह सहारा पानेसे भरतजी प्रसन्न हो गये, उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा श्रीरामचंद्रजी और सीताजीके रह जानेसे मिलता।

[विदाई]

दो०—मांगेउ बिदा प्रनामु करि राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥ ३१७ ॥

प्रणाम करके जब भरतजीने बिदा मांगी तब श्रीरामचंद्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। उधर कुसमय पाकर दुष्ट इन्द्रने लोगोंका उच्चाटन कर दिया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधिआस सम जीवन जी की॥
नतरु लषन-सिय-राम-बियोगा। हहरि मरत सबु लोग कुरोगा॥

यह कुचाल भी सबके लिये अच्छी हो गयी। श्रीरामचंद्रजीके वनवासकी अवधि सब जीवोंके जीनेके लिये आशाके समान है, नहीं तो लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके वियोगरूपी दुष्ट रोगसे सब लोग तड़प तड़प मर जाते।

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुधधारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम-प्रेम रसु कहि न परत सो॥

श्रीरामचंद्रकी कृपाने वह कुपेच भी सुधार लिया। देवताओंकी माया लाभदायक और सहायक हो गयी। श्रीरामचंद्रजी भुजाएँ भरकर भाई भरतसे भेंट करने लगे। श्रीरामचंद्रजीके उस प्रेमका रस कहनेमें नहीं आता।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर-धुरं-धर धीरजु त्यागा॥
बारिजलोचन मोचत बारी। देखि दसा सुरसभा दुखारी॥

मन, वाणी और शरीर, सबमें प्रेम उमड़ आया और धीरधुरंधर श्रीरामचंद्रजीने धीरज छोड़ दिया। कमलके समान नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे। और उनकी दशा देखकर देवताओंकी सभा दुःखी हो गयी।

मुनिगन गुरु धुरधीर जनकसे। ग्यानअनल मन कसे कनकसे॥
जे बिरंचि निरलेप उपाये। पदुमपत्र जिमि जग जल जाये॥

मुनिजन, गुरु और राजा जनकके समान धीरधुरंधर, जिन्होंने अपने मनको सोनेकी भांति ज्ञानरूपी अग्निमें कस लिया है, जो ब्रह्माकी मायासे निर्लेप हैं और संसाररूपी जलमें उत्पन्न होनेपर भी जो कमलके पत्तेके समान हैं—

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर-भरत-प्रीति अनूप अपार।
भये मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥३१८॥

वह भी श्रीरामचंद्रजी और भरतजीकी अनुपम और अनंत प्रीति देखकर ज्ञान और वैराग्यसमेत तन, मन और वचनसे मग्न हो गये।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर-भरत-बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥

जहां राजा जनक और गुरु वशिष्ठजीकी दशा और बुद्धि भोली हो जाती है, उसे साधारण प्रीति कहनेमें बड़ा दोष होगा। श्रीरामचंद्रजी और भरतजीके वियोगका वर्णन करनेसे जब लोग सुनेंगे तब मुझे कठोर कवि जानेंगे।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाये। पुनि रिपुदवनु हरषि हिय लाये॥

उसी संकोचके कारण यह रस सुन्दर वाणीके लिये अकथनीय है। श्रीरामचंद्रजी और भरतजीके उस समयके प्रेमको स्मरण कर वह सकुचा गयी है। भेंट करके श्रीरामचंद्रजीने भरतजीको समझाया और फिर प्रसन्न होकर शत्रुघ्नको हृदयसे लगा लिया।

सेवक सचिव-भरत-रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुनदुखु दुहूँ समाजा। लगे चलनके साजन साजा॥

मंत्रियों और भरतजीका रुख पाकर सब सेवक गये और अपने अपने कार्यमें लग गये। वे चलनेकी तैयारियाँ करने लगे जिसे सुनकर दोनों ही समाजोंमें घोर दुःख छा गया।

प्रभु-पद-पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

प्रभु श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलकी वंदना कर और उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके, दोनों भाई मुनियों, तपस्वियों और वनके देवताओंकी विनती करके और बारंबार सबका सम्मान करके बिदा हुए।

दो०—लषनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल-सुमंगल-मूरि॥३१६॥

लक्ष्मणजीसे भेंटकर और उन्हें प्रणाम करके तथा सीताजीके चरणोंकी रजको शिरपर रखकर और सभी शुभ मंगलोंके मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमके साथ चल दिये।

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयाबस बड़ दुखु पायेउ। सहित समाज काननहिं आयेउ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचंद्रजीने राजा जनकको शिर नवाया और बहुत तरहसे विनय और बड़ाई की। उन्होंने कहा—हे देव, दयाके वशमें होकर आपने बड़ा दुःख पाया जो सब समाजसमेत वनमें पधारे।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरि-हर-सम जाने॥

मुझे आशीर्वाद देकर अब नगरको पदार्पण कीजिये। यह सुनकर धीरज रखकर राजा जनक भी चल दिये। श्रीरामचंद्रजीने वशिष्ठ मुनि, ब्राह्मणों और साधुजनोंका आदर किया और उन्हें विष्णु और शिवके समान जानकर बिदा किया।

सासुसमीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥

फिर दोनों भाई सासके पास गये और चरणोंकी वंदना कर तथा आशीर्वाद पा लौट आये। विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, कुटुम्बी, नगरनिवासी, मंत्री और सज्जन लोग—

जथाजोग करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

सबको छोटे भाई लक्ष्मणसमेत श्रीरामचंद्रजीने यथायोग्य विनय और प्रणाम करके बिदा किया। छोटों, बराबरवालों और बड़ों तथा पुरुषों और स्त्रियों, सबको कृपानिधान श्रीरामचंद्रजीने सम्मान करके लौटाया।

दो०—भरत-मातु-पद-बंदि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी सकुच सोच सब मेंटि॥३२०॥

भरतजीकी माता कैकयीके चरणोंकी वंदना कर और पवित्र स्नेहसे मिल भेंटकर प्रभु श्रीरामचंद्रजीने उनका सारा सोच और संकोच मिटाकर पालकी सजाकर उन्हें बिदा किया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रान-प्रिय-प्रेम-पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू॥

प्राणप्यारे श्रीरामचंद्रजीके प्रेममें पवित्र सीताजी कुटुम्बियों और माता पितासे मिलकर लौट आयीं। फिर वे सब सासुओंको प्रणाम करके उनसे मिलीं। उस समयके प्रेमका वर्णन करते कविके हृदयमें उत्साह नहीं होता।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मगाईं। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं॥

सीताजीने सीख सुनकर इच्छित आशीर्वाद पाया। अयोध्या और जनकपुरी—दोनों ही ओरकी प्रीतिमें वे फंसकर रह गयीं। चतुर श्रीरामचंद्रजीने पालकीको मंगवाया और समझाकर सब माताओंको उनपर चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
चलि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥

दानों भाइयोंने बार बार अच्छी तरह मिलकर समान प्रमसे सब माताओंको पहुंचाया। राजा जनक और भरतजीके दलोंने हाथी, घोड़े और तरह तरहकी सवारियां सजाकर प्रस्थान किया।

हृदय रामु सिय लषनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥

सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचंद्रजी सबके हृदयमें हैं और अचेत अवस्थामें सब लोग चले जा रहे हैं। हाथी, घोड़ा, बैल आदि पशुओंका हृदय हार गया। वे मन मारे हुए परवश चले जा रहे हैं।

दो०—गुरु गुरुतिय पद बंदि प्रभु सीता लषन समेत।
फिरे हरषि-बिसमय-सहित आये परनिकेत॥ ३२१॥

गुरु वशिष्ठ और गुरुपत्नी अरुन्धतीके चरणोंकी वंदना करके सीताजी और लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामचन्द्रजी आनन्द और विस्मयसहित पर्णकुटीमें लौट आये।

बिदा किन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥

आदर करके श्रीरामचंद्रजीने गुह निषादको बिदा किया। गुह निषाद बिदा हुआ। उसके हृदयमें वियोगका बड़ा भारी दुःख हुआ। कोल, किरात, भील और वनमें रहनेवाले अन्य लोग, सबको श्रीरामचंद्रजीने लौटाया और वे सब बारंबार प्रणाम करके लौट आये।

प्रभु सिय लषन बैठि बट छाहीं। प्रिय-परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥

बरगदकी छायामें बैठकर प्रभु सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजी प्यारे कुटुम्बियोंके वियोगमें दुःखी होने लगे। श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर वाणीसे भरतजीका स्नेह और स्वभाव छोटे भाई लक्ष्मण और प्यारी सीताजीसे विस्तारपूर्वक कहने लगे।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेमबस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥

भरतजीके प्रेम, विश्वास, वचन, मन और कार्य, सबका वर्णन श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमके वशमें होकर अपने श्रीमुखसे किया। उस समय चित्रकूटके पक्षी, हिरन, जल, मछलियां, सब चर और अचर प्राणी मलीन हो गये।

विबुध बिलोकि दसा रघुबरकी। बरषि सुमन कहि गति घर घरकी॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डरु न खरोसो॥

श्रीरामचन्द्रजीकी दशा देखकर देवताओंने फूल वर्षा की और अपनी घर घरकी दशा कह सुनायी। प्रणाम करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें भरोसा दिया और मनमें प्रसन्न होकर वे सब चल दिये। उन्हें कुछ भी भय नहीं रहा।

दो०—सानुज सीयसमेत प्रभु राजत परनकुटीर।
भगति ग्यानु बैराग जनु सोहत धरें सरीर॥३२२॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसमेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीमें विराजमान हैं मानों भक्ति और ज्ञानसमेत वैराग्य शरीर धारण किये शोभा पा रहा हो।

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। रामबिरह सबु साजु बिहालू॥
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मगु जाहीं॥

श्रीरामचंद्रजीके वियोगमें मुनि, ब्राह्मण, गुरु, भरत और राजा जनक, सब लोग बेहाल हो रहे थे। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंके समूहको मनमें समझते हुए सब लोग चुपचाप मार्गमें चले जा रहे थे।

जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू॥

यमुनाजीको उतरकर सब लोग पार हुए। वह दिन भोजन बिना ही व्यतीत हो गया। गंगाजीके पार जाकर दूसरा पड़ाव डाला। यहां श्रीरामचन्द्रजीके मित्र गुह निषादने सब सुविधा कर दी।

सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥

फिर सई नदी पार करके गोमतीमें स्नान किया और चौथे दिन अयोध्यामें पहुंच गये। राजा जनक अयोध्यापुरीमें चार दिन ठहरे। फिर राज-काज और सब सामग्री संभालकर—

सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू॥
नगर-नारि-नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम-रज-धानी॥

और मंत्रियों, गुरु वशिष्ठ तथा भरतजीको राज्य-भार सौंपकर वे अपना सब साज सजाकर तिरहुतको चल दिये। गुरु वशिष्ठजीकी सीख मानकर

नगरके स्त्री-पुरुष, सब लोग, श्रीरामचन्द्रजीकी राजधानी अयोध्यापुरीमें दुखसे रहने लगे।

दो०—रामदरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जियत अवधिकी आस॥३२३॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन पानेके लिये सब लोग भूषण, सुख और भोग-विलास छोड़-छोड़कर नियम और व्रत करने लगे। वे चौदह वर्षकी अवधिकी आशापर जीते रहे।

[भरतकी तपस्या]

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातुसेवकाई॥

भरतजीने मंत्रियों और स्वामिभक्त सेवकोंको उपदेश दिया और सीख पाकर वे सब अपने अपने काममें लग गये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नको बुलाकर सीख दी और सब माताओंकी सेवाका भार सौंप दिया।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बरबिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब संकोचू॥

ब्राह्मणोंको बुलाकर भरतजीने हाथ जोड़े और प्रणाम करके उनसे बड़ी नम्रतापूर्वक विनती की—ऊँचा-नीचा, अच्छा-बुरा, कैसा भी कार्य हो, आज्ञा देनेमें संकोच न कीजियेगा।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाये। समाधान करि सुबस बसाये॥
सानुज गे गुरुगेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥

फिर भरतजीने अपने कुटुम्बियों, प्रजाजनों और नगरनिवासियोंको बुलाया और उनका समाधान करके उन्हें अच्छी तरह बसा दिया। फिर वे छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत गुरु वशिष्ठके घर गये और दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे—

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरमु सारु जग होइहि सोई॥

यदि आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ। वशिष्ठ मुनि पुलकित शरीर होकर प्रेमके साथ कहने लगे कि तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही संसारमें धर्मका सार होगा।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभुपादुका बैठारे निरुपाधि॥३२४॥

गुरुजीकी सीख सुनकर और बड़ा आशीर्वाद पाकर भरतजीने ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभदिन स्थिर किया और उपाधिरहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी खड़ाऊँ सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर दीं।

राममातु गुरुपद सिरु नाई। प्रभु-पद-पीठ-रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परनकुटीरा। कीन्ह निवासु धरम-धुर-धीरा॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्या और गुरु वशिष्ठके चरणोंको शिर नवाकर तथा प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी पादुकाको आज्ञा पाकर धर्मकी सीमा और धीर भरतजीने नंदिग्राममें पर्णकुटी बनाकर निवास किया।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुससाथरी सवाँरी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥

शिरपर जटाजूट रख लिये, मुनियोंके समान कपड़े धारण करने लगे, पृथिवीको खोदकर कुशोंका बिछौना बिछा लिया और भोजन, वस्त्र, पात्र, व्रत और नियम, ऋषियोंके सब कठिन धर्म प्रेमके साथ करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिनु तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई॥

भूषण, वस्त्र, भोग-विलास और बहुत प्रकारके सुख, सबको मन, वाणी और शरीरसे तिनकेके समान त्याग दिया। जिस अयोध्याके राज्यकी प्रशंसा इन्द्र भी करते हैं और राजा दशरथके जिस वैभवको सुनकर कुबेर भी लज्जित हो जाते हैं—

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमाबिलासु रामअनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

उसी नगरमें भरतजी विरक्त होकर बसने लगे जैसे चंपकलताके बागमें भौंरा। जो श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी हैं वे लक्ष्मीके भोगोंको वमनके समान त्याग देते हैं। वे बड़े भाग्यशाली मनुष्य हैं।

दो०—राम-प्रेम-भ जन भरतु बड़े न येहि करतूति।
चातक हंस सराहियत टेक बिबेक बिभूति॥ ३२५॥

जब टेक और विवेककी विभूतिके कारण ही क्रमशः पपीहे और हंसकी प्रशंसा की जाती है तब भरतजी तो श्रीरामचंद्रजीके प्रेमके पात्र ही हैं। उनके लिये यह कोई बड़ा काम नहीं है।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घट न तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम-पेम-पनु पीना। बढ़त धरमदलु मनु न मलीना॥

भरतजीका शरीर दिन दिन दुबला होने लगा, परन्तु उनका तेज और बल कम नहीं हुआ। मुँहकी शोभा वही बनी रही। श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमका प्रण नित्य नया पुष्ट होता और धर्मका दल बढ़ता जाता था। उनका मन मलीन न रहता था।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥

जैसे शरद्ऋतुके प्रकाशित होनेपर जल घट जाता है, बेत बढ़ने लगते हैं और कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार शम, दम, संयम, नियम और व्रत, सब भरतजीके हृदयरूपी आकाशमें नक्षत्रोंके समान चमकने लगे।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामिसुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम-पेम-बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥

भरतजीका विश्वास ध्रुवतारा है, चौदह वर्षकी अवधि रात्रिकालके समान है, स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण ही देव-पथ प्रकाशित हो रहा है; श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम ही निश्चल और निर्दोष चन्द्रमा है जो नित्य अपने समाजरूपी नक्षत्रोंसहित बहुत सुन्दर शोभा पाता है।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस-गनेस-गिरा-गमु नाहीं॥

भरतजीके रहनेका ढङ्ग, समझ, करतूत, भक्ति, वैराग्य, गुण, और निर्मल ऐश्वर्य—सबका वर्णन करते श्रेष्ठ कवि भी सकुचाते हैं, वहां शेषनाग, सरस्वती और गणेशजी भी नहीं पहुँच सकते।

दो०—नित पूजत प्रभुपांवरी प्रीति न हृदय समाति।
मांगि मांगि आयसु करत राजकाज बहु भांति॥ ३२६॥

भरतजी नित्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी खड़ाऊँ पूजते हैं। उनके हृदयमें प्रेम नहीं समाता। वे आज्ञा मांग मांगकर बहुत प्रकारके सभी राजकाज करते हैं।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नामु-जपु लोचन नीरू॥
लषनु रामु सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

भरतजीका शरीर पुलकायमान हो रहा है, हृदयमें सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी हैं, जीभ उनका नाम जप रही है और नेत्रोंमें जल छाया हुआ है। लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी वनमें बसते हैं और भरतजी घरमें रहते हुए ही तपस्यासे अपना शरीर कस रहे हैं!

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरतु सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥

दोनों ही ओर समझकर सब लोग कहते थे कि भरतजी सब प्रकार प्रशंसा करनेयोग्य हैं। भरतजीका व्रत और नियम सुनकर साधुजन सकुचाते हैं और उनकी दशा देखकर मुनिराज लज्जित हो जाते हैं।

परमपुनीत भरतआचरनू। मधुर-मंजु-मुद-मंगल-करनू ॥
हरन कठिन कलि-कलुष-कलेसू। महा-मोह-निसि दलन दिनेसू ॥

भरतजीका आचरण अत्यन्त पवित्र, मधुर, सुन्दर और आनन्दमंगलका करनेवाला है। वह कलियुगके कठोर पापों और दुःखोंको दूर कर देनेवाला है और महामोहरूपी रात्रिको नष्ट कर देनेके लिये सूर्य ही है।

पाप पुंज—कुंजर—मृगराजू। समन सकल संतापसमाजू ॥
जनरंजन भंजन भवभारू। रामसनेह सुधाकरसारू ॥

पापोंके समूहरूपी हाथीके लिये वह सिंहके समान है और सब प्रकारके संतापोंके समूहको नष्ट कर देनेवाला है। वह भक्तोंको प्रसन्न करनेवाला, संसारके भारको नष्ट कर देनेवाला और श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमरूपी अमृतकी किरणोंवाले चन्द्रमाका सार है।

छंद—सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हिं हठि राम सनमुख करत को ॥

सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके प्रेमरूपी अमृतसे भरा हुआ भरतजीका जन्म यदि नहीं होता तो मुनियोंके मनके लिये भी अगम्य यम, नियम, शम, दम और कठोर व्रतोंका आचरण कौन करता? सुयशके बहाने दुःख, दाह, दरिद्र, दम्भ और दोषोंका कौन हरण करता और कलियुगमें तुलसीदासके समान दुष्टोंको हठपूर्वक श्रीरामचंद्रजीके सामने कौन कर देता?

सो०—भरतचरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय-राम-पद पेमु अवसि होइ भव-रस-बिरति ॥ ३२७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नियम करके आदरपूर्वक जो लोग भरतजीके चरित्रको सुनेंगे उन्हें सीताजी और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंसे प्रेम और संसारके विषयोंसे वैराग्य अवश्य हो जायगा।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम
द्वितीयः सोपानः समाप्तः ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी

कृत

रामायण भाषा-टीका

के



सब काण्ड अलग अलग छपकर तैयार हैं।

भाषा बड़ी सरल व दाम बहुत

सस्ता रखा गया है।

पता—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।